G. Arya

ओ३म्

संस्कार विधि व्याख्या

व्याख्याता—

पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी

महोपदेशक, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर।

ओ३म्

नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय

भूमिका

PREM PRINTER
124, GAIWADI
BOMBAY

सब सज्जन लोगों को विदित होवे कि मैंने बहुत सज्जनों के अनुरोध करने से श्रीयुत महाराज विक्रमादित्य के संवत् १९३२ कार्त्तिक कृष्णपक्ष ३० शनिवार के दिन संस्कारविधि का प्रथमारम्भ किया था, उसमें संस्कृतपाठ एकत्र और भाषापाठ एकत्र लिखा था। इस कारण संस्कार करने वाले मनुष्यों को संस्कृत और भाषा दूर २ होने से कठिनता पड़ती थी। और जो १००० (एक हज़ार) पुस्तक छपे थे उनमें से अब एक भी नहीं रहा। इसलिये श्रीयुत महाराजे विक्रमादित्य के संवत् १९४० आषाढ़ बदि १३ रविवार के दिन पुनः संशोधन करके छपवाने के लिये विचार किया। अब की बार जिस २ संस्कार का उपदेशार्थ प्रमाण वचन और प्रयोजन है वह २ संस्कार के पूर्व लिखा जायगा, तत्पश्चात् जो २ संस्कार में कर्त्तव्य विधि है उस २ को क्रम से लिखकर पुनः उस संस्कार का शेष विषय जो कि दूसरे संस्कार तक करना चाहिये वह लिखा है। और जो विषय प्रथम अधिक लिखा था उसमें से अत्यन्त उपयोगी न जानकर छोड़ भी दिया है। और अब की बार जो २ अत्यन्त उपयोगी विषय है वह २ अधिक भी लिखा है। इसमें यह न समझा जावे कि प्रथम विषय युक्त न था और युक्त छूट गया था उसका संशोधन किया है, किन्तु उन विषयों का यथावत् क्रमबद्ध संस्कृत के सूत्रों में प्रथम लेख किया था। उसमें सब लोगों की बुद्धि कृतकारी नहीं होती थी इसलिये अब सुगम कर दिया है क्योंकि संस्कृतस्थ विषय विद्वान् लोग समझ सकते थे साधारण नहीं। इसमें सामान्य विषय जो कि सब संस्कारों के आदि और उचित समय तथा स्थान में अवश्य करना चाहिये वह प्रथम सामान्यप्रकरण में लिख दिया है और जो मन्त्र वा क्रिया सामान्यप्रकरण की संस्कारों में अपेक्षित है उसके पृष्ठ पंक्ति की प्रतीक उन कर्त्तव्य संस्कारों में लिखी है कि जिसको देख के सामान्यविधि की क्रिया वहां सुगमता से कर सकें और सामान्यप्रकरण की विधि भी सामान्य प्रकरण में लिख दी है अर्थात् वहां की विधि करके संस्कार का कर्त्तव्यकर्म करे। और जो सामान्यप्रकरण का विधि लिखी है वह एक स्थान से अनेक स्थलों में अनेक बार करनी होगी। जैसे अग्न्याधान प्रत्येक संस्कार में कर्त्तव्य है वैसे वह सामान्यप्रकरण में एकत्र लिखने से सब संस्कारों में बारम्बार न लिखना पड़ेगा। इसमें प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना पुनः स्वस्तिवाचन शान्तिपाठ तदनन्तर सामान्यप्रकरण पश्चात् गर्भाधानादि, अन्त्येष्टि पर्यन्त सोलह संस्कार क्रमशः लिखे हैं और यहां सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है क्योंकि इसमें कर्मकाण्ड का विधान है इसलिये विशेष कर क्रियाविधान लिखा है। और जहां २ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया है। और मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेद-भाष्य में लिखे ही हैं, जो देखना चाहें वहां से देख लेवें। यहां तो केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

संस्कारविधि व्याख्या की विशेषताएं

१

महर्षि ने भूमिका में लिखा है—तास्त्रिविधाः ऋचः परोक्ष कृताः प्रत्यक्ष कृताः आध्यात्मिकयश्च। लोक की रीति से प्रथम मध्यम उत्तम क्रम से तीन पुरुष होते हैं। जड़ पदार्थों में प्रथम पुरुष तथा चेतन में मध्यम वा उत्तम पुरुषों का प्रयोग होता है। संस्कार विधि की व्याख्या लिखने वालों ने इस नियम के सर्वत्र अपनी व्याख्या में जड़ पदार्थों को सम्बोधन किया है। संस्कार विधि व्याख्या में इस त्रुटि को दूर कर दिया गया है।

२

शिवो नामासि आदि मंत्रों का अर्थ टीकाकारों ने महर्षि के विरुद्ध किया है जिस से प्रतिपत्तियों को भ्रम का अवसर मिलता है। वह स्वामी जी महाराज के अनुकूल कर दिया गया है।

३

जिन मंत्रों वा वाक्यों के अर्थ महाराज ने संस्कारविधि में नही किये उनके अर्थ कर दिये गये हैं। पाठकों को लाभ होगा।

४

ऋषि के लेखानुसार संस्कारस्थ क्रियाओं पर शीर्षक सफेद टाइप में दे दिये गये हैं इससे संस्कार करने को सुगमता होगी। लघु अक्षरों के कारण महाराज के लेख की भिन्नता भी प्रतीत हो जावेगी।

५

संस्कारों के अन्त में संक्षेप से संस्कारों के लाभ भी लिख दिए गये हैं इस से संस्कार कराने वालों को संस्कारो का महत्व प्रतीत हो जावेगा।

६

प्रसिद्ध स्थलों पर विपत्तियों की शंकाओं का समाधान भी कर दिया गया है। इत्यादि संस्कार विधि की अनेक विशेषताएं हैं।

संस्कारविधेर्विषयसूचीपत्रम्

विषय	पृष्ठ से आरम्भ
(१) भूमिका	१
(२) ग्रंथारम्भः	२
(३) ईश्वर स्तुति	३
(४) स्वस्तिवाचन	५
(५) शांति प्रकरण	१०
(६) सामान्य प्रकरण	१४
(क) यज्ञ समिधः	१५
(ख) होम द्रव्यम्	१५
(ग) स्थालीपाकः	१६
(घ) यज्ञपात्र लक्षणानि	१६
(ङ) यज्ञपात्राकृतयः	१७
(च) ऋत्विग्वरणम्	१७
(छ) आचमनम्	१६
(ज) मार्जनम्	१६
(झ) अन्याधानम्	२०
(ञ) समिधाधानम्	२०
(ट) आघारावाज्यभागाहुतयः	२२
(ठ) व्याहृत्याहुतयः	२२
(ड) संस्कारचतुष्टये चतस्रोमुख्याऽऽहुतयः	२३
(ढ) अष्टाज्याहुतयः	२४
(ण) पूर्णाहुतिः	२६
(त) महावामदेव्यगानम्	२६
(७) गर्भाधान संस्कार	२७
(क) ऋतुस्नानादिकाल	२७
(ख) गर्भाधान महत्वम्	३८
(८) पुन्सवनम्	४०
(क) पुंसवन के लाभ	४१
(९) सीमन्तोनयनम्	४४
(क) सीमन्तोनयनमहत्वम्	४८
(१०) जातकर्म संस्कारः	४६
(क) जातकर्म के उपदेश	५६
(११) नामकरण संस्कारः	५८
(क) शंका समाधान	६०
(१२) निष्क्रमण संस्कारः	६१
(१३) अन्नप्राशन संस्कारः	६४
(क) अन्नप्राशन महिमा	६६
(१४) चूड़ाकर्म संस्कारः	६७
(क) चूड़ाकर्म लाभानि, शंकासमाधानम्	७२-७३
(१५) कर्णवेध संस्कारः	७४
(१६) उपनयन संस्कारः	७५
(क) उपनयन महिमा	८२-८३
(१७) वेदारम्भ संस्कारः	८४
(क) वेदारम्भ महत्वम्	१००
(१८) समावर्तन संस्कारः	१०१
(क) समावर्तन महत्वम्	१०७
(१९) विवाह संस्कारः	१०६
(क) विवाहे मुख्यविषयानि, महत्व शंका-समाधानञ्च	१४१
(२०) गृहाश्रम संस्कारः	१५३
(२१) पञ्च महायज्ञ	१७२
(२२) शालानिर्माण विधिः	१७५
(२३) वानप्रस्थाश्रम प्रकरणम्	१८६
(२४) संन्यास प्रकरणम्	१९६
(२५) अन्त्येष्टि कर्म विधिः	२१०

ओ३म्

नमो नमः सर्वविधात्रे जगदीश्वराय

अथ संस्कारविधि व्याख्या

—❀—

ओं सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । अष्टमप्रपाठके । प्रथमानुवाके ॥

सच्चिदात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः । भूयात्तमां सहायो नस्सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥ १ ॥

गर्भाधा मृत्युपर्य्यन्ताः संस्काराः षोडशैव हि । वक्ष्यन्ते तं नमस्कृत्यानन्तविद्यं परेश्वरम् ॥ २ ॥

वेदादिशास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात् । आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये ॥ ३ ॥

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते । असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः । शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥

कृतानीह विधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः । वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः पश्मोहितैः ॥ ६ ॥

प्रमाणस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः । जनानां सुखबोधाय संस्कारविधिरुत्तमः ॥ ७ ॥

बहुभिः सज्जनैस्सम्यङ्मानवप्रियकारकैः । प्रवृत्तो ग्रन्थकरणे क्रमशोऽहं नियोजितः ॥ ८ ॥

दयानन्द आनन्दो विलसति परो ब्रह्मविदितः, सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलयः ।

इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा हीशशरणाऽस्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमुचयः ॥ ९ ॥

चतुरामाङ्कचन्द्राब्दे कार्तिकस्यासिते दले । अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ १० ॥

विन्दुवेदाङ्कचन्द्राब्दे शुचौ मासेऽसिते दले । त्रयोदश्यां रवौवारे पुनः संस्करणं कृतम् ॥ ११ ॥

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगा के करे और सब लोग ध्यान लगाकर सुनें और विचारें ।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ १ ॥

यजु० अ० ३० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा, सुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है (तत्) वह सब हम को (आ, सुव) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥ यजु० अ० १३ । मं० ४ ॥

अर्थः—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था (सः) जो इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत्) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ य०अ० २५ । मं० १३ ॥

अर्थः—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्षसुखदायक है (यस्य) जिसको न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥ ३ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ यजु० अ० २३ । मं० ३ ॥

अर्थः—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) [illegible]

करता है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनहारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ य० अ० ३२ । मं० ६ ॥

अर्थः—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋ०मं०१०।सू०१२१।मं०१०॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ यजु० अ० ३२ । मं० १० ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बंधुः) भ्राता के समान सुख दायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त हो के (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिल के सदा उस की भक्ति किया करें ॥७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० अ० ४० । मं० १६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा कर के (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये इस कारण हम लोग (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम्

स्वस्तिवाचन मन्त्रार्थाः

ओ३म् अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

पुरोहितं—जो प्रथम से ही धारणकर्ता वा पोषणकर्ता है, यज्ञस्य देवम्—यज्ञ का प्रकाशक, ऋत्विजम्—प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, होतारम्—दाता, रत्नधातमम्—अनेक रत्नों को धारण करने वाला है उस, अग्निमीले—भगवान की स्तुति करता हूँ ।

ओ३म् सनः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा न स्वस्तये ॥ २ ॥

ऋग्वेद मं० १ । सू० १ । मं० १ । ६ ॥

अग्ने—ज्ञान स्वरूप भगवन्, सनः पितेव—आप हमको पितृवत्, सूपायनो भव—सुन्दर ज्ञान दीजिए, सचस्वा नः स्वस्तये—और हम को कल्याण से युक्त कीजिए ।

ओ३म् स्वस्तिनो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्तिद्यावा पृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥

अश्विना—हे अध्यापक उपदेशको ! स्वस्तिनोमितीताम्—आप हमारे लिए कल्याण प्रदान कीजिए, भगः स्वस्ति—वायु हमारे लिए कल्याणकारी हो, देव्यदितिरनर्वणः—अखण्डित विद्या आलस्य दूर करके कल्याण प्रदान करे, स्वस्ति पूषा—दुग्धादि पदार्थ सुख दें, असुरो दधातुनः—मेघ हमारे लिए कल्याणकारी हो, स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना—प्रकाश और भूमि विज्ञापन से (उनकी रचना से प्रभु का ज्ञान होता है) कल्याण प्रदान करें ।

ओ३म् स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमम्—कल्याण के लिए ऐश्वर्य तथा वायु विद्या का उपदेश करें, स्वस्ति

पुत्रस्य पतिः—संसार का पति कल्याणकारी हो, बृहस्पतिर्नो अवसागमे स्वस्तये—सर्वाधार बृहस्पति प्रभु को कल्याण के लिए स्मरण करें। स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः—आदित्य ब्रह्मचारी कल्याण के लिए हों।

ओ३म् विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ५॥

विश्वे देवा नो अद्यास्वस्तये—सम्पूर्ण देव आज सुख के लिए हमारी रक्षा करें, वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये—सब नरों का हित करने वाला, सर्वत्र बसने वाला अग्नि सुख के लिए हमारी रक्षा करे, देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये—बुद्धिमान विद्वान् मंगल के लिए हमारी रक्षा करें, स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः—कल्याणकारी दुष्ट-दण्डक अपराधों को रक्षा करे।

ओ३म् स्वस्ति मित्रा वरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥६॥

अदिते रेवति—हे अखण्ड विद्या से युक्त, बहुधन वाले विद्वान् जैसे, स्वस्ति मित्रा वरुणा—प्राण उदान हमारा कल्याण करते हैं, स्वस्ति नः इन्द्रश्चाग्निश्च—वायु और अग्नि हमारा मंगल करते हैं, स्वस्ति नो पथ्ये कृधि—वैसे आप भी सुकृत मार्ग पर चलने के लिए हमारा कल्याण कीजिए।

ओ३म् स्वस्ति पन्था मनु चरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमे महि॥७॥ ऋ० मण्डल ५। सूक्त ५१।

सूर्या चन्द्रमसाविव—सूर्य तथा चन्द्रमा की तरह, स्वस्ति पन्था मनुचरेम—कल्याणकारी तथा नियमित मार्ग पर चलें, पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमे महि—फिर दानी विज्ञानी रक्षक की संगति करें।

ओ३म् ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥ ऋ० मं० ७। सूक्त ३५॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां—जो पूजनीयतम, मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा—विज्ञान के प्रदान करने वाले जीवन मुक्त, सत्यवक्ता, ते नो रासन्ताम् उरुगायम् अद्य—वे हमको आज उत्तमविज्ञान प्रदान करें, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः—हे विद्वानो तुम मंगलों के द्वारा सदा हमारी रक्षा करो।

ओ३म् येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थ शुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्न सस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये॥९॥

द्यौरदितिरद्रि बर्हाः—प्रकाश वाली, मेघाच्छन्न, अखण्डित वेद विद्या वा द्युलोक, पृथ्वी माता येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं—जिन विद्वानों के लिए माधुरतायुक्त अमृत तुल्य दुग्धादि पदार्थों को देती है, उक्थ शुष्मान् वृषभरान्—बलशाली, मोक्ष, स्वप्न सस्तां आदित्यां—सुकर्मी अखण्ड व्रत वाले विद्वानों अनुमदा स्वस्तये—प्रसन्न करें।

ओ३म् नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्वयो अमृतत्व मानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा—मनुष्यों के चक्षु, जागृत, पूजनीय, देवासो बृहत् अमृतत्वमानशुः—विद्वान् सर्वोपरि मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं, ज्योतीरथा अहिमाया अनागसः—वे प्रकाशयुक्त, बुद्धियुक्त अपराध रहित होकर, दिवोवर्ष्माणं वसते स्वस्तये—विजययुक्त देह को सब के कल्याण के लिए धारण करते हैं।

ओ३म् सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमायुरपरिह्वृता दधिरे दिवित्त्यम्।
तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥११॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमायुरपरिह्वृता—जो प्रकाशयुक्त, वृद्धियुक्त, कुटिलता रहित होकर यज्ञ रूप जीवन को धारण करते हैं, दधिरेदिवित्त्यम्—तथा ज्ञान में ही निवास करते हैं, तां आ विवास नमसा-सुवृक्तिभि—उन विद्वानों का सुन्दर स्तुतियों का वा नमस्कार से सेवन करो, आदित्या अदितिंस्वस्तये-आदित्य ब्रह्मचारियों का वा वेदविद्या का कल्याण के लिए सेवन करो।

ओ३म् को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषोयतिष्ठन।
कोवोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

विश्वे देवासो मनुषोयतिष्ठन—हे विद्वानों तुम जितने हो, यंजुजोषथ—जिस का तुम सेवन करते हो, कः—प्रजापति, वः स्तोमंराधति—तुम्हारी स्तुति वा यज्ञ को सिद्ध करता है, तुविजाता—अनेक प्रकार से प्रकट होने वालो, कोवोऽध्वरं अरंकरत्—वही प्रभु तुम्हारे यज्ञ को अलंकृत करता है, योनः पर्षदत्यंहः स्वस्तये—जो हम को कल्याण के लिए दुःखों से पार करता है।

ओ३म् येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजेमनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्मयच्छत सुगानकर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

मनुः समिद्धाग्नि—सूर्यादि का प्रकाशक प्रभु, मनसा सप्तहोतृभिः—तुम्हारे मन तथा इन्द्रियों के द्वारा, येभ्योहोत्रां प्रथमामायेजे—जिनके लिए प्रथम वेदवाणी प्रदान करता है, त आदित्या अभयंशर्मयच्छत—वे आदित्य निर्भयता तथा कल्याण प्रदान करें, सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये—वे हमारे कल्याण के लिए मार्गों को सुगम करें।

ओ३म् य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
तेनः कृतादकृतादेन सस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

विश्वस्य प्रचेतसः—संसार के बड़े विद्वान्, स्थातुर्जगतश्चमन्तवः—जड़ वा चेतन का मनन करने वाले, ये ईशिरेभुवनस्य—जो संसार का शासन करते हैं, तेनः कृतादकृतादेन सस्पर्यद्या—वे हम को किये हुए तथा न किये हुए अर्थात् शारीरिक तथा मानसिक पाप से पृथक् करें, देवासः पिपृता स्वस्तये—देवता लोग कल्याण के लिए भी हमारी रक्षा करें।

ओ३म् भरेष्विन्द्रं सुहवं हवा महेऽहो मुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

सातये भंग—अन्नादि के लिए, भरेष्विन्द्र सुहवं हवामहे—संग्रामों में ऐश्वर्य को देने वाले, सुगमता से सुनने वाले भगवान को हम पुकारते हैं, अहो मुचं सुकृतं दैव्यजनम्—जो दुःख मोचक, दिव्य गुण युक्त, संसार का जनक, अग्निं मित्रं वरुणं—प्रकाशक मित्र वा श्रेष्ठ है, द्यावा पृथिवी मरुतः स्वस्तये—द्युलोक और पृथिवी लोक वा वायु हमारे कल्याण के लिए हों।

ओ३म् सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रा मनागस मस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम्—रक्षकम्, विस्तृत प्रकाश वाले, अटूट, सुशर्माणम् अदितिम् सुप्रणीतिम्—सुख कारक अखण्डनीय सुन्दर बनी हुई, स्वरित्राम अस्रवन्तीम—सुन्दर बल्लियों वाली, छिद्ररहित, दैवीं नावं आरुहेमा स्वस्तये—हम दिव्य नौका पर कल्याण के लिए यात्रा करें।

ओ३म् विश्वे यजत्रा अधि वो च तोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देव हूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

विश्वेयजत्रा अधिवोचतोतये—हे पूजनीय विद्वानों आप हमें रक्षा के लिए उपदेश दें, त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः—कुटिल दुर्गतियों से आप हमारी रक्षा कीजिए, सत्यया वो देवहूत्याहुवेम—हम आप को सत्य देवोचित व्यवहार से पुकारते हैं, शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये—हे सुनने वाले विद्वानों रक्षा वा कल्याण के लिए आप को हम बुलाते हैं।

ओ३म् अपामीवा मव विश्वामनाहुतिम पारातिं दुर्विदत्रा मघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयो तनो रुणः शर्मयच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

देवाः—हे विद्वानो, अपामीवा मव विश्वामनाहुतिम्—पीड़ाओं को, सम्पूर्ण निन्दनीय जीवन को, अपारातिं दुर्विदत्राम्—दान न देने की वृत्ति को और कुमति को, अघायतः द्वेषो अस्म द्ययोतनः—पापी के द्वेष को हम से दूर करो, उरुशर्मयच्छता स्वस्तये—और कल्याण के लिए हमें बहुत सुख प्रदान करो।

ओ३म् अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्या सो न यथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥ १९ ॥

आदित्यासो—हे विद्वानो, यन्नयथा सुनीतिभिः—जिस को तुम सुनीतियों के द्वारा सुमार्ग दिखाते हो, अति विश्वानि दुरिता स्वस्तये—सब दुरितों से छुड़ाकर, अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते—वह मनुष्य समूह हार न मानता हुआ बढ़ता है, प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि—धर्मनिष्ठ होता हुआ प्रजाओं से विस्तृत होता है, कल्याण पाता है।

ओ३म् देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसि मरिष्यन्तमारुहेमास्वस्तये ॥२०॥

हे वायु-गति देवजनो, अन्न के निमित्त संग्रामों में जिस की तुम रक्षा करते हो, जो धन के निमित्त प्रातः काल से ही उद्योग करता है, ऐश्वर्य के प्रदान करने वाले दृढ़ शरीररूपी रथ पर हम कल्याण के लिये चढ़ें।

ओ३म् स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

हे विद्वानो आप हमारे कल्याणकारक मार्गों में, निर्जल स्थानों में वा जलों में सुख कारक संग्रामों में कल्याण करो, पुत्रोत्पन्न करने वाले घरों में कल्याण हो, धन कमाने के लिए कल्याण को धारण करो।

ओ३म् स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्ण स्वस्त्यभि या वाममेति।
सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥२२॥
ऋ० मं० १०। सू० ६३॥

जो विस्तार के लिए श्रेष्ठ धन वाली समृद्धि श्रेष्ठ को प्राप्त होती है, घरों में अथवा जंगलों में वही हमारी रक्षा करे, और वही प्रभु से रक्षित होकर हमारे निवास के लिए हो।

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावति रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघश ꣳ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौस्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ २३ ॥ यजु० अ० १। मं० १।

बल और शक्ति के लिए, जो हमारी इन्द्रियाँ और अन्तरकरण है, सविता देव तुमको वा उनको उत्तम कर्मों में लगावे। ऐश्वर्य के लिए जो धनों व आनन्दों का भाजन है, न मारने योग्य गौओं की रक्षा करो, जो प्रजा वाली रोग रहित व राजरोग रहित हैं, चोर वा पापी उन पर शासन न करें, इस गोपति में बहुत-सी गौएं वा ध्रुव सम्पत्तियें हों। हे भगवान् आप यजमान के पशुओं की रक्षा कीजिये।

ओ३म् आ नो भद्रा कृतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारोदिवेदिवे ॥ २४ ॥

हे विद्वानो आप ऐसा आचरण करें जिससे हमको कल्याण करने वाले, सब ओर से हिंसा रहित, और अन्यों से अप्राप्त दुःखों को नष्ट करने वाले यज्ञ प्राप्त हों जिससे प्रतिदिन हमारी सभा में दीर्घ आयु वाले रक्षक और विद्वान् जन प्राप्त हों।

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवानां ꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ २५ ॥

विद्वानों की कल्याण करने वाली सरल सुमति को प्राप्त करें, विद्वानों के दान की रीति हमको प्राप्त हो, और हम प्रभु की सङ्गति वा मैत्री में बैठें। देवताओं की कृपा से हम पूर्ण आयु भोगें।

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

जो स्थावर वा जङ्गम संसार का पति है, बुद्धि को तृप्त करने वाले उस भगवान् को रक्षा के लिए हम पुकारते हैं, वह रक्षक, पालक हिंसा रहित प्रभु हमारे धनों की वृद्धि वा कल्याण के लिए है।

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥

सब की सुनने वाला इन्द्र हमारा कल्याण करे, सब संसार जिसका धन है ऐसा पोषक प्रभु हम को सुख देवे, बलवान् सुखदाता प्रभु—बृहस्पति हमारे लिए कल्याण को धारण करे।

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥

हे विद्वज्जनो आपकी कृपा से हम सुन्दर वचन सुनें आखों से भद्र देखें, दृढ़ अङ्गों से प्रभु की स्तुति करते हुए, शरीरों द्वारा देवताओं के हितकर जीवन को प्राप्त करें।

ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये निहोतासत्सि बर्हिषि ॥२९॥

हे भगवन् ज्ञान के लिए, उपदेश देते हुए और अन्न देने के लिए प्राप्त हों, आप दानी बन यज्ञों में सदा विद्यमान रहते हैं।

ओ३म् स्वमग्ने यज्ञानाꣳ होता विश्वेषां हितः देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥

हे अग्ने आप यज्ञों के दाता हैं, दिव्य गुणों से मनुष्य समाज में सब के हितकारी हो।

ओ३म् येत्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

जो महाभूतादि २१ पदार्थ सम्पूर्ण बलों को धारण करते हुए प्राप्त होते हैं, वेदपति उनके बलों को मेरे शरीर में प्रदान करे।

शांति प्रकरण मंत्रार्थः

शंन इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

ग्रहण करने योग्य वस्तु के प्रदान करने वाले बिजली, पानी हमारे लिए मंगलकारक हों, ऐश्वर्य के देने वाले बिजुली, अन्नधारण और वायु संग्रामों में हमारे लिए मंगलकारक हों।

शन्नो भगः शमु नः शंसोऽस्तु शन्नः पुरंधिः शमु संतु रायः ।
शनः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्यमा पुरुजातोऽस्तु ॥२॥

हम ऐसा प्रयत्न करें कि ऐश्वर्य तथा अनुशासन आकाश वा धन हमारे लिए मंगल देने वाले हों, यथार्थ धर्म परमेश्वर तथा व्यवहार की प्रशंसा हमारे लिए कल्याणकारिणी हो, न्यायकारी प्रभु हमारे लिये कल्याणकारी हों।

शन्नो धाता शमुधर्तानोऽस्तु शन्नउरुची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शन्नो अद्रिः शन्नो देवानां सुहवानी संतु ॥३॥

धर्ता वा पोषक हमारे लिए कल्याणकारी हों, अन्नादि के द्वारा पृथिवी हमारे लिए सुखकारिणी हो, द्युलोक अन्तरिक्ष तथा मेघ और विद्वानों के आगमन हमारे लिए सुखकारक हों।

शन्नोऽग्निर्ज्योतिरनीकोऽस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विनाशम् ।
शन्न सुकृतां सुकृतानि संतु शन्न इषिरोऽभि वातु वातः ॥ ४ ॥

जिस की ज्वालाएं सेना के तुल्य हैं वह अग्नि हमारे लिए आनन्द प्रद हो और व्यापी प्राणोदान तथा धर्मात्माओं के धर्माचरण आनंदप्रद होवें, शीघ्रगंता वायु भी सुखकारी होवे।

शन्नो द्यावा पृथिवी पूर्वहूतौ शमंतरिक्षं दृशये नोऽस्तु ।
शंन ओषधीर्वनिनो भवंतु शंनोरजसस्पति रस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

पूर्वजों की प्रशंसा में बिजली वा भूमि और अन्तरिक्ष मङ्गलप्रद होवें, वनौषधिवर्ग तथा जयशील लोक पति हमारे लिए सुखकास्क होवें।

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवोअस्तु शमा दित्येभिवरुणः सुशंसः ।
शनो रुद्रो रुद्रेभिरलापः शंनत्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

दिव्य गुण युक्त विद्युत, सूर्य, पृथिवी आदि के साथ, संवत्सरके मासों सहित जल समुदाय तथा परमात्मा वा जीव दुःख नाशक प्राणों सहित मंगलमय हों। परीक्षक विद्वान् वाणियों द्वारा हमारी बातें सुनें।

शंनः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शंनोग्रावाणः शमु संतु यज्ञाः ।
शंनः स्वरुणां मितयो भवंतु शन्नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

चंद्रमा वा अन्न धन, मेघ वा अग्निहोत्रादि, यज्ञशाला वा उस का सामान मंगलकारक हो।

शन्नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शन्नश्चतस्रः प्रदिशो भवंतु ।
शन्न पर्वता ध्रुवयो भवंतु शंन सिंधवः शमु संत्वापः ॥८॥

जिस के द्वारा अनेक पदार्थों के दर्शन होते हैं वह सूर्य और चारों दिशाएं स्थिर पर्वत, नदियां समुद्र जल वा प्राण आनंद देने वाले होवें।

ओ३म् शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभि शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णु शमु पूषानो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

सत्कर्मों के द्वारा विदुषी माता, सुन्दर विचार वाले प्राणप्रिय मनुष्य जगदीश्वर तथा ब्रह्मचर्यादिव्यवहार, होने वाला कार्य और वायु हमारे लिए मंगलकारक हों।

ओ३म् शं नो देवः सविता त्रायमाणः शंनो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

रक्षक भगवान, प्रकाश युक्त प्रभात वेलाएं तथा जगत्पति ईश्वर वा राजा प्रजाओं के लिए कल्याणकारी हों।

ओ३म् शंनो देवा विश्व देवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शममिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवा शन्नो अप्याः ॥११॥

विद्यादि गुणों के दाता सब विद्वान् बुद्धियों सहित वाणी तथा आत्मिक गुण विद्यादि के दाता हमारे लिए सुखकर हों। पार्थिव पदार्थ वा जलीय मुक्तादि पदार्थ मंगलकारक हों।

ओ३म् शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शंन ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

सत्य के पति, गौएं वा घोड़े सुकृतमेधावि धर्मात्मा तथा हवनादि कार्यों में पितर मंगलकारी हों।

ओ३म् शंनो अजएकपाद देवो अस्तु शंनोऽहिर्बुध्न्य शंसमुद्रः।
शंनो अपां नपात्पेरुरस्तु शंनः पृश्निर्भवतु देव गोपा ॥१३॥

सब जगत जिसके एक भाग में है वह, मेघ वा समुद्र, नौका तथा सर्व रक्षक अन्तरिक्ष मङ्गलकारक हों।

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति। शंनो अस्तु द्विपदे शंचतुष्पदे ॥१४॥

विद्युत वा ईश्वर संसार को प्रकाश करने वाले हैं, वे मनुष्य वा पशुओं के लिए कल्याणकारक हों।

ओ३म् शन्नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१५॥

सुखदायक वायु चले, संतप्तसूर्य तथा शब्दकारी विद्युत वा मेघ कल्याणकारी बरसें।

ओ३म् अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

दिन और रात्रियां आनन्ददायक हों, रक्षादि के द्वारा विद्युत वा अग्नि कल्याणकारक हों।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥

दिव्यगुणयुक्त जल वा परमेश्वर हमारी पुष्टि के लिए चारों ओर से सुखों की वर्षा करें।

ओ३म् द्यौः शांतिरन्तरिक्ष ँ शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः वनस्पतयः शांति र्विश्वे देवाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्व ँ शांतिः शांतिरेव शांतिः सामा शांति रेधि ॥१८॥

प्रकाश युक्त पदार्थ, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, औषधिएं, वनस्पतिएं, विद्वान, परमेश्वर, सब पदार्थ हमारे लिए शान्तिकारक हों। मुझ को शन्ति प्राप्त हो।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदं शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्चशरदः शतात् ॥१९॥

देवों का हित करने वाला सर्व दर्शक, शुद्ध प्रभु सर्वान्तर्यामी है; उसकी कृपा से हम सौ बरस सुनें, देखें,बोलें और सौ वर्ष तक अदीन होकर रहें। इससे भी अधिक देखें,सुनें।

ओ३म् यज्जाग्रतोदूमुदैतिदैवं तदु सुप्तस्यतथैवैति ।
दूरङ्गमंज्योतिषां ज्योतिरेक तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२०॥

जीव का साधन मन जागतें हुए और वैसे ही सोते हुए अतिदूर जाता है, दूर जाने वाला ज्योतियों की ज्योति मेरा मन धर्म संकल्प वाला हो।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषुधीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

मन का दमन करने वाले कर्मयोगी, यज्ञों वा युद्धों में जिसके द्वारा शुभ कर्म करते हैं, जो प्रजाओं में पूजनीय वा अपूर्व है, वह मेरा मन मनन संकल्प वाला हो।

ओ३म् यत्प्रज्ञान मुत चेतोधृतिश्चयज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

जो बुद्धि, चित्त वा धैर्य रूप वाला है, जो प्रजाओं में ज्योति वा अमृत रूप है, जिसके बिना कुछ कर्म नहीं कर सकते वह मेरा मन प्रभु भक्ति संकल्प वाला हो।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

जिसने भूत भविष्यत वर्तमान सब ग्रहण किया हुआ है, जिससे सात होता यज्ञ करते हैं—वह मेरा मन योग संकल्प वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्त ꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ २४ ॥

जिसमें रथके आरों की तरह ऋग्यजु और साम विद्यमान हैं, जिसमें सब प्रजाओं का विज्ञान ओत-प्रोत है वह मेरा मन वेदादि के प्रचार संकल्प वाला हो।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभी शुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ २५ ॥

सुसारथी की तरह जो मनुष्यों को इधर उधर ले जाता है जो लगामयुक्त घोड़ों की तरह नियन्त्रण से चलने वाला, हृदय में स्थित अजर वेगवान् मेरा मन मङ्गल तथा नियम सङ्कल्प वाला हो।

ओ३म् स नः पवस्वशंगवे शं जनायशमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥

घोड़े गौ, मनुष्य व औषधियों की रक्षा के लिए हे प्रभु आप हमें शुद्ध विचार प्रदान कीजिए।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

हे प्रभु हमें अन्तरिक्ष में द्युलोक और पृथिवी लोक दोनों में पूर्व, पश्चिम में निर्भयता हो तथा उत्तर और दक्षिण में हमें निर्भयता प्राप्त हो।

ओ३म् अभयंमित्रादभयंममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशाममित्रं भवन्तु ॥ २८ ॥

भगवन् ! आपकी कृपा से मित्र वा अमित्र से, ज्ञात वा अज्ञात से रात वा दिन में हम अभय हों। सब आशाएं वा दिशाएं मेरी मित्र हों।

(इति शान्ति प्रकरणम्)

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये। परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना कर दी जायगी कि वहां पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना स्थान स्थान में जना दिया जायगा।

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो किसी प्रकार का उपद्रव न हो।

यज्ञशाला—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं, यह अधिक से अधिक १६ (सौलह) हाथ सम-

चौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ (आठ) हाथ की, यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथिवी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी दो २ हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उसमें शुद्ध मिट्टी भरें। यदि १६ (सोलह) हाथ की समचौरस हो तो चारों ओर २० (बीस) खम्भे और जो ८ (आठ) हाथ की हो तो १२ (बारह) खम्भे लगा कर उन पर छाया करें। वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० (दश) हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका पल्लव आदि बांधें। नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हलदी मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गलकार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। इस लिये निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें।

यज्ञकुण्ड का परिणाम

जो लघु आहुति करनी हों तो चार २ हाथ का चारों ओर समचौरस चौकोण कुण्ड ऊंचा और उतना ही गहरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में एक १ हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो २ हाथ अर्थात् दो लघु आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना। और जो पचास हजार आहुति देनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे। तथा पच्चीस हजार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे। दश हजार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे रखना। पांच हजार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहरा समचौरस और साढ़े आठ अंगुल नीचे रहे। यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है यदि इसमें २५०० (ढाई हजार) आहुति मोहन भोग, खीर और २५०० (ढाई हजार) घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहरा समचौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे। चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सब हाथ से न्यून चौड़ा गहरा समचौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ (पन्द्रह) अंगुल की मेखला अर्थात् पांच २ अंगुल की ऊंची ३ (तीन) बनावे। और ये तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी। प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें॥

यज्ञसमिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवा लेवें। परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिनदेशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों। अच्छे प्रकार देख लेवें और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें।

होम के द्रव्य चार प्रकार

(१ मिष्ट) शक्कर, गुड़, शहत, मिश्री, छुहारा, दाख, केला, आम, सेव, नारंगी, अनन्नास, खरबूजा, दूध, दही, मलाई, मावा, मिठाई, पेठा, लड्डू, बर्फी, जलेबी, खीर, हलुवा, मोहनभोग, लपसी, मालपूआ, पूरी, कचौरी, खीचड़ी, दाल, भात, रोटी, शाक, तरकारी, कढ़ी, बड़ी, पापड़, अचार, चटनी, सलोनी, मीठी, खारी, खट्टी, नमकीन, मेवा, बादाम, पिस्ता, अखरोट, नारियल, चिरौंजी, फालसा, किशमिश, जायफल, जावित्री, लौंग, इलायची, कंकोल, तेजपात, केसर, कस्तूरी, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, हलायची, जायफल, जावित्री

आदि। (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि। (तीसरे—मिष्ट शक्कर, शहद, छुआरे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियां।

स्थालीपाक

नीचे लिखे विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहन भोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें इसका प्रमाण:—

ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः॥

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथावत् शुद्ध कर लेना अवश्य चाहिये अर्थात् सबको यथावत् शोध छान देख भाल सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना। जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा, सब डाल कर, मोहनभोग बनाना इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होम के लिये बनावें। चरू अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि (ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि।) अर्थात् जितनी आहुति देनी हो प्रत्येक आहुति के लिये चार २ मुट्ठी चावल आदि ले के (ओं अग्नये त्वा जु प्रोक्षामि) अर्थात् अच्छे प्रकार जल से धोके पाकस्थली में डाल अग्नि से पका लेवे। जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखे आज्यस्थाली वा शाकल्यस्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खें और उस पर घृत सेचन करें।

यज्ञपात्र

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहियें निम्नलिखित प्रमाणे:—

अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः, षडङ्गुलखातास्त्वग्विला हंसमुखप्रसेकाः, मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति। तत्र पालाशी जुहूः। आश्वत्थयुपभृत्। वैकङ्कती ध्रुवा। अग्निहोत्रहवणी च। अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः। तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः। वारणं बाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्रवहवणीनिधानार्थं कूर्चम्। अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम्। वारणाग्रयहोमसंयुक्तानि। तत्रोलूखलं नाभिमात्रम्। मुसलं शिरोमात्रम्। अथवा मुसलोलूखले वांक्ष्यें सारदारुमये शुभे इच्छाप्रमाणे भवतः। तथा—खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः। य द्वौभौ वासन्तौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ॥ शूर्पं वैणवमेव वा। ऐणीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम्। प्रादेशमात्री वारणी शम्या। कृष्णाजिनमखण्डम्। दृषदुपले अश्ममये। वारणीं २४ हस्तमात्रीं, २२ अरत्निमात्रीं [illegible] मात्र्यौ सप्तसंगृहीतामिडापात्रीम्। अरत्निमात्राणि त्रक्षुवजमानहोतृपत्न्यासनानि। शुभ्रमयं त्रिवृत

व्याममात्रं योक्त्रम् । प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षडङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ । प्रादेशमात्रं द्वयङ्गुलपरीणाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम् । आदर्शकारे चतुरस्रे वा प्राशित्रहरणे । तयोरेकमीषत्खातमध्यम् । षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभयतः खातं षडवदानम् । द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्सेधमन्तर्द्धानकटम् । उपवेशोऽरत्निमात्रः । मुञ्जमयी रज्जुः । खादिरान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून् । यजमानपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलखातम् । तथा प्रणीतापात्रञ्च । आज्यस्थाली द्वादशाङ्गुलोवरतृता प्रादेशोच्छ्रा । तथैव चरुस्थाली । अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं सामिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कार्यं बर्हिः । ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलोङ्गुलीयकवासांसि । पत्नीयजमानपरिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् । अग्न्याधेयदक्षणार्थं चतुर्विंशतिपक्षे एको नपञ्चाशद् गावः । द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः । षट्पक्षे त्रयोदश । सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः । वरार्थं चतस्रो गावः ॥

समिध पलाश की १८ हस्त ३ इध्म परिधि ३ पलाश की बाहुमात्र सामिधेनी समित् प्रादेशमात्र समीक्षण लेर ५ शाटी १ दृषदुपल १, दीर्घ अंगुल १२ पृ० १५, उपल अं० ६, त्रिवृत्तृण या गोवाल का पूर्णपात्र अं० १२

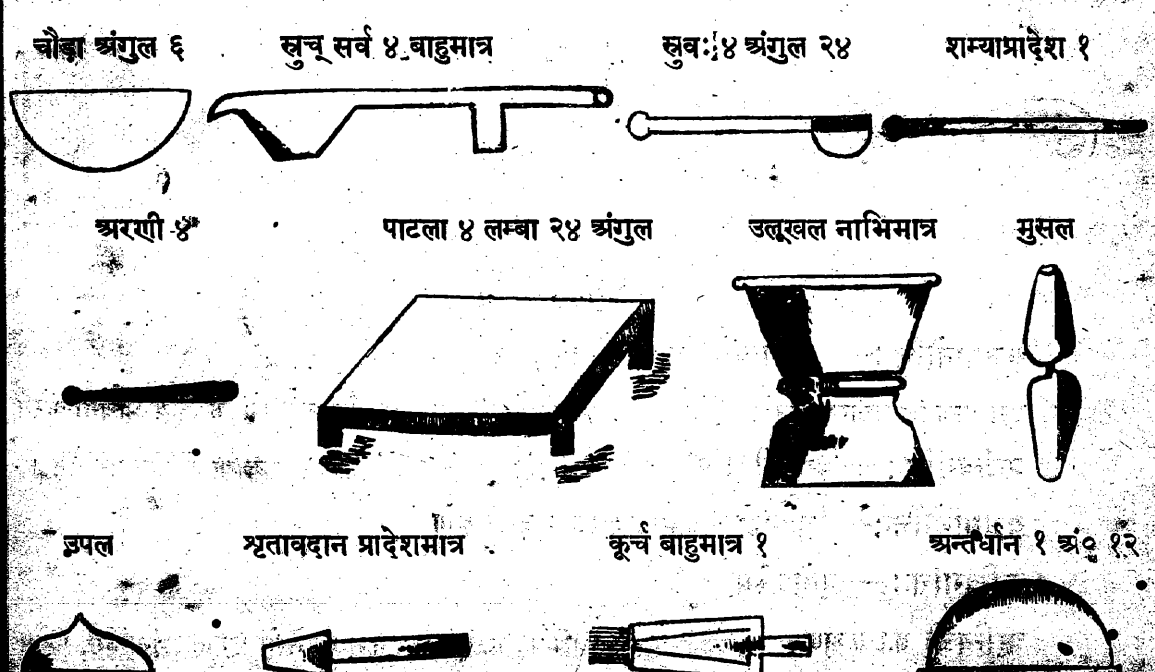

स्रुवा अंगुल २४ | उत्तरारणी टुकड़ा १८ | अंगुल ६ पोली अंगुल ४ ऊँची अधरारणी | सम्मार्जनस्तरण दर्पणाकार

पिष्टपात्रा

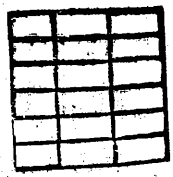

अग्नि० १ अं० २४

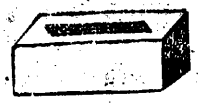

ओवली अं० १२

चात्र अं० १२

वड़वत अं० १२

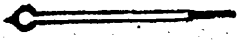

पुरोडाश पात्री

इड़ा अंगुल १२

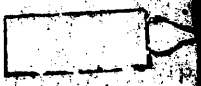

प्रणीता अं० १२

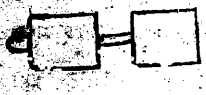

प्रोक्षणी अं० १२

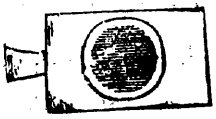

अंगोछा २४ अं० लंबा

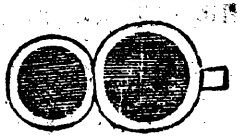

मूलेखात दृषद्

उपवेश १ अं० २४

शूर्प

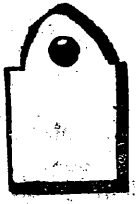

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः—'ओमावसोः सदने सीद'

इस मन्त्र का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे

ऋत्विगुक्तिः—'ओं सीदामि' ऐसा कहके जो उस के लियें आसन बिछाया हो उस पर बैठे।

यजमानोक्तिः—'अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे।'

ऋत्विगुक्तिः—'वृतोऽस्मि।'

ऋत्विजों का लक्षण—अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोप
कारी, व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले वेदवित् एक दो तीन अथवा चार का वरण क

तो एक हो तो उसका पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इनका आसन वेदी के चारों और अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिये और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कार-पूर्वक आसन पर बैठाना और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने २ जलपात्र से सब जने जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे इन मन्त्रों से तीन २ आचमन करें अर्थात् एक २ से एक २ बार आचमन करें वे मन्त्र ये हैं।

पहला आचमन—

अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।१।

हे अमर ब्रह्म आप प्राणियों के आश्रयभूत हैं—यह सुन्दर कथन है।

दूसरा आचमन—

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।२। हे मृत्यु रहित आप संसार के पोषक हैं।

तीसरा आचमन—

ओ३म् सत्यंयशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।३। तैत्तरीय आर० प० १०। अनु० ३२।३५।

आप की कृपा से मुझ में सत्य, यश और श्री विराजमान हों।

इस से तीसरा आचमन कर के तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से जल कर के अङ्गों का स्पर्श करें।

अङ्ग स्पर्श विधि—

मुख स्पर्श—**ओ३म् वाङ्मआस्येऽस्तु ।** मेरे मुख में वाणी हो।

नासिका छिद्र स्पर्श—**ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।** मेरे नासिका छिद्र में प्राण हो।

नेत्र स्पर्श—**ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।** मेरे नेत्रों में ज्योति हो।

कर्ण स्पर्श—**ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।** मेरे कानों में सुनने की शक्ति हो।

उभय बाहु स्पर्श—**ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।** मेरे बाहुओं में बल हो।

जंघा स्पर्श—**ओ३म् ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ।** मेरी जङ्घाओं में ओज हो।

सर्वाङ्ग स्पर्श—

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु । पारस्कर गृ० का० १ कण्डिका १ सू० २५।

मेरे सम्पूर्ण अङ्ग रोग रहित देह के साथ विद्यमान रहें। इस मन्त्र से दाहिने हाथ से सर्व स्पर्श कर मार्जन करना।

समिधा चयते—

समिधा चयन वेदी में करें पुनः—

ओं भूर्भुवः स्वः । गो० गृ० प्र० १ । खं० १ । सू० ११ ।

"प्रभु प्राणस्वरूप, दुःखनाशक वा सुख स्वरूप है ।"—

इस मन्त्र का उच्चारण कर के ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीप जला उस से कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उस में छोटी छोटी लकड़ी लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गरम हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे । वह मन्त्र यह है—

अग्न्याधान—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥ यजु० अ० ३ मं० ५ ।

"तीनों लोक निवासियों की भलाई के लिए, द्यौ की तरह प्रकाशयुक्त, पृथिवी की तरह श्रेष्ठ, देवताओं के यज्ञ करने योग्य पृथिवी पर, अन्नादि पदार्थों की शुद्धि के लिए अग्नि को स्थापन करता हूं ।"

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगले मन्त्र पढ़ व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ।

अग्नि प्रदीपन मंत्र

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स५सृजेथामयं च ।

अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत । यजु० अ० १५ । मन्त्र ५४ ।

"यह अग्नि प्रदीप्त-जागृत होता हुआ इष्ट, ईश्वराराधनादि, पूर्ण ब्रह्मचर्यादि को पुष्ट करता है, इस यज्ञ स्थान में सम्पूर्ण विद्वान् वा यजमान बैठें ।"

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाश आदि की तीन लकड़ी आठ २ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक २ नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ समिधा को अग्नि में चढ़ावें । वे मन्त्र ये हैं—

समिधाधान

प्रथम समिधाधान मन्त्र—

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

"यह इधम अग्नि का आत्मा है, इस से अग्नि प्रदीप्त होता है तथा बढ़ता है, तदनन्तर वायु, जल की शुद्धि के द्वारा प्रजा पशु और ब्रह्मवर्चस अन्नादि से हमें बढ़ाता है ।"

द्वितीय समिधाधान मन्त्र—

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ २ ॥

"समिधाओं से अतिथि-रूप अग्नि को घृत से अधिक प्रदीप्त करो, और उसमें सामग्री डालो।" इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ ३ ॥

"धनदाता और प्रचण्ड दोष निवारक अग्नि में तीव्र घृत का हवन करो।" इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी

तृतीय समिधाधान मन्त्र—

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा ।

इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम ॥ ४ ॥ यजु० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

"बहुत प्रकाश वाले बलवान पदार्थों के देने वाले अग्नि को लकड़ियों अथवा घृत से हम प्रदीप्त करते हैं।" इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिधाधान करके होम का शाकल्य जोकि यथावत् विधि से बनाया हो सुवर्ण चांदी कांसी आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें। पश्चात् उपरिलिखित घृतादि जोकि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्धादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रखा हो उस घृत वा मोहन भोगादि जो कुछ सामग्री हो, उसमें से कम से कम ६ माशा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे। यही आहुति का प्रमाण है। उस घृत में से चमचा, कि जिसमें ६ माशा घृत आवे ऐसा बनाया हो भरके नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुति देनी।

आहुति की मात्रा—

कम से कम ६ माशा वा अधिक से अधिक १ छटांक घी की प्रत्येक आहुति होनी चाहिये।

निम्न मन्त्र से—घी की पांच आहुतियां दें—

ओ३म् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धय चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

तत्पश्चात अंजलि में जल ले के वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर छिड़कावें उसके यह मन्त्र हैं।

कुण्ड के पूर्व में जल सेचन—

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ "हे अखण्डनीय भगवान् आप हमें अनुमति दीजिए।" इस मंत्र से पूर्व

कुण्ड के पश्चिम में जल सेचन— पूर्व

ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ "हे अनुमते हमें अनुमति प्रदान कीजिये।" इससे पश्चिम

ऊपर में जल सेचन—

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व । गो० प्र० १ । खं० ३, सू० १–३ ।

"हे ज्ञान भण्डार हमें अनुमति दीजिए ।" इसमें उत्तर और

चारों ओर जल सेचन—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्योगन्धर्वकेतपू केतनः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु ।

यजु० अ० ३० मं० १ ।

"हे सविता देव यज्ञ को और ऐश्वर्य के लिए यज्ञपति को उत्पन्न कीजिए । हे दिव्य गन्धर्व हमारे ज्ञान को पवित्र कीजिए । हे वाणी के स्वामी हमारी वाणी को पवित्र करो ।"

इस मंत्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे, इसके पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें । इसमें मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है उनमें से यज्ञकुंड के उत्तर भाग में जो एक आहुति और यज्ञकुंड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" है । और जो कुंड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं सो घृत पात्र में से स्रुवा को भर अंगुठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़ के

आघारावाज्याहुति—

ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ।

"ज्ञान स्वरूप भगवान् की आज्ञापालन के लिए आहुति देता हूँ ।" इस मंत्रसे वेदीके उत्तर भाग अग्नि में

ओ३म् सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदं न मम । गो० गृ० प० १ । ख० ८ । सूक्त २४ ।

"सोम प्रभु की आज्ञा के लिये आहुति डालता हूं ।" इस मंत्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित स[illegible] पर आहुति देनी तत्पश्चात्

आज्यभागाहुति—

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदं न मम । "यह प्रजापति भगवान् के लिये सुंदर कथन है ।"

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय इदं न मम । "ऐश्वर्य स्वरूप प्रभु के लिए सुंदर वचन है ।"

इन दोनों मंत्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्य भागाहुति दे के जब प्रधान होम अर्थात् जिस २ कर्म में जितना २ होम करना हो करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागा०) देवे पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृत पात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवे ।

व्याहृति आहुति—

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदं न मम । "प्राण स्वरूप भगवान् के लिए सुंदर कथन है ।"

ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे इदं न मम । "दुःख नाशक प्रभु के लिए सुन्दर उक्ति है।"

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदं न मम ।

"सुख स्वरूप भगवान् की आज्ञा पालन के लिए आहुति देता हूँ।"

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्नि वायवादित्येभ्य इदन्न मम ।

ये चार घी को आहुति देकर स्विष्ट कृत होमाहुति एक ही दे। यह घृत अथवा भात की देनी चाहिये उसका मंत्रः—

स्विष्टकृत आहुति मंत्रः—

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरं । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान् समर्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥ शत० क० १४ । ६-४ । २४ ।

"जो कुछ विधि से अधिक अथवा न्यून कर दिया है भगवान उसको जानता है, उस सब को पूर्ण करे। हित करने वाले सम्पूर्णप्रायश्चित्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् की आज्ञा पालने के लिए यह आहुति है। वह हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करे।"

इस से एक आहुति करके प्राजापत्याहुति को नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिये।

प्राजापत्याहुतिः—

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ।

इससे मौन रह के एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे। परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं वे चार मन्त्र ये हैं—

चार आज्याहुति (प्रथमाहुति)

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्ज्जमिषंच नः ।
आरे बाधस्व दुच्छूनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥

"भगवन् हमारी आयुओं को पवित्र करो, ऐश्वर्य तथा बल को प्रदान करो, अवगुणों को दूर करो।"

द्वितीय आज्याहुति—

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्नि ऋषि पावमानः पांचजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥२॥

"प्रभु ज्ञानी व पवित्र करने वाला है, तथा पंचेन्द्रयों को शुभ मार्ग में चलाने वाला पुरोहित है। महा [illegible] देने वाले प्रभु को हम प्राप्त होते हैं।"

तृतीय आज्याहुति—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यं ।
दधद्रयिं मयिपोषं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥३॥

"हे सुकर्मा मुझ को पवित्र करो । मुझ में ज्ञान बल और पुष्टि दीजिये ।"

चतुर्थ आज्याहुति—

ओ३म् भुर्भुवः स्वः । प्रजापतेनत्वदेता न्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नोअस्तु वयंस्यामपतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥४॥

ऋ० १० । १२१ । १० ॥

इनसे घृत की चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" ये निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मंगल कार्यों में आठ आहुति देवें परन्तु किस २ संस्कार में कहां २ देनी चाहिये यह विशेष बात उस २ संस्कार में लिखेंगे वे आहुति-मन्त्र ये हैं ।

अष्टाज्याहुति—प्रथमाहुति—

ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवया सिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो
विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्याम् इदन्न मम ॥१॥

"हे विद्वान् आप हम को विद्वानों के अनादर से दूर होने की प्रेरणा कीजिये, आप पूजनीय व प्रकाशवान् हैं हम से सब द्वेष दूर कीजिये ।"

दूसरी आहुति—

ओं सत्वन्नोऽग्नेऽवमो भवोति नेदिष्टोऽस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्वनो वरुणं रराणोवीहिमृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्नि वरुणाभ्यां इदन्न मम ॥२॥

ऋ० ४।१।४–५।

"हे कोविद आप हमारे रक्षक बनिए । प्रातः उषा वेला में हमारे समीप विराजिये और हमें सुख प्रदान कीजिये ॥"

तीसरी आहुति—

ओं इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्याच मृळय । त्वामवस्युराचके स्वाहा ॥३॥ इदं वरुणाय इदन्न मम

ऋ० १।२५।२१

हे परमात्मन् मेरी स्तुतिको सुनिए । मुझे सुखी कीजिये । आपसे रक्षा चाहता हुआ प्रशंसा करता हूं

चौथी आहुति—

ओं तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्द मान स्तदा शास्ते यजमानोहविर्भिः ।

ओं हेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषी स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

ऋ० १।२४।१२।

मैं वेद द्वारा स्तुति करता हुआ ब्रह्म को प्राप्त करता हूं। उसी ब्रह्म को वा सुख को यजमान यज्ञादि कर्मों के द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मुझ को बोध प्रदान कीजिये। हे स्तोतव्य! हमारा आयु का नाश न कीजिये।

पांचवीं आहुति—

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञिया पाशाः वितता महांतः।
तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णु विश्वे मुचंतु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्न मम ॥५॥

हे भगवान् जो आप के सैंकड़ों वा सहस्रों यज्ञिय पाशदंड के ढंग हैं। उन से हमको आप वा सब विद्वान् छुड़ावें अर्थात् हम कोई भी ऐसा कार्य न करें जिससे आपके दंड के भागी बनें।

छठी आहुति—

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभि शस्ति पाश्च सत्य मित्त्वमयासि।
अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहिभेषज ꣳ स्वाहा। इदमग्नये अयसे इदन्नमम ॥६॥

का० २५।१।१॥

भगवान् आप सर्वत्र विद्यमान् वा श्रेष्ठों के पालक हैं। यह सत्य है कि आप व्यापक हैं आप हमारे को अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाने वाले हैं। आप हमें उचित औषध दीजिये।

सातवीं आहुति—

ओं उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रतेतवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥
इदं वरुणाय आदित्यायाऽदितये च इदन्नमम। ऋ० १।२४।१५

हे वरुण आप हमारे अधम बन्धनों को दूर कीजिये, मध्यमों को भी शिथिल कीजिये। हम आपके पर चलें और आपकी कृपा से हम अपराध रहित हों।

आठवीं आहुति—

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ ꣳ हि ꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं
जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा इदं जातवेदोभ्यां इदं न मम॥ य० ५।३॥

हे भगवान् तुम्हारे समान विज्ञान वाले पाप रहित अध्वर्यु वा आध्यात्मिक याग यज्ञ वा यजमान को पीड़ा मत पहुँचाओ किन्तु हमारे लिये विद्या प्रचारक वा मंगलकारक बनो।

मन्त्रोच्चारण का अधिकार—

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है। अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूर्ख यजमान के हाथ से करावे पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करे। स्रुवा को घृत से भरके—

पूर्णाहुति—

सर्वं वै पूर्णं स्वाहा

प्रभो आपकी कृपा से सब कर्म पूर्ण हों॥

इस मन्त्र से एक आहुति देवे, ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिसको जिमाना हो जिमा दक्षिणा देके सबको विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष घृत भात वा मोहन भोग प्रथम जीम के पश्चात् रुचि पूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मंगल कार्य

अर्थात् गर्भाधानादि, संन्यास संस्कार पर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्यगान अवश्य करे वे मन्त्र ये हैं

वामदेव्यगान मन्त्राः—

ओं भूर्भुवः स्वः कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिष्ठयावृता॥ १

सदापूर्ण आश्चर्यरूप हमारा किस रक्षादि क्रिया से मित्र बने, किस व्यवहार वा उत्तम मति से शुभ कर्मों में नियुक्त करे।

ओं भूर्भुवः स्वः कस्त्वा सत्यो मदानां महिष्ठो मत्सदंधसः। दृढाचिदारुजे वसु॥

हे भक्त आनंदों में अत्यंत आनंद स्वरूप भगवान् तुम को अन्नादि पदार्थों से आनंदित करता और कष्ट विनाशक तेरे लिए स्थायी धन प्रदान करता है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अभीषुणः सखीनामविता जरितृणां। शतं भवास्यूतये॥ २॥

भगवन् आप सैंकड़ों पदार्थों के देने वाले तथा हमारे मित्रों के वा भक्तों के रक्षक हो।

महावामदेव्यम्॥ का३ऽया। नश्चा३ इत्रा२ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः सखा। ओ होहाई। कया २३ शचाई। ष्ठयाहो३हुम्मा२। वा२र्तो३ऽऽहाइ॥ (१)॥ का३ऽस्त्वा

[illegible] । मा । [illegible] । सा । औ२होहाइ । हा२न्निहा । स्रजौहो३ । (१) ॥ वाऽ३मो३ऽ५हायि ॥ (२) ॥ आऽ५मी । षुणा२ । सा३खीनाम् । आ । विता । [illegible] । [illegible] । नाम् । औ २३ हो हायि । शता२३म्मवा । सियौहो३ । हुम्मा २ । ताऽ२यो३ऽ५हायि ॥ (३) ॥ साम० उत्तराचिके । अध्याये १ । खं० । मं० १ । २ । ३ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोक प्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् व त्यागी पक्षपात रहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ बर्तने वाले हों उन को नमस्कार आसन अन्न जल वस्त्र प्राप्त धनादि के दान से उत्तम प्रकार से यथा सामर्थ्य सत्कार करें। पश्चात् जो कोई देखने ही के लिए आए हों उन को भी सत्कारपूर्वक विदा कर दें अथवा जो संस्कार क्रिया देखना चाहें वे पृथक् पृथक् मौन कर के बैठे रहें। कोई बातचीत हल्ला गुल्ला न करने पावें। सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्न वदन रहें विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म कराने वाले शांति धीरज और विचारपूर्वक क्रम से कर्म करें और करावें। यह सामान्य विधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है।

॥ इति सामान्यप्रकरणम् ॥

अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः ॥

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। मनुस्मृति द्वितीयाध्याये श्लोक ॥ १६ ॥

अर्थः—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त १६ संस्कार होते हैं। शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं उन में से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

गर्भाधान उसको कहते हैं कि जो "गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिस क्रिया से होता है। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्णयुवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून १६ (सोलह) वर्ष की कन्या और २५ (पचीस) वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इससे अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है क्योंकि बिना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता और २५ (पचीस) वर्ष के बिना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इस में यह प्रमाण है।

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे। समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

सुश्रुते सूत्रस्थाने। अध्याय ॥ ३५ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् । यदाधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः । तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ३ ॥
सुश्रुते शारीरस्थाने अ० १० ॥

ये सुश्रुत के श्लोक हैं। शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यक शास्त्र में है वैसी अन्यत्र नहीं जो उसका मूल विधान है आगे वेदारम्भ में लिखा जायगा, अर्थात् किस २ वर्ष में कौन धातु किस प्रकार का कच्चा वा पक्का वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है यह वैद्यक शास्त्र में विधान है। इसलिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये। अब देखिये सुश्रुतकार परमवैद्य कि जिनका प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे यह लिखते हैं। जितना सामर्थ्य २५ (पच्चीसवें) वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ (सोलहवें) वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है इस लिये वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जानें ॥ १ ॥ सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में २५ (पच्चीस) वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है ॥ २ ॥ और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे अथवा कदाचित् जीवे भी तो उस के अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों इस लिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति ।
आषोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

अर्थ—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्णपुष्टि और उस से आगे किंचित् किंचित् धातु वीर्य की हानि होती है अर्थात् ४० (चालीसवें) वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं पुनः खानपान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है वह कुछ कुछ क्षीण होने लगता है। इस से यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ (सोलह) वर्ष की और पुरुष २५ (पच्चीस) वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का २० (बीस) वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० (चालीसवां) वर्ष और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त का है। जो अपने कुल की उत्तमता उत्तम सन्तान दीर्घायु सुशील बुद्धि बल पराक्रम युक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ (सोलहवें) वर्ष से पूर्व कन्या और २५ (पच्चीसवें) वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार का सुधार, सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रख अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिस से उत्तम सन्तान होवें।

ऋतुदान का काल

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतस्सदा । पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ १ ॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां सप्तयः षोडश स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥२॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ३ ॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्मात्पुत्रार्थिनी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ ४ ॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः । समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥५॥
निन्द्याष्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् । ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥

मनुस्मृतौ अ० ३ ॥४५-५०॥

अर्थः—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे । वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक रहे । जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का सङ्ग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब पूर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के (सोलह) दिनों में पौर्णमासी अमावस्या चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उस को छोड़ देवें इन में स्त्री पुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥ १ ॥ स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ (सोलह) रात्रि का है अर्थात् रजोदर्शन दिन से ले के १६ (सोलहवें) दिन तक ऋतु समय है उन में प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से ले चार दिन निंदित हैं प्रथम: द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे, न वह स्त्री कुछ काम करे किन्तु एकांत में बैठी रहे क्यों कि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है । रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है वैसा है ॥ २ ॥ और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित है और बाकी रहीं दश रात्रि सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ जिन को पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इन में उत्तर उत्तर श्रेष्ठ हैं और जिन को कन्या की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नवीं और पंद्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें*इस से पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे ॥ ४ ॥ पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रह कर गिर जाना होता है ॥५॥ जो पूर्व निन्दित ८ (आठ) रात्रि कह आये हैं उन में जो स्त्री का सङ्ग छोड़ देता है वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

* रात्रि गणना इस लिये भी है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ।

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥ आश्व० गृ० १। १३। ६ ॥

॥ यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का वचन है जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन विधि लिखी है वैसी करनी चाहिये अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह कर के जैसा कि १६ (सोलहवें) और २५ (पचीसवें) वर्ष विवाह कर के ऋतुदान लिखा है वही उपनिषद् से भी विधान है ।

अथ गर्भाधानꣳ स्त्रियाः । पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वꣳ स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा "आदित्यं गर्भमिति" ॥ पार० गृ० १। १३॥

यह पारस्कर गृह्यसूत्र का वचन है । ऐसा ही गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में भी विधान है ॥ इस के अनन्तर जब स्त्री रजस्वला हो कर चौथे दिन के उपरांत पांचवें दिन स्नान कर रज रोग रहित हो उसी दिन (आदित्यं गर्भमिति) इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो उस से पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन कर के निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी ।.यहां पत्नी पति के वाम भाग में बैठे और पति वेदी से पश्चिमाभिमुख पूर्व दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख कर के बैठे और ऋत्विज् भी चारों दिशाओं में यथामुख बैठें ।

गर्भाधानसंस्कार विधिः

जिस रात्रि को गर्भाधान करना हो उस रात्रि से पूर्व दिन में यज्ञ कार्य का आरम्भ करें। विधि यह है—

(१) प्रार्थना—विश्वानिदेवादि मंत्रों द्वारा ।

(२) स्वस्तिवाचन तथा शांति पाठ ।

(३) सामान्यप्रकरण के मंत्रों से हवन ।

(४) निम्न २० मन्त्रों से आहुति देनी, वे मंत्र ये हैं—

प्रथमाहुति

ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥

अर्थ—यह अग्नि भौतिक पदार्थों में प्रधान दोष नाशक है । आनन्द की कामना वाला मैं ब्रह्म का भक्त अग्नि का सेवन करता हूं । इस महिला के दोषों को जो पुष्ट सन्तान के होने में बाधक हैं यह अग्नि निवारण करता है ।

द्वितीयाहुति—

ओं वायोप्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—पूर्ववत् अग्नि के स्थान में केवल वायु लगाना।

तृतीयाहुति—

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥३॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥

अर्थ—पूर्ववत् केवल वायु के स्थान में चन्द्र का प्रयोग करना है।

निम्न मन्त्रों से उक्त तीन मन्त्रों की तरह ही आहुति दें—

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकान उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ५ ॥ मन्त्र ब्राह्मण प्र० १ । खं० ४ । मं० ५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥ ७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ८ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा । इदं सूर्य्याय—इदन्न मम् ॥ ९ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्य्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्य्येभ्यः—इदन्न मम ॥ १० ॥ पारस्कर कां० ११ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ ११ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥ १२ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ १३ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्य्याय—इदन्न मम ॥ १४ ॥

ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुञ्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा । इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्य:—इदन्न मम ॥ १५ ॥ ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये--इदन्न मम ॥ १६ ॥ ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे--इदन्न मम ॥ १७ ॥ ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय--इदन्न मम ॥ १८ ॥ ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय--इदन्न मम ॥ १९ ॥ ओं अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः—इदन्न मम ॥ २० ॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी* और बीस आहुति करने से यत्किंचित् घृत बचे वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवें। इस के पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना अर्थात् एक चांदी वा कांसे के पात्र में भात रख के उस में घी दूध और शक्कर मिला के कुछ ऊंडी धेर रख के जब घृत आदि भात में एकरस हो जाए पश्चात् नीचे लिखे एक २ मन्त्र से एक २ आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा में का शेष आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे।

भात की आहुति—

ओं अग्नये पवमानाय स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम ॥ १ ॥

अर्थ—पवित्र करने वाले भगवान की आज्ञा पालन करने के लिए यज्ञ करता हूँ।

ओं अग्नये पावकाय स्वाहा। इदमग्ने पावकाय इदन्नमम ॥२॥ ओं अग्नये शुचये स्वाहा ॥३॥ इदमग्नयेशुचये इदन्नमम । ओं अदित्यै स्वाहा इदमदित्यै—इदन्नमम ॥ ४ ॥

अखण्डनीय भगवान के लिए यह सुन्दर वचन हैं।

ओं प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥५॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्नि ष्टत्विष्ट कृद्विद्यात्सर्व स्विष्ट सुहुतंकरोतुमे । अग्नयेस्विष्ट कृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नकामान्त्समर्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्नमम ॥ ६ ॥ अर्थ पूर्व कर दिया गया है।

* यह बीस आहुतियां देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श रखे।

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवें। तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देनी। उन आठ मन्त्रों से आठ तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवें।

अष्टाज्याहुति देने के पश्चात् निम्नमन्त्रों से आहुति दें।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥ १ ॥ गर्भंधेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा ॥ २ ॥ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १०। सू० १८४ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥ यजु० अ० १९। मं० ७६ ॥ यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शꣳ भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ पारस्कर कां० १। कं० ११ ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ॥ एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ६ ॥ यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ७ ॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ८ ॥ यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ९ ॥ अथर्व० कां० ६। सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहनभोग की आहुति दे के नीचे लिखे मन्त्रों से भी चार घृताहुति देवे ॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ॥ ४ ॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की दो आहुति देनी ॥

ओ३म् अयास्यग्नेर्वषट् कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवागातुविदः स्वाहा ॥

इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इदन्नमम ॥ १ ॥

अर्थ—यज्ञ के जानने वाले विद्वानों ने जो हवन किया है वह नष्ट न हो।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्नमम। पा० कां० १, २।

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् लिखे प्रमाणे "ओं यदस्य कर्मणोत्यरीरिचं०" इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे जो इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गये हों जब आहुतियां हो चुकें तब उस आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नान के घर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अंगों पर मर्दन करसे स्नान करे तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे। तब दोनों वधू वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करें।

सूर्यदर्शन के समय इन मन्त्रों को पढ़ें—

ओं आदित्यं गर्भं पयसा शमङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥१॥ यजु० अ० १३। मंत्र ४१।

अर्थ—इस सूर्य रूप गर्भ को दुग्धादि से पुष्ट करो, यह सहस्रों में मान्य तथा सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञान की योग्यता रखने वाला है। अतः इसका अपमान वा उपेक्षा मत करो। यह सौ साल तक जीए।

ओं सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥ २॥

अर्थ—सूर्य द्यु, वायु अन्तरिक्ष अग्नि पृथिवी आदि अपने गुणों द्वारा गर्भ की रक्षा करते हैं।

ओं योषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहिनोदिद्युतः पतन्त्याः॥ ३॥

अर्थ—हे भगवन् आप हम से प्रीति कीजिए, आप का तेज सैंकड़ों पदार्थों पर शासन करता है। बिजली से हमारी रक्षा कीजिए।

ओं चक्षुर्नो देवः सविता चक्षूर्न उत पर्वतः। चक्षूर्धाता दधातुनः॥

अर्थ—प्रभु हमारा चक्षु है, वही प्रभु हमारी नेत्रशक्ति को बढ़ावे।

ओं चक्षुर्नोधेहि च चक्षुषे चक्षुर्विख्यैतनूभ्यः। तं चेदं विपश्येम।

अर्थ—हमारे नेत्रों में प्रकाश दीजिए। हमारे शरीरों के लिए प्रकाश प्रदान कीजिए।

ओं सु संदृशंत्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः॥६॥ ऋ० १०।१६८।१–५।

अर्थ—हे प्रकाशक हम आप को भली प्रकार देखें, मनुष्यों द्वारा जानने योग्य सब पदार्थों को भी देखें।

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू—

वधू का पति को अभिवादन—

ओं अमुक (१) गोत्रा शुभदा, अमुक (२) दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि।

(१) इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।

(२) इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे।

अर्थ—मैं अमुक गोत्र और अमुक नाम वाली आप को नमस्ते करती हूं।

ऐसा वाक्य बोलके अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करें तत्पश्चात् स्वपति के पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों उनको भी इसी प्रकार वन्दन करे। इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र को हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए पश्चात् दोनों पति पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठ के वामदेव्यगान करें तत्पश्चात् यथोक्त ❀ भोजन दोनों जने करें और पुरोहितादि सब मण्डली को सन्मानार्थ यथाशक्ति भोजन कराके आदर सत्कार पूर्वक सब को विदा करें।

❀ उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है इसलिये पति पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। सर्वौषधि ये हैं—दो खण्ड आँवाहलदी, दूसरी खाने की हलदी, "चन्दन" मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), कुष्ठ, जटामांसी, मोरबेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजीत, कपूर, मुरता, भद्रमोथ इन सब औषधियों का चूर्ण करके सब सम भाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ मिला उनका दही जमा और उदुम्बर ही की लकड़ी की मंथनी से मंथन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय, घृत करके उसमें सुगन्धित द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुए पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर और एक २ माशा जायफलादि भी मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में से पश्चात् लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ (सात) मंत्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जनें खीर अथवा भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें। इस प्रकार गर्भ-स्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे, यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि—

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ॥

यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् शुद्ध आहार जो कि मद्यमांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह करें। इस प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो संतान और कुल नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें। जब रजस्वला होने के समय में १२–१३ दिन शेष रहें तब शुक्लपक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिला के इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान किया करें तो अत्युत्तम संतान होवे, जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे संतान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि, नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ॥

इस के पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी। गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है। जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिर शरीर, प्रसन्नवदन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रक्खें। वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर सङ्कोच और वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थिर करे तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे। यदि शीतकाल हो तो प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके पश्चात् पृथक् २ शयन करें, यदि स्त्री-पुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय कि गर्भ स्थिर हो गया तो उसके दूसरे दिन और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थिर हो गया है। अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें (१)॥

दूसरे दिन वा दूसरे महीने निम्न मन्त्रों से हवन करे—

ओं यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवाते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा॥१॥

अर्थ—जैसे वायु तालाबों में चारों ओर से चलता है ऐसे ही तेरा गर्भ उदर में चेष्टा करे। स्वाभाविक गति से दसवें मास में उत्पन्न हो।

ओं यथावातो यथावनं यथासमुद्र एजति।
एवात्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा॥२॥

अर्थ—जैसे वायु, वन वा समुद्र तरंगित होता है, ऐसे ही गर्भ दसवें मास में स्वाभाविक गति से उत्पन्न हो।

---

(१) यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायँ अर्थात् दो बार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय, गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे तब पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो माशा और यव के दानों को सेक के पीस के माशा लेके इन दोनों को एकत्र करके पत्नी के हाथ में देके उससे पति पूछे "किं पिबसि" इस प्रकार तीन बार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन बार बोल के उत्तर देवे और उसका प्राशन करे, इसी रीति से पुनः २ तीन बार विधि करना तत्पश्चात् सहदेवी व भटकाई औषधि को जल में महीन पीस के उस का रस कपड़े में छान के पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिंचन करे और पति—

ओ३म् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुकाल विधि करे, यह सूत्रकार का मत है॥

ओं दश मास्शाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि ।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥३॥

ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ७, ८, ९ ।

अर्थ—दस मास तक शयन करता हुआ माता के पेट से, क्षतरहित जीव, जीती माता से उत्पन्न हो ।

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।

यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति ।

एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥१॥

अर्थ—दसवें मास में उत्पन्न होने वाला गर्भ जरायु के सहित कम्पायमान हो, जैसे स्वाभाविक गति से वायु चलता है, ऐसे ही यह दशमास्य गर्भ स्वाभाविकगत्या जरायु सहित उत्पन्न हो ।

ओं यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ।

अङ्गान्यहुता यस्य तं मात्रा समजीगम ꣳ स्वाहा ॥२॥ यजु० ८ । २८ । २९ ॥

अर्थ—हे देवी यह तुम्हारा गर्भ पूजनीय है, इसका कोई अंग विकृत न हो, पुष्ट होकर उत्पन्न हो ।

ओं पुमा ꣳ सौ मित्रा वरुणौ पुमा ꣳ सावश्विना वुभौ ।

पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥१॥

अर्थ—जैसे रात दिन वा प्राण अपान अग्नि और वायु बलवान हैं, वैसे ही तेरे उदर का गर्भ बलवान हो ।

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः ।

पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायतां स्वाहा ॥२॥ मन्त्रब्राह्मण १ । ४ । ८—९ ॥

अर्थ पूर्ववत् ।

इन मन्त्रों से आहुति देकर व लिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवे पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे । कोई मादक मद्य आदि, क्षार, अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावें उसमें ऋतु २ के मसाले गर्मी में ठण्डे इलायची आदि और सरदी में केशर कस्तूरी आदि डालकर खाया करें । युक्ताहारविहार सदा किया करें । दधि में शुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे । जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली होवे ।

इति गर्भाधानविधिः समाप्तः ॥

गर्भाधान का महत्व—

(१) गर्भाधान के प्रतिपादन का मूलमन्त्र यह है कि—

आदित्यंगर्भमित्यादि । यजु० १३ । ४१ ।

इस मन्त्र में गर्भविषयक अनेक बातों का प्रतिपादन किया है । प्रथम यह कि यह गर्भ सूर्य है, जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, चोर आदि का निवारण करता है, अनेक रोगोत्पादक जन्तुओं का विनाश करता है, संसार को प्रकाश प्रदान करता है, अनेक औषधियों को पकाता है वैसे ही यह गर्भस्थ बालक संसार को प्रकाश देने वाला, दुष्टों को दण्ड देने वाला, सज्जनों की आज्ञापालन करने वाला, अज्ञान को मिटाने वाला तथा सूर्यवत् तेजस्वी होकर संसार में जीवे । दूसरा उपदेश यह है कि माता दुग्धादि उत्तम पदार्थों का भक्षण करके गर्भ को हृष्टपुष्ट और नीरोग बनाए । आगे चलकर इस मन्त्र में गर्भ को सहस्रों का पूजनीय लिखा है अर्थात् माता पिता को गर्भस्थ बालक का उपेक्षा वृत्ति से अपमान नहीं करना चाहिये । कौन कह सकता है कि गर्भस्थ बालक संसार पूज्य महर्षि दयानन्द जैसा उत्पन्न हो जाय । पुनः विश्वरूप शब्द से यह बताया है कि इस बालक में सारे संसार को जानने की योग्यता है । सम्भव है वह संसार का महान् वैज्ञानिक बने और फिर माता पिता को आहार व्यवहार से ऐसा करना चाहिये कि न्यून से न्यून बच्चे की सौ साल की आयु हो । इस गर्भाधान मन्त्र के महत्व को न जानने या आचरण न करने से ही आज भारत सन्तान, आयुहीन और बलहीन उत्पन्न होती है ।

(२) अग्ने प्रायश्चित्ते—इत्यादि बीस मन्त्रों में यह बतलाया है कि किन २ कारणों से स्त्री वन्ध्या होती है अथवा सन्तानहीन रहती है । पहला कारण पाप है—स्त्री पुरुषों के पापी अथवा अत्यन्त दुराचारी होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती यदि होती है तो शीघ्र नष्ट हो जाती है । दूसरा कारण यह बताया है कि स्त्री से पुरुष वा पुरुष से स्त्री के अत्यन्त असन्तुष्ट रहने से उत्तम सन्तान उत्पन्न नहीं होती । मनु में लिखा है—

यदि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्तते ।

तीसरा कारण यह बताया है कि स्त्री के गर्भाशय आदि स्थानों के उल्टा वा विकृत होने से सन्तानोत्पत्ति नहीं होती । बस यही तीन कारण हैं जिन से स्त्रियां बन्ध्या रहती हैं । इन दोषों के हटाने का उपाय भी इन्हीं मन्त्रों में बताया है अर्थात् अग्नि वायु चन्द वा सूर्य इन का ठीक २ सेवन ही उत्तम सन्तान की उत्पत्ति का कारण है । शरीर में व्यायाम आदि के द्वारा बलवान अग्नि का शरीर में उत्पन्न करना वायु भ्रमण से रोगों का निवारण करना, चन्द्र सेवन से शरीर में शान्ति आदि का उत्पन्न करना, उचित मात्रा में सूर्य के प्रकाश वा उष्णता से शरीर के दोषों का निवारण करना यही सन्तान होने के उत्तम उपाय हैं ।

(३) विष्णु योनि इत्यादि मन्त्रों में इस बात का उपदेश है कि शरीर के प्रत्येक अंग को हृष्ट-पुष्ट वा सदाचार के द्वारा स्वच्छ वा शुद्ध रखना चाहिए जिस से शरीर बलवान रहे और सन्तान गुण-सम्पन्न पैदा हो ।

(४) यथेयं पृथिवी मही इत्यादि मन्त्रों में इस बात का उपदेश है कि यह पृथिवी अनेक प्रकार की औषधि आदि को उत्पन्न करके उनका पालन करती है वैसे स्वभाव से ही कर्तव्य समझ कर हमें अपनी सन्तान का पालन-पोषण आदि कर्तव्य करने चाहिएं।

(५) यथावातः पुष्करिणीं आदि मन्त्रों में इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि जैसे वायु स्वभावतः चलता है, समुद्र स्वभावतः तरंगित होता है—वैसे ही हम ऐसा उपाय करें जिससे हमारा बच्चा स्वभाव से ही हृष्टपुष्ट हो कर उत्पन्न हो। संसार में देखा जाता है कि जंगल में वा नगरों में अनेक पशु पक्षियों के बच्चे उत्पन्न होते हैं वे कभी रोगी नहीं होते, असमय नष्ट नहीं होते, माता को विशेष कष्ट भी नहीं होता—इसका कारण उनके स्वभावतः सारे कार्यों का करना है। मनुष्यों के अन्दर अस्वाभाविकता के अधिक आ जाने से ही बच्चे का उत्पन्न होना महान् कष्टदायक कार्य बन गया है।

(६) सुश्रुत के शारीरस्थान में लिखा है कि ऋतु काल के पहले दिन से लेकर स्त्री इन कामों को त्याग दे—

ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जन अश्रुपात, स्नान, अनुलेपन, अभ्यङ्ग, नखछेदन, प्रधावन, सहन अतिशब्द श्रवण आदि।

इसका कारण लिखा है कि दिन में सोने वाली को आलसी, अंजन से अन्धा, रोने से विकृतदृष्टि, स्नान अनुलेपन से दुःखशील, तेल मलने से कुष्ठी, नख काटने से कुनखी, भागने हंसने और ज़ोर का शब्द सुनने से चंचल, प्रलापी वा बहरी संतान उत्पन्न होती है। सुश्रुत का यह वचन कितने महत्व का है। प्रायः स्त्रियां ऋतु काल में इन सब कर्मों को करती हैं और यही कारण है कि सन्तानें उक्त दोषों से युक्त उत्पन्न होती हैं। यदि लोग गर्भाधान संस्कार के महत्व को समझ लें तो यह दोष दूर हो सकते हैं।

(७) पूर्वंपश्येत ऋतुस्नाता यादृशं नरमञ्जना। तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्तारं दर्शयेद्यतः॥

ऋतु स्नान के अनन्तर स्त्री जैसे पुरुष को देखेगी वैसी सन्तान उत्पन्न होगी। अतः प्रथम पति को देखे। इस प्रकार गर्भाधान संस्कार के अनेक महत्व हैं। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखते।

अथ पुंसवनम्

पुंसवन संस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञान हुए समय से दूसरे वा तीसरे महीने में है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य का लाभ होवे यावत बालक के जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रह कर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन, छादन, शयन, जागरणादि व्यवहार उसी प्रकार से करे जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरा सन्तान भी उत्तम होवे।

अत्र प्रमाणानि

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ॥ पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे ॥१॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ॥ पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम् ॥२॥

मं० ब्रा० १। ४। ८-९॥

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम् । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥
पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते । तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीकॢपत् । स्त्रैघ्नमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधद्दिह ॥ ३ ॥

अथर्व कां० ६। अनु० २। सू० ११॥

इन मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि पुरुष को वीर्यवान होना चाहिये इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण :—

अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति ॥१॥
प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैके ॥ २ ॥ आश्व० गृ० १। १३। ५। ६१

गर्भ के दूसरे वा तीसरे महीने में वटवृक्ष की जटा वा उसकी पत्ती लेके स्त्री को दक्षिण नासापुट से सुंघावे और कुछ अन्य पुष्ट अर्थात् गुड़च जो गिलोय वा ब्राह्मी ओषधि खिलावे ऐसा ही पारस्कर गृह्य-का प्रमाण है॥

अथ पुꣳसवनं पुरास्यन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ॥ १ ॥

पारस्कर कां० १। कं० १४॥

इसके अनन्तर, पुंसवन उसको कहते हैं जो पूर्व ऋतुदान देकर गर्भस्थिति से दूसरे वा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार किया जाता है इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्रों में लिखा है।

अथ क्रियारम्भः

प्रार्थना से शान्तिप्रकरण पर्यन्त कहे प्रमाणे (विश्वानि देव०) इत्यादि चारों वेदों के मन्त्रों से यज-मान और पुरोहितादि ईश्वरोपासना करें और जितने पुरुष वहां उपस्थित हो वे भी परमेश्वरोपासना में चित्त

लगावें और पृष्ठ ६ में कहे प्रमाणे स्वस्तिवाचन तथा पृष्ठ १० में लिखे प्रमाणे शांतिप्रकरण करके पृष्ठ १३ में लिखे प्रमाणे यज्ञदेश, यज्ञशाला तथा पृष्ठ १७वें में यज्ञकुण्ड, १८ में यज्ञसमिधा, होम के द्रव्य और पाकस्थाली आदि करके और पृष्ठ २१ में लिखे प्रमाणे (अयन्त इध्म०) इत्यादि (ओं अदिते०) इत्यादि ४ (चार) मन्त्रोक्त कर्म और आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) तथा व्याहृति आहुति ४ (चार) और (ओं प्रजापतये स्वाहा) ॥ १ ॥ पृष्ठ २३ में (ओं यदस्य कर्मणो०) ॥ २ ॥ लिखे प्रमाणे २ (दो) आहुति देकर नीचे लिखे हुए दोनों मन्त्रों से दो आहुति घृत की देवे ।

पुंसवनविधिः

(१) विश्वानि देवादि से प्रार्थना ।
(२) स्वस्तिवाचन, शांतिपाठ ।
(३) अग्न्याधान, समिधाधान, अयंत इध्म से ५ घृताहुति ।
(४) अदितेऽनुमस्व इत्यादि से जलसेचन ।
(५) आघारावाज्यभागा वा आज्यभागाहुति ।
(६) ४ व्याहृति आहुति ।
(७) स्विष्टकृत वा प्राजापत्याहुति ।

इतने कृत्य के पश्चात् निम्न २ मन्त्रों से घृताहुति देवे ।

प्रथमाहुति

ओं आतेगर्भो योनिमेतु पुमान् बाण इवेषुधिं । आवीरोजायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा ॥१॥

अ० ३ । २३ ।

अर्थ—हे देवी तेरा गर्भ गत बालक अत्यन्त बलवान हो वे, तथा वीर बने ठीक समय पर उत्पन्न होवे ।

द्वितीयाहुति

ओं अग्निरेतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजां मुंचतु मृत्युपाशात् ।
तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा ॥२॥ मं० ब्रा० १ । १ । १० ।

अर्थ—परमात्माग्नि सब देवों में प्रधान है । वह इस महिला की प्रजा को दीर्घायु । राजा का भी कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में ऐसा प्रबन्ध करे जिस प्रजा जन दीर्घजीवी होवें । जिससे यह नारी पुत्र दुःख को न देखे ॥

इन दोनों मन्त्रों को बोल कर दो आहुति किये पश्चात् एकांत में पत्नी के हृदय पर हाथ धरके यह निम्न लिखित मन्त्र पति बोले—

ओं मन्ते सुशीमे हृदये हितंतः प्रजापतौ ।
यमेहमां तदिदांसमाहं पौत्र मघन्नियां ॥ अ० मृ० शा० आ० १ सू० १२ । ७ ।

अर्थ—हे शोभन केशपङ्क्ति युते तेरे सन्तान पालक हृदय में जो सन्तान का प्रेम विद्यमान है, मैं इस बात को जानने वाला अपने आप को मानता हूं। मैं पुत्र सम्बन्धी पाप को न पाऊं।

तत्पश्चात् सामान्य च प्रकरणोक्त सामवेद आर्थिक और महावाम देव्यगान गा के जो २ पुरुष वा स्त्री संस्कार समय पर आए हों उन को विदा कर दे पुनः वट वृक्ष के कोमल कूपल और गिलोय को महीन बांट कपड़े में छान गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासा पुट में सुंघावे तत् पश्चात्—

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ य० १३ । ४ ॥

अर्थ प्रथम कर दिया गया है ।

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यैरसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्यत्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ २ ॥ य० ३१ । ७ ॥

अर्थ—प्रकृति जल वा पृथिवी के निर्माण के लिए सूर्यादि दृश्य पदार्थों से भी प्रथम विद्यमान था। उस प्रकृति के द्वारा भगवान् अनेक रूपों की रचना करता है । वह मनुष्य के देवत्व को भी प्रथम सृष्टि में उत्पन्न करता है ।

उक्त दो मन्त्रों के उच्चारण पीछे पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धरकर निम्न-लिखित मन्त्र बोले—

सुपर्णोसिगरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ।
स्तोम आत्मा छंदांस्यङ्गानि यजुंषि नाम । साम ते तनूर्वाम देव्यं
यज्ञायज्ञियं पुच्छंधिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवंगच्छ स्वः पतः ॥
य० १२ । ४ ॥

अर्थ—गर्भस्थ जीव सुन्दर लक्षण युक्त महात्मा तथा भगवत् कृपया ज्ञानादि तीनों काण्डों से रक्षित होवे । स्तुतिएं ही इसका आत्मा हो यजु को ही अपना नाम जाने । ऐसे अनेक गुणों के धारण करने से ही मनुष्य सुन्दर पालन पूर्ण कर्म वाला वा महात्मा बनता है ।

इसके पश्चात् स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे विशेष कर गिलोय ब्रह्मी औषधी और सुंठी को दूध के साथ थोड़ी २ खाया करे और अधिक शयन और अधिक भाषण अधिक खारा खट्टा तीखा कड़वा रेचक हरड़ आदि न खावे सूक्ष्म आहार करे । क्रोध, द्वेष लोभादि दोषों में न फंसे चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे इत्यादि शुभाचरण करे ।

इति पुंसवनसंस्कारविधि समाप्तः ॥

पुंसवन के लाभ—

गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन ये तीनों संस्कार गर्भगत बालक से सम्बन्ध रखते हैं। बालक के उत्पन्न होने के पश्चात उसको पुष्ट करने के लिये आहार विहार से इस बात पर अधिक ध्यान देना चाहिए कि उसको गर्भावस्था में अधिक पुष्ट किया जावे। बाहिर का बालक तो रुदनादि से आहार की याचना भी कर लेगा किन्तु गर्भस्थ तो माता पर ही निर्भर है। इसलिए पुंसवन संस्कार आवश्यक है।

मूल के सिंचन से तथा पुष्ट होने से ही पत्ते टहनी फलादि पुष्ट वा सुन्दर होते हैं। पुंसवन मूलके सिंचन के समान है।

सुश्रुत में लिखा है—

तृतीये हस्तपादादिशिरसां पंचपिंडकानिर्वर्तते अंग प्रत्यंग विभागश्च सूक्ष्मो भवति।
चतुर्थे सर्वांग प्रत्यंग विभाग प्रव्यक्ततरो भवति॥ सु० शारीरस्थान अ० ३॥

तीसरे मास में बालक के शिर आदि अवयव सूक्ष्म रूप में प्रकट होते हैं। तथा चतुर्थ मास में सब अंग प्रकट हो जाते हैं। अतः इस अवस्था में माता पिता की उपेक्षावृत्ति वा दूषित वृत्ति से गर्भस्थ बालक को विशेष हानि की सम्भावना होती है उस निवृत्ति के लिए पुंसवन संस्कार है।

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रिया मनुषिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तद् प्रजापतिरब्रवीत्॥ अ० कां० ६ सू० मं० ॥२॥

पुरुष में पुष्ट वीर्य होता है। विधि से गर्भाधान करने से ही सन्तान उत्पन्न होता है। आज इस प्राकृतिक नियम की उपेक्षा करके अनेक सन्तान हीन साधु सन्तों के पास भटकते फिरते हैं। कतिपय भोली माताएं तो इन कुपथगामी साधुओं के दुष्टोपदेश से निरपराध बालकों की हत्या तक कर देती हैं। ऐसे लोगों को सिवाय धन नाश और अपयश के कुछ नहीं मिलता।

पुंसवन संस्कार का अर्थ ही यह है कि पुरुष सदाचारी बन कर वीर्य की सर्व प्रकार से रक्षा करे तथा अपनी पत्नी वा गर्भगत बालक की विशेष रक्षा भी उसके ब्रह्मचर्य पर निर्भर है।

"यत्ते सुसीमे" इस मंत्र द्वारा पति पत्नी को यह आश्वासन दिलाता है कि—देवी तेरे हृदय में इस गर्भगत बालक के प्रति अगाध प्रेम है, मैं इस बात को जानता हूं। मैं ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं करूंगा जिससे पुत्र सम्बन्धी पाप मुझ को भोगना पड़े या पुत्र के अंग भंग होने से या मरने से मुझ को मृत सम्बन्धी कष्ट सहना पड़े।

"अद्भ्य संभृत" इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि जैसे प्रकृति देवी से यह इतना सुन्दर संसार उत्पन्न होता है। इसी प्रकार रज वीर्य तथा आहार व्यवहार से उत्तम सन्तान होती है। उनका ठीक रखना पुंसवन का उद्देश्य है।

"सुपर्णोऽसि" इस मंत्र द्वारा पति अपनी पत्नी को यह वचन देता है कि मैं इस सन्तान को प्रभुभक्त वेदप्रिय महात्मा तथा ज्ञान कांड, कर्म कांड वा उपासना कांड में प्रवीण बनाऊंगा।

पुरुषत्व वा वीर्य लाभ के अर्थ बालक को शक्तिशाली बनाने के हैं।

अथ सीमन्तोन्नयनम्

अब तीसरा संस्कार सीमन्तोन्नयन कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य गर्भ स्थिर उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इसमें आगे प्रमाण लिखते हैं।

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥ आपूर्यमाणपक्षे यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥ अथास्यै युग्मेन शलालुग्रप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुशपिञ्जूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः। चतुर्वा ॥ आश्वलायनगृह्यसूत्र ॥ १।१४।२।४।

पुंसवनवत्प्रथमे गर्भे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण—इस प्रकार गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्र में भी लिखा है॥

अर्थ—गर्भ मास से चौथे महीने में शुक्ल पक्ष में जिस दिन मूल आदि पुरुष नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे और पुंसवन संस्कार के तुल्य छठे आठवें महीने में पूर्वोक्त पक्ष नक्षत्र युक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करे इसमें प्रथम हवन आदि करके (अदितेऽनुमन्यस्व) इत्यादि पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे वेदी से पूर्वादि दिशाओं में जल सेचन करके—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाच नः स्वदतु स्वाहा ॥

१ ॥ य० अ० ११। मं० ७ ॥

इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करके आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) मिल के ८ (आठ) आहुति लिखे प्रमाणे करके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि ॥

अर्थात् चावल, तिल, मूंग इन तीनों को समभाग लेके—

ओं प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥

अर्थात् धो के इनकी खिचड़ी बना, उसमें पुष्कल घी डाल के निम्नलिखित मन्त्रों से ८ (आठ) आहुति देवें ॥

सीमन्तोन्नयन विधिः—

(१) विश्वानि देवादि से प्रार्थनादि।

(२) स्वस्तिवाचन शांति पाठ।

(३) अन्वाधान समिधाधान।

(४) ५ घृताहुति अयंत इध्मआत्मा से।

(५) अदितेऽनुमन्यस्वादि से जल सेचन।

(६) आघारावज्य भागाहुति चार।

व्याहृति आहुति चार खिचड़ी की आठ आहुति।

ओं धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातु मुक्षितं।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा इदं धात्रे इदन्न मम ॥१॥ अ० ७। १७॥

अर्थ—पोषक भगवान् दानी पुरुष को आजीविका दे। हम सर्व स्तोतव्य भगवान की स्तुति को धारण करें।

ओं धाता प्रजानामुत राय ईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान।
धाता कृष्टिरनिमिषाभिचष्टे धात्रऽइद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा॥ इदं धात्रे इदं न मम ॥२॥

धाता ही प्रजा वा धनों का स्वामी है। उसने ही संसार रचा है धाता सब प्रजाओं को देखता है। उसकी आज्ञा पालन के लिये हवन करो।

ओं राकामहं सुहवां सुष्टुतीहुवेशृणोतु न सुभगा बोधतुत्मना।
सीव्यत्वयः सूच्याछिद्य मानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यं स्वाहा॥ इदं राकायै इदं न मम ॥३॥

अर्थ—मैं इस पूजनीया देवी को पुकारता हूँ। वह हमारी बातें सुने तथा आत्मा के द्वारा और अच्छिद्य सूची से हमारे कर्मों को जोड़ देवे। हमें स्तुति योग्य दानी वीर प्रदान करे।

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नोऽद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगेरराणा स्वाहा॥ इदं राकायै इदन्न मम ॥४॥
ऋ० २। ३२। ४।

अर्थ—हे आनंदप्रदे जो आप की सुन्दर मतियें हैं या सुन्दर तेज है जिस के द्वारा आप अपने पुत्र को धन वा शिक्षा देती हो उन्हीं सुसंमति वा तेज के द्वारा हम में विराजो हमें पुष्टि प्रदान करो॥

नेजमेष परापत सुपुत्रः पुनरापत।
अस्यै मे पुत्रकामायै गर्भमाधेहि यः पुमान् स्वाहा ॥५॥

अर्थ—यह मेरा पति किसी निंदनीय कार्य को नहीं करता, भगवान् की कृपा से मुझ को सुपुत्र मिला है आप प्ररुष हैं ऐसा भोजनादि दो जिस से यह गर्भ अत्यन्त पुष्ट होवे।

यथेयं पृथिवी मह्युत्तमाना गर्भमादधे।
एवं तं गर्भ माधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ६॥

अर्थ—जैसे यह पृथिवी अनेक पदार्थों को अपने अन्दर रखती हुई भी पुष्ट है ऐसे ही तुम भी पुष्ट रहो ताकि सन्तान दशवें मास में उत्पन्न हो ॥

विष्णो श्रेष्ठेन रूपेणास्यां नार्यां गवीन्यां ।
पुमां सं पुत्रानाधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थ—हे प्रभो आप की कृपा से सुन्दर रूप युक्त इस गोपालक नारी में बलवान् पुत्र उत्पन्न हों ॥

प्रजापते नत्वदेता न्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव यत्-
कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयोरयीणां स्वाहा ॥ ८ ॥

(अर्थ पहले कर दिया है, उक्त आहुतियां देकर)

(१) आजापत्याहुति ।
(२) स्विष्टकृताहुति ।
(३) अष्टाज्याहुति (तवन्नोऽग्ने सै)
(४) व्याहृति आहुति ।

ये आहुतिएं देकर पति पत्नी एकांत में जाके उत्तमासन पर बैठ पति पत्नी के पश्चात् पृष्ठ की ओर बैठ—

सीमंतोन्नयन के मन्त्र

ओं सुमित्रिया नः आप ओषधयः संतु ।
दुर्मित्रिया स्तस्मै संतु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म ॥ १ ॥ य० ६ । २२ ॥

अर्थ—जल वा औषध हमारा कल्याण करें । जो पुण्यात्माओं से द्वेष करे उस को ये कष्ट कर होवें ।

ओं मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्यावैश्वानरमृत माजातमग्निं ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानांमासन्ना पात्रं जनयंत देवाः ॥ २ ॥ यं० ७ । २४ ॥

अर्थ—विद्वान् लोग शिक्षा से ऐसे पुरुषों को उत्पन्न करें जो कान्ति वाले और निरन्तर काम करने वाले जो सब का हित करने वाले ज्ञानवान् कवि हैं, जो संसार में सम्राट बन कर अतिथिवत् पूजनीय हों ॥

ओं अयमूर्ज्जावतो वृक्षउर्जीव फलिनीभव ।
पर्णं वनस्पते नुत्वा नुत्वा सूयसा२ रयिः ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे फल वाला वृक्ष है वैसे ही तुम पुत्र रूप उत्तम फल वाली होवो । हे प्रिय आप इस पुत्र धन को पुष्ट करें ।

ओं येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय ।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि ॥ ४ ॥ मै० ब्राह्मण । ग्रा० १।५।१२।

अर्थ—भगवान् संसार के सौभाग्य के लिए जैसे वा वाणी पृथिवी की मर्यादा को जानता है, वैसे मैं भी इस की मांस को उत्तमलक्षण बनाकर, भोजनादि की मर्यादा को नियत करता हूं जिस से इसकी प्रजा और यह देवि दीर्घजीवि हो।

ओं राकामहꣳसुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु। उपागहि सहस्रपोषꣳ सुभगे रराणा ॥५॥
ओं किपत्तत्मना सीव्यत्वपः सूच्या छिद्यमानया ददातु वीरꣳशतदायमुष्यम् ॥ ६ ॥
ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
तताभिर्नो अद्य सुमनाऽयालि प्रजां पशून्त्सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः ॥ ७ ॥ ऋ० मं० २ । सू० ३२ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पति अपने हाथ से स्वपत्नी के केशों में सुगन्ध तैल डाल कंघे से सुधार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही पशु के कांटे से अपनी पत्नी के केशों को स्वच्छ कर पट्टी निकाल और पीछे की ओर जूड़ा सुन्दर बांधकर यज्ञशाला में आवें उस समय वीणा आदि बाजे बजवावें, तत्पश्चात् सामवेद का गान करें, पश्चात्—

ओं सोमप्रथो वो राजेमा मानुषीः प्रजाः । अविमुक्त चक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यं असौ* ॥
पारस्कर कां० १ । कं० १५ ॥

अर्थ—सोम हमारा राजा है—हम उसकी प्रजा हैं। हम उसी के आश्रय से न्याय चक्र को धारण करते हुए निवास करते हैं।

आरम्भ में इस मन्त्र का गान करके पश्चात् अन्य मन्त्रों का गान करें तत्पश्चात् पूर्व आहुतियों के देने से बची हुई खिचड़ी में पुष्कल घृत डाल के गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखे उस समय पति स्त्री से पूछे, "किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि" तत्पश्चात् एकान्त में वृद्ध कुलीन सौभाग्यवती पुत्रवती गर्भिणी अपने कुल की और ब्राह्मणों की स्त्रियां बैठें प्रसन्नवदन और प्रसन्नता की बातें करें और वह गर्भिणी स्त्री उस खिचड़ी को खावे और वे वृद्ध समीप बैठी हुई उत्तम स्त्री लोग ऐसा आशीर्वाद देवें।

ओं वीरसूस्त्वं भव, जीवसूस्त्वं भव, जीवपत्नी त्वं भव ॥

ऐसे शुभ मांगलिक वचन बोलें तत्पश्चात् संस्कार में आये हुए मनुष्यों का यथायोग्य सत्कार करके स्त्री स्त्रियों और पुरुष पुरुषों को विदा करें ॥

इति सीमन्तोन्नयन संस्कार विधिः समाप्तः

---

* यहां किसी नदी का नामोच्चारण करें।

सीमन्तोन्नयन का फल—

(१) सीमन्तोन्नयन के अर्थ यह हैं केशवेश की मर्यादा या मांग या उस की उन्नति। यह उपलक्षण मात्र है। पति उस की मांग को अर्थात् केशों की मर्यादा को ठीक करता हुआ यह कहता है कि जैसे मैं तुम्हारे केशों की मर्यादा बांधता हूँ वैसे हो इस गर्भस्थ बालक को रक्षा के लिए अहार विहार खान पान आदि की मर्यादा बांधता हूँ जिस से यह बालक उत्तम वा अनेक गुण सन्पन्न हो।

(२) महर्षि ने सीमन्तोन्नयन के सम्बन्ध में लिखा है कि सीमन्तोन्नयन इस लिए किया जाता है जिस से गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट आरोग्य वा गर्भ स्थिर और उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे। इन थोड़े से वाक्यों में स्वामीजी ने सीमन्तोन्नयन का सम्पूर्ण रहस्य प्रकट कर दिया। पति आदि को गर्भिणी देवी से ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिस से उस का मन अत्यन्त प्रसन्न रहे। देवी के मन की सन्तुष्टि का प्रभाव जहां उस के स्वास्थ्य पर पड़ेगा वहाँ गर्भस्थ बालक पर बहुत ही अधिक होगा। बालक का क्रोधी दुःखी, चिड़-चिड़ा होना माता के गर्भावस्था के व्यवहार पर ही निर्भर है। यदि इस अवस्था में गर्भवती दुःखी रहे तो गर्भ गिरने का भी भय रहता है।

(३) देवी के मन को सन्तुष्ट करने का एक ढंग राकामहं वा रास्ते एके आदि मन्त्रों में लिखा है। पति पत्नी से कहता है तुम सरला हो स्तुति के योग्य हो, हमारी बातों को ध्यान से सुनो और हमें बोध प्रदान करो और हमारे परिवार में यदि फूट हो तो उस को अपने कर्मों द्वारा वैसे ही सी दो जैसे फटे हुए कपड़े को सूई सी देती है। हमें तुम्हारी कृपा से उत्कृष्ट दानी गुणी प्रजा प्राप्त हो। हे देवी तुम्हारी सम्मति हमारे लिए अत्यन्त मूल्यवान है उस पर चल कर सम्पूर्ण परिवार का कल्याण हो सकता है। तुम्हारी कृपा से हमें ऐसा धन प्राप्त हो रहा है जिस के द्वारा हम हजारों का पालन कर सकते हैं। इन सत्य गुणों को सुन कर देवी का मन अत्यन्त सन्तुष्ट रहेगा और उस की सन्तान में भी यही गुण आवेंगे।

शंका—सीमन्तोन्नयन संस्कार में स्वामी जी ने गृहस्थ सूत्र का प्रमाण उद्धृत किया है उस से सिद्ध होता है कि फलित ज्योतिष ठीक है क्योंकि उस में लिखा है कि मूलादि पुरुषवाचक नक्षत्रों में जब चन्द्रमा हो तब यह संस्कार करे।

उत्तर—(१) स्वामी जी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक फलित ज्योतिष का खण्डन किया है पुनः वह फलित ज्योतिष के मानने वाले कैसे हो सकते हैं।

(२) उन्हों ने विज्ञापन निकाल कर जो उन के वेद भाष्य के साथ छपा हुआ है यह स्पष्ट कर दिया था कि मैंने अपने ग्रंथों में जो प्रमाण लिखे हैं उन को वेदामुकूल होने से साक्षी वा प्रमाण मानता हूँ, विरुद्ध होने से त्याज्य मानता हूँ इस लिए मेरे ग्रन्थों में यदि वेदाशय के विरुद्ध कोई प्रमाण है तो वह ग्रंथ का का एक मत दिखाने के लिए है मैं उस के मानने को वाध्य नहीं।

स्वामी जी ने विवाह संस्कार के आरम्भ में ही उद्गयन सूत्र को उद्धृत करते हुए नीचे टिप्पणी में लिखा है—यह नक्षत्रादि का विचार कल्पना युक्त है इस से प्रमाण नहीं उस से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि संस्कार

विधि में किसी प्रमाण में यदि वेद का विरोध प्रतीत हो तो स्वामी जी उसे मानने को बाध्य नहीं, किन्तु उस ग्रंथ पर ही उस का उत्तरदायित्व है जिस का वह प्रमाण है । सम्भव है उस ग्रंथ में भी किसी ने प्रक्षेप कर दिया हो ।

अथ जातकर्मसंस्कारविधिः

इसका समय और प्रमाण और कर्मविधि इस प्रकार करें ।

सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति ॥ पा० कां० १ । कं० १६ ॥

इत्यादि पारस्करगृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार आश्वलायन, गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी लिखा है ।

जब प्रसव होने का समय आवे तब निम्नलिखित मंत्र से गर्भिणी स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करे—

ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथा यं वायुरेजति
यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ य० अ० ८ । मं० २८ ॥

इससे मार्जन करने के पश्चात्—

ओं अवैतु पृश्निशेवल꣡ꣳ शुभे जराय्वत्तवे । नैव मा ꣡ꣳ
सेन पीवरीं न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम् ॥

इस मन्त्र का जप करके पुनः मार्जन करे ।

कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्ययेन प्राशयेत् ॥

जब पुत्र का जन्म होवे तब प्रथम दायी आदि स्त्री लोग बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कोमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर पिता के गोद में बालक को देवे । पिता जहां वायु और शीत का प्रवेश न हो वहां बैठ के एक बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा शुद्ध वस्त्र से पोंछ नवीन शुद्ध वस्त्र पहिना के, जो प्रसूता घर के बाहर पूर्वोक्त प्रकार कुण्ड कर रक्खा हो अथवा तांबे के कुण्ड में समिधा पूर्वलिखित प्रमाणे चयन कर पूर्वोक्त सामान्यविध्युक्त पृष्ठ २०–२१ में कहे प्रमाणे अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके सुगन्धित घृतादि वेदी के पास रख के हाथ पग धोके एक पीठासन अर्थात् शुभासन पुरोहित ❀ के लिये कुण्ड के दक्षिणभाग में रक्खे, उस पर उत्तराभिमुख बैठे और यजमान अर्थात् बालक का पिता हाथ पग धोके वेदी के पश्चिम भाग में आसन बिछा उस पर उपवस्त्र ओढ़ के पूर्वाभिमुख बैठे तथा सब सामग्री अपने और पुरोहित के पास रख के पुरोहित पद के स्वीकार के लिये बोले—

❀ धर्मात्मा शास्त्रोक्त विधि की पूर्णरीति से जाननेहारा विद्वान् सद्धर्मी कुलीन निर्व्यसनी सुशील वेदप्रिय पूजनीय यजमानोपरि गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है ।

ओ३म् आ वसोः सदने सीद ॥ तत्पश्चात् पुरोहितः—**ओं सीदामि ॥**

बोल के आसन पर बैठ के पृष्ठ २० में लिखे प्रमाणे "अयन्त इध्म" ३ मन्त्रों से वेदी में चन्दन की समिधाधान करे और प्रदीप्त समिधा पर पूर्वोक्त सिद्ध किये घी की पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) दोनों मिल के ८ (आठ) आज्याहुति देनी।

जातकर्म संस्कार विधि—

(१) अग्याधान-समिधाधान।

(२) पांच घृत की आहुति वा जल सेचन।

(३) आघारावाज्यभागाहुति चार।

(४) व्याहृति आहुति चार।

(५) निम्न मन्त्रों से दो आज्याहुति देवे तत्पश्चात।

प्रथम आहुति—

ओं या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारयायजे स ँ राधनीमहम्। स ँ राधिन्यै दैव्ये देष्ट्र्यै। स्वाहा। इदं संराधिन्यै-इदन्नमम ॥

अर्थ—यह देवी मेरे अनुकूल चलने वाली तथा घर को सम्भालने वाली है, मैं इस देवी की अनेक व्याधियों को दूर करने और पुष्टि के लिए हवन करता हूँ। यह कार्यों की सिद्ध करने वाली इष्ट फल दात्री है।

दूसरी आहुति—

ओं विपश्चितत्पुच्छमभरत्त द्धाता पुनरा हरत। परेहि त्वं विपश्चित् पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा ॥ इदं धात्रे इदं न मम ॥२॥ म० ब्राह्मण १। ५। ६। ७।

अर्थ—कोविदों ने इस सन्तान को दुःख निवारक बनाया है। भगवान् ने भी इसे श्रेष्ठ बनाया है हे विद्वानों तुम आओ जिस से यह सन्तान श्रेष्ठ बने।

इन दोनों मन्त्रों से दो आज्याहुति करके और वाम देव्य गान करके ईश्वरोपासना करे तत्पश्चात घी और मधु दोनों बराबर मिला कर जो प्रथम सोने की शलाका रखी हो उस से बालक की जीभ पर—

"ओ३म्" यह अक्षर लिख के उस के दक्षिण कान में "वेदोसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है। ऐसा सुना के पूर्व मिलाये हुए घी और मधु को उस सोने की शलाका से बालक को नीचे लिखे मन्त्र से थोड़ा सा चटावे।

ओं प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनां।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदोलोके अस्मिन् ॥१॥

मैं तुम को घृत वा मधु चटाता हूँ (वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनां) मैं जानता हूँ भगवान् ने इस

को अनेक पदार्थों में उत्तम बनाया है तुम विद्वानों से सुरक्षित होते हुए इस संसार में सौ वर्ष तक जीते रहो।

ओं मेधां ते मित्रा वरुणौ मेधामग्निदधातु ते।
मेधां तेऽश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ २ ॥ सा० मं० ब्रा० म० १ ख० पू० मं ६ ॥

रात्रि वा दिन के द्वारा भगवान् तुम्हारी मेधा को बढ़ावे पुष्प माला धारी अध्यापक उपदेशक तुम को शुभ मेधा प्रदान करें।

भू स्त्वयिदधामि ॥ ३ ॥ भुव स्त्वयिदधामि ॥४ ॥
स्वस्त्वयिदधामि ॥ ५ ॥ भू र्भुवः स्वः सर्वंत्वयिदाधामि ॥६॥ पा० कां० १ कं० १६ ॥

प्राण स्वरूप दुःख नाशक सुख स्वरूप भगवान् के इन तीन नामों को तुम्हारे जीवन का आधार बनाता हूं।

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रिय मिंद्रस्य काम्यम्।
सनि मेधामयांसिष स्वाहा ॥ ७ ॥ ऋ० १। १८॥

सभाओं के पति विचित्र प्रिय तथा जीवात्मा के कमनीय प्रभु मेधा बुद्धि की याचना करता हूं॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से सात बार घृत मधु प्राशन कराके तत्पश्चात चावल और जव को शुद्ध कर पानी से पीस वस्त्र से छान एक पात्र में रख के हाथ के अंगूठा और अनामिका से थोड़ा सा लेके:—

ओ३म् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्।

इस मन्त्र को बोल के बालक के मुख में एक विन्दु छोड़ देवे यह एक गोभिलीय गृह्यसूत्र का मत है सब का नहीं। पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में मुख लगा के निम्नलिखित मन्त्र बोले—

दोनों कानों में जपने के मन्त्र—

ओं मेधांते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। मेधांते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥ १ ॥ ओं अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥ २ ॥ ओं सोमऽआयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन०* ॥ ३ ॥ ओं ब्रह्मऽआयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन० ॥४॥ ओं देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन० ॥ ५ ॥ ओं ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ६ ॥ ओं पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन० ॥ ७ ॥ ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन० ॥ ८ ॥ ओं समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मस्तेन त्वायुषाऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ९ ॥ पा० कां० १। कं० १६ ॥

अर्थ—अग्नि वनस्पति देव ऋषि पितर आदि जैसे दीर्घ आयु वाले होते हैं वैसे ही मैं तुम को दीर्घ जीवन वाला अनेक गुणों वाला बनाऊंगा। इन सब वाक्यों का ऐसा ही अर्थ है।

* यहां पूर्व मन्त्र का शेष (त्वा०) इत्यादि उत्तर मन्त्रों के पश्चात् बोले।

इन नव मन्त्रों का जप करे इसी प्रकार बायें कान पर मुख धर ये ही नव मन्त्र पुनः जपे। इस के पीछे बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्श से हाथ धर अर्थात् बालक के स्कन्धों पर हाथ का बोझा न पड़े, निम्नलिखित मन्त्र बोले—

कन्धे पर हाथ रख के बोलने के मन्त्र—

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रवणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषंरयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नां ॥ ऋ०। २ । २१ ॥

अर्थ—हे विद्वान् वा परमेश्वर आप इस बालक के लिए उत्तम विद्या धन वा अन्य धन प्रदान कीजिये, वह शक्ति जिस से विद्याग्रहण करते हैं दीजिये। ऐश्वर्य प्रदान कीजिये तथा कोई हमारे शरीरों को नष्ट न कर सके। वाणी की मधुरता और सर्व काल की निर्विघ्नता प्रदान कीजिए।

अस्मै प्रयंधिमघवन्नृजीषिन्निद्रस्य रायो विश्व वारंस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीरान् शाश्वत इन्द्रं शिप्रिन् ॥ २ ५ ऋ०। ३। ३६

हे बहुधनयुक्त राजन् वा विद्वान् सरल स्वभाव वाले जिस से सम्पूर्ण सुख मिलता हो वह धन इस बालक को वा हम को प्रदान कीजिये। सौ वर्ष जीने की शक्ति इस बालक को दीजिये। हमारे विक्रांत वीर निरन्तर बढ़ते रहें।

ओं अश्मा भवपरशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
वेदो वे पुत्र नामासि सजीव शरदः शतम् ॥ २ ॥ मं० ब्र० १। ५। १८।

अर्थ—हे पुत्र वा पुत्री तू, पाषाणवत् दृढांग हो, कुल्हाड़े की तरह शत्रु नाशक वा दुर्गुण नाशक हो, स्वर्णवत् तेजस्वी बन वेद ज्ञान सत्तायुक्त हो शत वर्ष तक जीते रहो। इन मन्त्रों को बोल के तत् पश्चात्—

इसका तीन बार जप करे—

ओं त्रायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्रायुषं।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषं ॥ २ ॥ य० ३। ६२।

अर्थ—बाल वृद्ध वा युवावस्था में नेत्र दृष्टियुत रहें तथा तीनों अवस्थाओं में सुन्दर जीवन रहे। प्रभु त्रिगुण आयु प्रदान करे जैसे विद्वान् चार सौ वर्ष की आयु का उपभोग करते हैं हम भी वैसे ही करें।

इस मन्त्र का तीन बार जाप करे तत् पश्चात् बालक के स्कंध पर से हाथ उठा ले और जिस जगह पर बालक का जन्म हुआ हो वहां जाके—

जन्म स्थान पर जपने का मन्त्र—

ओं वेदते भूमि हृदयं दिवि चंद्रमसिश्रितं। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम
शरदः शतम् जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् ॥ १० ॥ पार० का० ७ कं० १६।

अर्थ—हे देवि मैं तेरे हृदय को जानता हूं—जो इस चन्द्रमा तुल्य कांति वाले बालक में लगा हुआ है और मुझ को भी प्रभु भली प्रकार जानते हैं कि इस बालक से कितना स्नेह है। प्रभु की कृपा से हम सब सौ वर्ष तक जीवें। इत्यादि इस मन्त्र का जाप करे तथा—

जल से प्रसूता के देहमार्जन के मन्त्र—

यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम् ॥ २ ॥

यत् पृथिव्या ममृतं दिविचन्द्रमसिश्रितं। वेदामृतस्येह नाम माहं पौत्रमघं रिषम् ॥ ३ ॥

जो तेरा हृदय पृथिवी वा चन्द्र में संलग्न है। उसमें कभी भी पुत्र सम्बन्धी दुःख को न भोगूं।

ओं इन्द्राग्नि शर्म यच्छतं प्रजापति। यथा यत्र प्रमीयते पुत्रो जनित्रया अधि ॥ ४ ॥

प्रभु तथा ज्ञानी राजा इस बच्चे का कल्याण करें यह दीर्घायु होवे। माता की गोद हरी भरी रहे।

यदहश्चंद्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्।

तदहं विद्वांस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघं रुदम् ॥ ५ ॥ मं० ब्रा० १।५।१०।१३।

अर्थ—जो पृथिवी का काला भाग चांद में स्थिर है वैसे ही सर्वदा तुम्हारा वा मेरा हृदय इस बालक की पालना में संलग्न रहे। इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ सुगंधित जल से प्रसूता के शरीर का मार्जन करे।

बालकार्थ आशीर्वाद मंत्र—

ओं कोऽसि कतमोस्येषोऽस्यमृतोऽसि। आहस्यत्यं मासं प्रविशासौ ॥ ६ ॥

अर्थ—तू कौन है, कौन सा है (उत्तर) तू आत्म स्वरूप है, अमरण धर्मा है। तू सूर्य सम्बन्धी प्रत्येक मास का उपभोग कर।

सत्वाह्ने परिददातु अहस्त्वा रात्र्यै परिददातु। रात्रि स्त्वाहोरात्राभ्यां परिददातु। अहो रात्रे त्वार्धमासेभ्यः परिदत्तामर्ध मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्य परिदद्त्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै ददात्वसौ ॥७॥ मं० ब्रा० १।५।१४।१५।

प्रभु कृपा से सूर्य दिन के लिये, दिन रात के लिये, रात रात दिन के लिये अहोरात्र अर्ध मास मास के लिये, मास ऋतुओं के लिये ऋतु वर्ष के लिये तथा वर्ष उमर के लिये प्रदान करें अर्थात् लगातार तुम्हारी जीवन वृद्धि हो, कोई बाधा उपस्थित न हो।

इन मंत्रों को पढ़ के बालक को आशीर्वाद देवे पुनः—

मस्तिष्क आघ्राण के मंत्र—

अंगादंगात् संस्रवसि हृदयादधि जायसे। प्राणं ते प्राणेन संदधामि जीवे मे सावदायुषं ॥८॥

अर्थ—तू मेरे प्रत्येक अंगों के सार से उत्पन्न हुआ है। तू मेरा प्रतिबिम्ब है तू मेरी आयु को भोग।

अंगादंगात् संभवसि हृदयादधि जायसे । वेदो वै पुत्र नामासि सजीव शरदः शतम् ॥९॥
अश्मा भव परशुर्भवहिरण्यमस्तृतं भव आत्मासि पुत्र मामृथाः सजीव शरदः शतम् ॥१०॥
पशूनां त्वा हिंकारेणाभिजिघ्राम्यसौ ॥ ११ ॥ मं० ब्रा० १।५।१६।१६। गो० २।८।२५

पशुओं के हिंकार से यानि तेरे लिए दूध वाले पशु पालूंगा। जिन के दूध से तू पुष्ट होवे।

इन मन्त्रों को पढ़ के पुत्र के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूंघे। इसी प्रकार जब परदेश से आवे वा जावे तब २ भी इस क्रिया को करे जिस से पुत्र और पिता माता में अति प्रेम बढ़े।

पत्नी को आशीर्वाद

ओं इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरेमजीजनथाः ।
सा त्वं वीरवती भव यास्मान् वीर वतोऽकरत् ॥ १ ॥ पा० कां १ कं १६ ॥

अर्थ—तू प्राण उदान का पात्र है। वीरे! तूने वीर पुत्र को जन्म दिया है। हम वीरों वाले बने हैं।

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किंचित उष्ण सुगंधित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के:—

बालक के मुख में स्तन देने के मन्त्र—

ओं इमं स्तन मूर्जस्वंतं धयापां प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये ।
उत्संजुषस्व मधुमंतमर्वन्त्समुद्रियं सदनमाविशस्व ॥ १ । य० १७ । ८७ ॥

अर्थ—हे बालक इस बल वाले स्तन का पान कर जो शरीर में पुष्ट का कारण है। इस मधु से भरे स्तन सागर से आने वाले दूध का पान कर। इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन बालक के मुख में देवे इस के पश्चात—

वाम स्तन पान—

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
दो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवेकः ॥ २ ॥ ऋ० १ । १६४ । ४६ ।

अर्थ—हे देवि तेरा यह स्तन शांत आनन्द के देने वाला है—दूध रूपी रत्न को धारण करने वाला तथा सुन्दर दान देने वाला है। जिस से तुम सब सन्तानों की पालना करती हो इस बालक यह स्तन पिलावो।

इस मन्त्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख देवें तत पश्चात—

प्रसूता के शिर की ओर कलश स्थापन—

ओं आपो देवेषु जागृथ यथा देवेषु जागृथ ।
एवमस्यां सूतिकायां सपुत्रिकायां जागृथ ॥ १ ॥ पा० कां १ कं० १६ ।

अर्थ—"जैसे जल भूतों में निरन्तर अपना कार्य करता रहता है, ऐसे ही प्रसूता के विषय में जागृत रहना चाहिये कहीं ऐसा न हो की परिजनों की उपेक्षा वृत्ति से इस को हानि हो जावे।" इस मन्त्र से प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के १० रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूत स्थान में दश दिन तक रहे वहां नित्य सायं और प्रातः काल संधि वेला में निम्न लिखित दो मन्त्रों से भात और सरसों मिलाके दस दिन तक बराबर आहुतियां देवें॥

ओं शंडामर्का उपवीरः शौण्डिकेयऽउलूखल। मलिम्लुचो द्रोण स श्च्यवनोनश्यतादितः स्वाहा॥ इदं शंडामर्का उपवीराय शौंडिकेय उलूखलाय मलिम्लुचो द्रोणभ्य श्च्यवनेभ्यश्च इदन्न मम॥ १॥

मारने वाले, पीड़ा पहुंचाने वाले, उलूखल—पाप रोग मलिनताजन्य रोग नाक को बिगाड़ने वाले रोग शरीर नाशक रोग के सब कीटाणु नष्ट हो जावें।

ओं आलिखन्निमिषः किंवदन्त उपश्रुतिः। हर्यक्षः कुंभीशत्रुः पत्रपाणिर्नृमणिर्हंत्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यत्तादितः स्वाहा॥ इद मालिखतेनिमिषाय किंवदभ्यः उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्र पाणये नृमणये हंत्रीमुखाय सर्षपारुणाय इदन्न मम॥२॥

पार० कां० १। कं० १६

वस्तु बिगाड़ने वाला, खोटा बोलने वाले दूसरे की बुराई करने वाला विकृत नेत्र वाला दीनों को दुख देने वाला, मुख से काटने वाल अरुण वर्ण वाले ऐसे पुरुष के कीट नष्ट होवें॥

इन मंत्रों से १० दिन हवन करके पश्चात् अच्छे २ विद्वान् धार्मिक वैदिक मत वाले बाहर खड़े रह कर और बालक का पिता भीतर रहकर आशीर्वाद रूपी नीचे लिखे मंत्रों का पाठ आनन्दित होके करें।

आशीर्वाद के मन्त्र—

मानो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा। ये नस्त्वन्व स्तनूजाः।
अमर्त्या मर्त्या अभिनः सचध्वं मायुधत्त प्रतरं जीवसे नः॥ अ० ६। ४१।

अर्थ—हम को दिव्य इन्द्रियें न त्यागें जो शरीर रक्षक वा शरीर के साथ उत्पन्न हुई हैं, जीवन वाले पुरुष उत्साह प्रदान करें। हमारे जीवन के लिये उत्तम आयु प्रदान करें।

इमं जीवेभ्य परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतं। शतं
जीवंतः शरदः पुरचीस्तिरो मृत्यु दधतां पर्वतेन॥ २॥ अ० कां० १२ अ० २ मं० २३॥

जीवन रखने वालों के लिए मर्यादा है कि वे सौ वर्ष तक जीते हुए विज्ञान के द्वारा मृत्यु को दूर हटा देवें। इस आयु को आलसी नहीं पा सकता।

विवस्वान्नोऽभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः।
इहेमे वीराः बहवो भवन्तु गोमदश्वावत् मय्यस्तु पुष्टम्॥ अ० कां० १८ अनु० ३। मं० ६२॥

अर्थ—भगवान् हमें निर्भय बनावे उसकी कृपा से हमारे में अनेक वीर होवें, उस की दया से मुझ में गौओं वा घोड़ों वाली पुष्टी होवे।

इति जातकर्म संस्कारविधि समाप्तः

जात कर्म के उपदेश

जातकर्म के स्थूल निम्न विभाग हो सकते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) जीभ पर ओं लिख कर कान में वेदोऽसि कहना।

(२) मधु का चटाना।

(३) बालक के कंधे पर हाथ रख कर मन्त्र पढ़ना।

(४) प्रसूता का पति द्वारा मार्जन करना।

(५) पुत्र के शिर का आघ्राण करना।

(६) स्तन धो कर पिलाना।

(७) सरसों का हवन करना।

(८) सर्व आशीर्वाद देना।

जातकर्म इन्हीं क्रियाओं में विभक्त है—संक्षिप्त व्याख्या—

जीभ पर ओं लिखने का यह प्रयोजन है कि—इस नवजात शिशु ने पाषाणों से परिपूर्ण कंटकाकीर्ण इस संसार सागर में अवतरण किया है। यह ओं ही इस का सब से बड़ा सहारा है। उस की कृपा से संसार यात्रा निर्विघ्न समाप्त होगी। उत्पन्न होते ही जीभ पर ओं नाम पिता ने दिया तथा मृत्यु समय भी ओं क्रतो स्मर से ओं की ध्वनि निकले इस से आर्यों की परम आस्तिकता प्रकट होती है। इस ओं को प्राप्त करना ही इस यात्रा का बड़ा लक्ष्य है। प्राप्ति का साधन वेद है इस लिये कान में कहा कि वेदोऽसि तू वेद पर आचरण कर के वेद का स्वरूप बन जा उसी से ओं की प्राप्ति होगी।

मधु अत्यन्त मधुर है तथा अनेक रोगों का नाशक स्वर्ण सब से गुणकारक वा व्यवहार का साधन है जहां मधु बालक के लिए दैहिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है वहां यह भी शिक्षा देता है कि मधु की तरह मधुर बन।

बालक के कन्धों पर हाथ रख कर मन्त्रों द्वारा पिता कहता है—भगवान इस बालक को श्रेष्ठ धन प्रदान करो विद्याग्रहण की शक्ति दो धनों की रक्षा की शक्ति दो इतना बल दो कि हमारे शरीरों की कोई दुष्ट हिंसा न कर सके तथा मीठी वाणी प्रदान करो जिस से हमारे दिन सुदिन बने रहें यही इन्द्र श्रेष्ठानि मन्त्र का भाव है। इस मन्त्र में जीवनोपयोगी सब बातें आ गई हैं।

आगे कहा है पाषाण तुल्य हो परशू बन तेजस्वी बन तब ये पूर्वोक्त कार्य पूरे हो सकेंगे। कन्धे पर हाथ का यह भाव है कि मैं तुम को सहारा दूंगा जिस से तुम इन कार्यों को पूरा कर सको।

पत्नी का मार्जन करता हुआ पति पत्नी को सान्त्वना देता है तथा अत्यंत प्रेम प्रदर्शित करता है और कहता है कि—जैसे चन्द्र में कृष्ण भाग हृदय स्थानीय पृथिवी का होता है उसी प्रकार प्रत्येक समय में पृथिवी

की परिक्रमा करता हुआ पृथिवी की ओर आकृष्ट होता है। भूमि की औषधों में रस देता है कठोरता से नहीं किन्तु सभ्यता से, प्रेम से प्रीति से। पौर्णमासी के दिन पृथिवी का हृदय-समुद्र चन्द्र की ओर उछलता है उस से मिलना चाहता है इसी प्रकार मार्जन करता हुआ पति "यदहश्चन्द्र" मन्त्र द्वारा यही प्रेम भाव प्रकट करता है। पिता प्रेम वश हो कर पुत्र के सिर को सूंघता है। प्रेम प्रदर्शन यह उत्तम ढंग है। चुम्बन द्वारा हमारे मुख का विकार कोमलांग बालक में प्रवेश कर सकता है किंतु आघ्राण द्वारा नहीं। आघ्राण करता हुआ कहता है पुत्र तू मेरे अंगों का सार है। मेरा आत्मा है, आत्मा से बढ़ कर कोई भी दूसरी वस्तु प्रिय नहीं होती इस लिए "अंगादंगात्" मन्त्र में कहता है मैं अपने प्राण तेरे में धारण करता हूं अपने प्राण वा स्वार्थ की परवाह न करता हुआ तेरे प्राणों की अधिक अपेक्षा करूंगा।

स्तन धोना—पति स्वयं पत्नी के स्तनों का मार्जन करके पुत्र के मुख में देता है तथा "इमंस्तन" इस मन्त्र के द्वारा कहता है ये स्तन बल के देने वाले हैं। ये दुग्ध के समुद्र हैं इन के द्वारा सारे संसार के ऋषियों मुनियों वा साधारण से साधारण की पालना होती है। इन से मातृ शक्ति का महत्व प्रकट होता है। "यस्ते स्तन" मन्त्र में कहा है देवि तू अपने श्रेष्ठ स्तन-दुग्ध के द्वारा बड़े से बड़े महापुरुषों का पालन करती है।

१० दिन तक सरसों का हवन करना लिखा है। इस हवन से अनेक प्रकार के कीटाणुओं का नाश होता है। ये हर्त्री मुख आदि रोगोत्पादक जंतु हैं। अथर्व वेद के आठवें कांड में इसका विस्तार से वर्णन आता है। उनके अलग अलग रूप वा भिन्न भिन्न शब्द भी लिखे हैं और सूर्य की किरणों द्वारा, अग्नि द्वारा तथा औषधियों द्वारा इनका वध लिखा है।

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णी पुरोमुखा खलजा शकधूमजा
उरूंडा ये च मटश्चटा कुम्भ मुष्का याशवः तामस्या ब्रह्मणस्पते प्रति बोधने नाशया।

अ० ८। ६। १५। इत्यादि अनेक मन्त्र अथर्व वेद में कीटनाश के आते हैं।

"मानोहासिषु" इत्यादि मन्त्रों द्वारा सब पारिवारिकजन मिल कर बालक को आशीर्वाद देते हैं। हे बालक तेरी इन्द्रियें ऋषि वा दैवी पदवी को धारण करें, कभी दुराचारण में प्रवृत्त न हों। इससे तुम्हारी आयु लम्बी होगी। भगवान् की यही मर्यादा है प्रभु तुम को निर्भय बनावे। उसी की कृपा से हमारे समाज वा परिवारों में वीर पुरुष उत्पन्न होवें। वह हमको ऐसी पुष्टि प्रदान करे जिस में गौ आदि उत्तम पशुओं का पालन होवे न कि पुष्टि के लिए भक्षण। ये संक्षेप से जात कर्म के लाभ लिखे हैं।

शंका—स्वामी जी ने मधु वा घृत समान लिखे हैं इस समानता से विष हो जाता है जो बालक के लिए हानिकारक है।

उत्तर—बराबर के अर्थ यहां समान के नहीं किंतु उचित के हैं। स्वामी जी गुजराती थे। अब भी दक्षिण में वा गुजरात में उचित को बराबर शब्द से प्रकट करते हैं—दाल में नमक बराबर है, दूध में मीठा बराबर है इत्यादि बोलते हैं।

अथ नामकरणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणम् । नाम चास्मै दद्युः ॥ १ ॥ घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनिष्ठानान्तं द्व्यक्षरम् ॥ २ ॥ चतुरक्षरं वा ॥ ३ द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ४ ॥ युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥ ५ ॥ अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥ अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्ध्या तामोपनयनात् ॥ ७ ॥ इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रेषु ।

दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति । द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थ दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितमयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै शर्म ब्राह्मण्यस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥

इसी प्रकार गोभिलीय और शौनक गृह्यसूत्र में भी लिखा है—

नामकरण अर्थात् जन्मे हुए बालक का सुन्दर नाम धरे । नामकरण का काल—जिस दिन जन्महो उस दिन से लेके १० दिन छोड़ ११में वा१०१ (एक सौ एक) में अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम धरे । जिस दिन नाम धरना हो उस दिन अति प्रसन्नता से इष्ट मित्र हितैषी लोगों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान बालक का पिता और ऋत्विज करें । पुनः पृष्ठ ३-२१ में लिखे प्रमाणे सब मनुष्य ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और सामान्यप्रकरणस्थ संपूर्ण विधि करके आघाराज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २४-२५ में लिखे प्रमाणे (त्वन्नो अग्ने) इत्यादि आठ मन्त्रों से ८(आठ) आहुति अर्थात् सब मिला के १६ घृताहुति करें । तत्पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध वस्त्र पहिना के उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का मस्तक उत्तर दिशा में रख के बालक के पिता के हाथ में देवे और स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे होकर उत्तर भाग में पूर्वाभिमुख बैठे । तत्पश्चात् पिता उस बालक को उत्तर में शिर और दक्षिण में पग करके अपनी पत्नी को देवे । पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो प्रथम उस प्रधान होम को करे ।

नामकरण संस्कार विधि—

(१) विश्वानिदेव आदि आठ मन्त्रों से स्तुति
(२) स्वस्तिवाचन तथा शान्ति प्रकरण
(३) अग्न्याधान समिधाधानादि
(४) पांच घृताहुति तथा जलसेचन
(५) आघाराज्याहुति चार तथा चार घृताहुति
(६) त्वन्नोऽग्ने आदि अष्टाज्याहुति

(७) प्रधान होमाहुति

पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब साकल्य सिद्ध कर रक्खे उसमें से प्रथम घी का चमचा भर के—

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इस मन्त्र से १ आहुति देकर पीछे जिस तिथि जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेके, उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से ४ (चार) आहुति देनी और अर्थात् एक तिथि दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से अर्थात् तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और स्वाहान्त बोल के ४ (चार) घी की आहुति देवे, जैसे किसी का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो:—

ओं प्रतिपदे स्वाहा । ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं अश्विन्यै स्वाहा । ओं अश्विभ्यां स्वाहा ।*

गोभि० प्र० २। खं० ८। सू० ६। मं० १२ ॥

तत्पश्चात् पृष्ठ २३ में लिखी हुई स्विष्टकृत मन्त्र से एक आहुति और पूर्व लिखे प्रमाणे ४ (चार) व्याहृति आहुति दोनों मिला के ५ आहुति देके तत्पश्चात् माता बालक को लेके शुभ आसन पर बैठे और पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुए वायु का स्पर्श करके—

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ।
भूर्भुवः स्वः सु : प्रजाभिः स्या२सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।

यजु० अ० ७। मं० २६ ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कोनामासि—तू अनेक सुख वालों में सुख वाला है, तू प्रजापति भगवान् का है, तू प्रजापति नाम वाला है, अर्थात् यही नाम तेरा आश्रय है, यस्य ते नामामन्महि—हम तेरा नाम रखते हैं, यं त्वा सोमेनातीतृपाम—हम तुम्हें ऐश्वर्य आदि से तृप्त करते हैं, सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम्—सुन्दर प्रजाओं वाले बनें, सुवीरोवीरै सुवीरों से वीरों वाले बनो, सुपोषः पोषैः—सुन्दर पुष्टियों से पुष्टि वाले बनो ।

ओं कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि । आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ ॥

मं० ब्रा० १। ५। १४ ॥ अर्थ पूर्ववत्

---

* **तिथिदेवताः**—१—ब्रह्मन् । २—त्वष्टृ । ३—विष्णु । ४—यम । ५—सोम । ६—कुमार । ७—मुनि । ८—वसु । ९—शिव । १०—धर्म । ११—रुद्र । १२—वायु । १३—काम । १४ अनन्त । १५ विश्वदेव । ३० पितर ।

नक्षत्रदेवताः—अश्विनी—अश्वी । भरणी—यम । कृत्तिका—अग्नि । रोहिणी-प्रजापति । मृगशीर्ष-सोम । आर्द्रा-रुद्र पुनर्वसु—अदिति । पुष्य—बृहस्पति । अश्लेषा—सर्प । मघा-पितृ । पूर्वाफाल्गुनी-भग । उत्तराफाल्गुनी—अर्यमन् । हस्त—सविता । चित्रा—त्वष्टृ । स्वाति-वायु । विशाखा—चन्द्राग्नी । अनुराधा—मित्र । ज्येष्ठा—इन्द्र । मूल निर्ऋति । पूर्वाषाढा—अप् । उत्तराषाढा—विश्वेदेव । श्रवण-विष्णु । धनिष्ठा—वसु । शतभिषज्—वरुण । पूर्वाभाद्रपदा—अजपाद । उत्तराभाद्रपदा—अहिर्बुध्न्य पूरेवती—पूषन् ॥

जो यह "असौ" पद है इसके पीछे बालक का ठहराया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे प्रमाणे दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोषसंज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो२ अक्षर छोड़ के तीसरा, चौथा, पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण नाम में अवश्य आवें *। जैसे देव अथवा जयदेव, ब्राह्मण हो तो देवशर्मा, क्षत्रिय हो तो देववर्मा, वैश्य हो तो देवगुप्त और शूद्र हो तो देवदास इत्यादि और जो स्त्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे श्री, ही, यशोदा, सुखदा, सौभाग्यप्रदा इत्यादि नामों को वर्जित बोल के पुनः "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम धर के पुनः "ओं कोसि०" ऊपर लिखित मन्त्र बोलना।

ओं स त्वाहे परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परिदत्तामार्द्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु, असौ ॥ मं० ब्रा० १।५।१५।

(अर्थ जात-कर्म में देखें)

इन मन्त्रों से बालक को जैसा जातकर्म में लिख आये हैं वैसे आशीर्वाद देवे, इस प्रमाणे बालक का नाम रख के संस्कार में आये हुए मनुष्यों को वह नाम सुना के पृष्ठ २६–२७ में लिखे प्रमाणे महाधाम-देव्यगान करे तत्पश्चात् कार्यार्थ आये हुए मनुष्यों को आदर सत्कार करके विदा करे और सब लोग जाते समय पृष्ठ ३–४ में लिखे प्रमाणे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करके बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक! त्वमायुष्मान् वर्च स्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः"

हे बालक! तू आयुष्यमान् विद्यावान् धर्मात्मा यशस्वी पुरुषार्थी प्रतापी परोपकारी श्रीमान् हो ॥

इति नामकरणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

शंका—कोऽसिकतमोऽसि मन्त्र में पिता बच्चे से प्रश्न करता है, क्या बालक को इतनी समझ है जो उनके उत्तर देगा? क्या पिता को पता नहीं कि किसका बालक है आदि।

उत्तर—यह शंका स्वामी जी से वा आर्य समाज से क्यों पूछते हो। यह तो वेद का मन्त्र है इसके

---

* क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब, म, ये स्पर्श और य, र, ल, व, ये चार अन्तःस्थ और हर एक ऊष्मा, इतने अक्षर नाम में होने चाहियें और स्वरों में से कोई भी स्वर हो जैसे (भद्रः, भद्रसेनः, देवदत्तः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, हरिदेवः) इत्यादि पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खे। अन्त्य में दीर्घस्वर और तद्धितान्त भी होवे; जैसे (श्रीः, ह्रीः, यशोदा, सुखदा, गांधारी, सौभाग्यवती, कल्याणक्रीडा) इत्यादि परन्तु स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खें उसमें प्रमाण (नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । नैष्यहिप्रेष्य-नाम्नीं च भीषणानामिकाम्) ॥ १ ॥ मनुस्मृतौ, (ऋक्ष) रोहणी, रेवती, (वृक्ष) आम्र, अम्बत्था, बदरी आदि (नदी) गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि, (अंत्यादि, (पक्षी) कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) सर्पिणी, नागी इत्यादि, (प्रेष्य) दासी, किंकरी इत्यादि, (भयंकर) भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं ॥

सम्बन्ध में परमात्मा से पूछो। मैंने इसका अर्थ कर भी दिया हैं कः वै प्रजापति—क नाम परमात्मा का है। तू परमात्मा का है इत्यादि। और यदि प्रश्नवाचक भी हो तब भी कोई हानि नहीं। क्योंकि हमें पता नहीं कि प्रथम जन्म में यह कौन था। इसके पिता को कोई ज्ञान नहीं इसलिए "यस्य ते नामामन्महि" से अब तेरा नाम रखते हैं। यदि पहले नाम का पता हो तो नाम रखने की क्या आवश्यकता है। बालक के हृदय पर भी इन बातों का अवश्य असर पड़ता है। बीसियों चेष्टाएं ऐसी हैं जिनको बालक अन्दर से जानता है परन्तु उन्हें वाणी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। अनेक वस्तुओं की आकृति नाम वा रूपों को बालक अपने अन्दर ग्रहण करता रहता है इसलिए उनका ध्यान से अवलोकन करता है परन्तु वाणी से प्रकट नहीं कर सकता।

प्रमाणभाग सार

(१) पुरुषों के नामों में समान अक्षर चाहियें। दो अक्षर वा चार अक्षर वाले यथा देवदत्त यज्ञदत्त जयदेव इत्यादि, कन्याओं के विषम नाम यथा यशोदा सुखदा इत्यादि ताकि पहचान हो सके।

(२) पुरुष के नाम में य र ल व ये चार अक्षर तथा कवर्गादि पांचों वर्गों के दो २ अक्षर छोड़कर तीसरा चौथा वा पांचवां अक्षर अवश्य आना चाहिये जिससे उच्चारण में सुगमता वा सुन्दरता प्रतीत होवे।

(३) ब्राह्मण के अन्त में शर्म्मा, क्षत्रिय के वर्म्मा, वैश्य के गुप्त वा शूद्र के अन्त में दास शब्द जोड़ना चाहिये यथा देवदत्त शर्मा, देव वर्मा, देव गुप्त, देव दास इत्यादि।

अथ निष्क्रमणसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

निष्क्रमण संस्कार उसको कहते हैं कि जो बालक को घर से जहां का वायुस्थान शुद्ध हो वहां भ्रमण कराना होता है। उस का समय जब अच्छा देखे तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करावें। इसमें प्रमाणः—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है॥

जननाद्वा तृतीयो ज्योत्स्नस्य तृतीयायाम् ॥

यह पारस्करगृह्यसूत्र में भी है॥

अर्थः—निष्क्रमण संस्कार के काल के दो भेद हैं। एक बालक के जन्म पश्चात तीसरे शुक्लपक्ष की तृतीया और दूसरा चौथे महीने में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में यह संस्कार करे।

उस संस्कार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् बालक को शुद्ध जल से स्नान करा शुद्ध सुन्दर वस्त्र पहिनावे पश्चात् बालक को यज्ञशाला में बालक की माता ले आवे पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सामने आकर बालक का मस्तक उत्तर और छाती ऊपर अर्थात् चित्ता रख के पति के हाथ में देवे पुनः पति के पीछे को अपने घूम के बायें पार्श्व में पत्नी सन्मुख बैठे।

ईश आराधना—

ओं यत्ते सुसीमे हृदय॰ हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं॰ रिषम् ॥१॥
ओं यद्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्याहं नाममाहं पौत्रमघं॰ रिषम् ॥२॥
ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापतीः। यथा अहं प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि ॥३॥
मं० बा० १। ५। १०—१२ ॥अर्थ प्रथम कर दिया।

इन तीन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके पृष्ठ ३-२५ में लिखे प्रमाणे परमेश्वरोपासना, स्वस्ति-वाचन, शान्तिप्रकरण आदि सामान्यप्रकरणोक्त समस्त विधि कर और पुत्र को देख के इन निम्नलिखित तीन मन्त्रों से पुत्र के शरीर को स्पर्श करेः—

पुत्र का शिर स्पर्श करना—

ओं अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥१॥ ओं प्रजापतेष्ट्वा हिंकारेणावजिघ्रामि सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥२॥ गवां त्वा हिंकारेणावजिघ्रामि। सहस्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम् ॥३॥ पार०कां १। कं०१८॥ अर्थ प्रथम कर दिया है।

तथा निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपेः—

कान में जप—

अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं॰ शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१॥
ऋ० मं० ३। सू० ३६। मं० १०।

वामकान में जप—

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥२॥
ऋ० मं० २। सू० २१। मं० ६॥ अर्थ जात कर्म में कर दिया।

इस मन्त्र को वाम कान में जप के पत्नी की गोद में उत्तर दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में पग करके बालक को देवे और मौन करके स्त्री के शिर का स्पर्श करे तत्पश्चात् आनन्दपूर्वक उठ के बालक को सूर्य का दर्शन करावे और निम्नलिखित मन्त्र वहां बोलेः—

सूर्य दर्शन—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं॰ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१॥
य० ३६। मं० २४॥

इस मन्त्र को बोल के थोड़ासा शुद्ध वायु में भ्रमण कराके यज्ञशाला में ला सब लोगः—

त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः ।

इस वचन को बोल के आशीर्वाद देवें तत्पश्चात् बालक के माता और पिता संस्कार में आये हुए स्त्रियों और पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें तत्पश्चात् जब रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता लड़के को शुद्ध वस्त्र पहिना दाहिनी ओर से आगे आके पिता के हाथ में बालक को उत्तर की ओर शिर और दक्षिण की ओर पग करके देवे और बालक की माता दाहिनी ओर से लौट कर बाईं ओर आ अञ्जलि भर के चन्द्रमा के सन्मुख खड़ी रह के—

परमात्मा की स्तुति

ओं यदद॰श्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदय॰ श्रितम् ।
तदहं विद्वा॰ स्तत्पश्यन्माहं पौत्रमघ॰ रुदम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ५ । १३ ॥

अर्थ जातकर्म में कर दिया है ।

इस मन्त्र से परमात्मा की स्तुति करके जल को पृथिवी पर छोड़ देवे तत्पश्चात् बालक की माता पुनः पति के पृष्ठ की ओर से पति के दाहिने पार्श्व से सन्मुख आके पति से पुत्र को लेके पुनः पति के पीछे होकर बाईं ओर आ बालक का उत्तर की ओर शिर दक्षिण की ओर पग रख के खड़ी रहे और बालक का पिता जल की अञ्जलि भर (ओं यदद॰श्च०) इसी मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके जल को पृथिवी पर छोड़ के दोनों प्रसन्न होकर घर में आवें ।

इति निष्क्रमणसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथान्नप्राशनविधिं वक्ष्यामः

अन्नप्राशन संस्कार तभी करे जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे । इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण—

षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् ॥१॥ घृतौदनं तेजस्कामः ॥२॥ दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयते ॥३॥

छठे मास में अन्न प्राशन करे । तेजकामा घी चावल तथा दधि, मधु, घी युक्त खिलावे ।

इसी प्रकार पारस्करगृह्यसूत्रादि में भी है ॥

छठे महीने बालक को अन्नप्राशन करावे जिसको तेजस्वी बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दही शहद और घृत तीनों भात के साथ मिला के निम्नलिखित विधि से अन्नप्राशन करावे अर्थात् पूर्वोक्त पृष्ठ ३—२५ में कहे हुए सम्पूर्ण विधि को करके जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसी दिन यह संस्कार करे और निम्न लिखे प्रमाण भात सिद्ध करे ।

चावल शुद्धि मंत्रः

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० ।
ओं श्रोत्राय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥

प्राण के लिए अपान के लिए चन्द्र के लिए श्रोत्र के लिए अग्नि के लिए शुद्ध करता हूं ।

इन पांच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथायोग्य घृत भी डाल देना जब अच्छे प्रकार पक जावें तब उतार थोड़े ठण्डे हुए पश्चात होमस्थाली में

हवन के मन्त्र

ओं प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि । ओं अपानाय त्वा० । ओं चक्षुषे त्वा० ।
ओं श्रोताय त्वा० । ओं अग्नये स्विष्टकृते त्वा० ॥ ५ ॥

प्राण के लिए हवन करता हूँ और अपान के लिए श्रोत्र के लिए हवन करता हूँ ।

इन पांच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक् २ देके पृष्ठ ३२ में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान समिधाधानादि करके प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृत्याहुति ४ (चार) मिल के ८ (आठ) घृत की आहुति देके पुनः उस पकाये हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवें ।

अन्नप्राशन विधि

(१) ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शांति पाठ ।

(२) अग्न्याधान, समिधाधान ।

(३) घृत की पांच आहुति वा जल सेचन।

(४) आघारावाज्य भागाहुति तथा व्याहृति आहुति।

भात आहुति मंत्रः—

ओं देवीवाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।

सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहानाधेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु स्वाहा ॥१॥ इदं वाचे इदं न मम।

ऋ० ८। १००॥

अर्थ—विद्वान् दिव्यवाणी का प्रचार करते हैं। समदर्शी लोग उसी को बोलते हैं। हम को प्रसन्नता, अन्न तथा बल से पूर्ण करें।

वाजो नोऽद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवान् ऋतुभिः कल्पयाति

वाजोहि मा सर्व वीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयꣳस्वाहा ॥ इदं वाजाय इदं न मम॥

य० १८। ३३॥

अर्थ—आज अन्न हमारे लिए दान शक्ति उत्पन्न करता है। अन्न ही अनेक ऋतुओं के अनुकूल विद्वानों को सामर्थ्य प्रदान करता है। अन्न से ही मेरे सब वीर पुष्ट होते हैं। अन्न के द्वारा मैं सब दिशाओं को जीत सकता हूं।

इन दो मन्त्रों से दो आहुति देवें तत्पश्चात् उसी भात में घृत डालें।

चार भात की आहुति—

ओं प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय इदन्नमम— प्राणवायु के द्वारा अन्न का उपभोग करता हूं।

ओं अपानेन गन्धानमशीय स्वाहा। इदमपानाय इदन्न मम ॥ ३ ॥

नासिका के द्वारा गन्धों का उपभोग करता हूं।

ओं चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे इदन्न मम ॥ ३ ॥

नेत्रों के द्वारा सुन्दर वस्तुओं का उपभोग करता हूं।

ओं श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय इदन्न मम

कानों द्वारा यश का उपभोग करूं।

इन मन्त्रों से चार आहुति दे कर निम्नाहुति देवें।

(१) ओं यदस्य कर्मणो द्वारा एक स्विष्टकृत आहुति देवें।

(२) चरु व्याहुति आहुति तथा (आठ) अष्टाज्याहुति।

उसके पीछे आहुति से बचे भात में दही मधु और उसमें घी यथा योग्य किंचित् किंचित् मिलाके और सुगन्धि युक्त और भी चावल बनाए हुए थोड़े से मिलाके बालक के हाथ प्रमाणे—

बालक को अन्न खिलाने का मंत्र—

ओं अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रप्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहिद्विपदे चतुष्पदे।

अर्थ—हे अन्न के स्वामी प्रभु अन्न दीजिए, जो रोग रहित व बलकारक है। अन्न दान करने वालों को भी बढ़ाइये; चौपायों और हमारे लिए बलकारक अन्न प्रदान कीजिए।

इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा थोड़ा पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे यथा रुचि खिला बालक का मुख धो और अपने हाथ धोके पीछे लिखे महावामदेव्यगान करके जो बालक के माता पिता और अन्य वृद्ध स्त्री पुरुष आये हों वे परमात्मा की प्रार्थना करके आशीर्वाद वाक्य—

त्वमन्नपतिरान्नदो वर्धमानोभूयाः।

अर्थ—हे बालक तू अन्न का स्वामी है, अन्न को खाने वाला हो तथा शरीर आदि से वृद्धि को प्राप्त हो।

इस वाक्य से बालक को आशीर्वाद देके पश्चात् संस्कार में आये हुए पुरुषों का सत्कार बालक का पिता और स्त्रियों का सत्कार बालक की माता करके सब को प्रसन्नता पूर्वक विदा करें।

इत्यन्नप्राशनसंस्कार विधिः समाप्तः

अन्न प्राशन की महिमा—

(१) प्रमाण भाग से पता लगता है कि दहि, मधु, घी मिलाकर शुद्ध पवित्र अन्न खाना चाहिये। इससे प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र आदि सब इन्द्रियां परिपुष्ट होती हैं। यदि देखा जाय तो इन अन्नों से बढ़कर पुष्टिकर तथा बुद्धिवर्धक दूसरा अन्न नहीं है। आज इनके असली रूप में न मिलने से ही लोग निर्बल तथा अनेक रोगों से पीड़ित हो रहे हैं। इन अन्नों का असली रूप में प्राप्त करना ही अन्न प्राशन का उद्देश्य है। इन्हीं अन्नों द्वारा पुष्टि संस्कार का उद्देश्य है।

(२) (देविंवाचं) इस मन्त्र में इस बात का वर्णन किया है कि हम को उस संस्कृत वाणी का प्रयोग करना चाहिये जिस वाणी का विद्वान लोग करते हैं। उस वाणी के द्वारा हमें प्रसन्नता, बल तथा अन्न मिल सकता है। उस वाणी को बढ़ाने वाला भी अन्न ही है। इससे अन्नप्राशन की महिमा प्रकट होती है।

(३) "वाजोनोद्य" इस मंत्र में चार बातों का उपदेश है। प्रथम उपदेश यह है कि अन्न को दान करके खाना चाहिये अकेले नहीं खाना चाहिये। यदि आज यह भाव हम में आ जाय तो भारत की भूख और दुर्बलता दूर हो सकती है। दूसरा भाव यह है कि ऋतु के अनुसार अन्न खाकर ही पुष्ट हो सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि ऋतु अनुकूल आहार ही लाभप्रद होता है। तीसरी बात यह है कि अन्न के द्वारा ही हमें उत्तम वीर मिल सकते हैं। जब खाने को ही उत्तम पदार्थ न मिलेंगे, वीर कहां से उत्पन्न होंगे। चौथी बात यह है कि अन्न के द्वारा संसार को विजय कर सकते हैं, अन्न देकर प्रेम से अथवा अन्न के द्वारा ही बल से। इससे भी अन्न प्राशन का महत्व प्रकट होता है।

(४) अन्नपते—यह अन्न प्राशन का प्रधान मन्त्र है। इसमें यह बतलाया है कि सारे संसार को अन्न देने वाला भगवान ही है। अतः अन्न जैसे अमूल्य पदार्थ के लिए भगवान की ही स्तुति करनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि वह अन्न रोग रहित वा बलवान होना चाहिये। इससे अन्न भक्षण का उद्देश्य प्रकट होता है। अर्थात् हमें स्वाद के लिये ऐसे पदार्थ नहीं खाने चाहिएं जो हमारे स्वास्थ्य और बल के नाशक हों। तीसरी बात यह है कि जो अन्नपति लोग निर्धनों को अन्न प्रदान करें उनकी उन्नति के लिये भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये। इससे कृतज्ञता प्रकट होती है। चौथी बात यह है कि जहां भगवान हमें अन्न प्रदान करते हैं वहां हमारे पशुओं को भी सुन्दर खाद्य पदार्थ प्रदान करें। प्रत्येक नर नारी का भोजन के समय इस प्रार्थना का करना पशु दया वा पशु पालन करना सिद्ध करता है। यदि आज यह भाव सारे संसार में आ जावे तो संसार से पशु बध जैसा घृणित कार्य बन्द होने से संसार को दूध दही आदि पुष्टिकारक पदार्थ काफी मात्रा में मिल सकते हैं।

अथ चूड़ाकर्मसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

यह आठवां संस्कार चूड़ाकर्म है जिस को केशच्छेदन संस्कार भी कहते हैं। इसमें आश्वलायन गृह्यसूत्र का मत ऐसा है:—

तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १ ॥ उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां शरावाणि निदधाति ॥ २ ॥

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रादि में भी है॥

सांवत्सरिकस्य चूड़ाकरणम् ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृह्यसूत्र का भी मत है, यह चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन बालक के जन्म से तीसरे वर्ष वा एक वर्ष में करना उत्तरायणकाल शुक्लपक्ष में जिस दिन आनन्द मङ्गल हो उस दिन यह संस्कार करे। विधिः—

आरम्भ में पृ० ३–२५ में लिखित विधि करके चार शरावे ले एक में चावल, दूसरे में यव, तीसरे में उर्द और चौथे शरावे में तिल भर के वेदी के उत्तर में धर देवे, धर के पृष्ठ २७ में लिखे प्रमाणे "ओं अदितेऽनुमन्यस्व०" इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीन बाजू और पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे "ओं देव सवितः प्रसुव०" इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिड़का के पूर्व पृष्ठ २०–२१ में लिखित अग्न्याधान समिदाधान कर अग्नि को प्रदीप्त करके जो समिधा प्रदीप्त हुई हो उस पर लक्ष्य देकर आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २३–२४ में लिखित आठ आज्याहुति सब मिल के १६ (सोलह) आहुति देके पृष्ठ २३ में लिखे प्रमाणे "ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि०" इत्यादि मन्त्रों से आज्याहुति प्रधान होम की देके पश्चात् में लिखे प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ और स्विष्टकृदग्नि मन्त्र से एक आहुति मिल के पांच घृत की आहुति देवे, इतनी क्रिया करके कर्मकर्त्ता परमात्मा का ध्यान करके नीचे की ओर प्रथम देख के:—

अथ चूड़ाकर्मसंस्कार—

(१) ईश्वर प्रार्थना स्वस्तिवाचन शान्ति पाठ।

(२) अग्न्याधान समिधाधान।

(३) पांच घृताहुति वा जल सेचन।

(४) आघारावाज्यभागाहुति तथा व्याहृति आहुति आठ आज्याहुति।

(५) अग्न आयूं षि० इत्यादि से चार आज्याहुति।

(६) पुनः व्याहृति आहुति चार तथा स्विष्टकृताहुति।

जप का मन्त्र—

ओं आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः॥ १॥ अथर्व० कां ६। सू० ६८ ॥१॥

अर्थ—यह नाई छुरा लेकर आया है,—हे शीघ्रगामी पुरुष उष्ण जल लेकर आ। बुद्धिमान आदित्य रुद्र वा वसु ब्रह्मचारी इसके बालों को भिगोवें, तथा यह शान्त स्वभाव तेजस्वी बालक का मुण्डन करें करावें।

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठ भाग में बैठ के किञ्चित् उष्ण और किञ्चित ठण्डा जल दोनों पात्रों में लेके

दो पात्रों का जल एक पात्र में मिलाने का मन्त्र—

उष्णेन वाय उदकेनेहि

"हे शीघ्रगामी पुरुष उष्ण जल के साथ आओ।" इस मन्त्र को बोलकर दोनों पात्रों के जल एक पात्र में मिला देवे। पश्चात् थोड़ा जल, थोड़ा माखन अथवा दही की मलाई लेके—

सिर भिगोने के मन्त्र—

ओं अदितिः श्मश्रुवपत्वाय उन्दन्तु सचेतसः। चिकित्सतु प्रजापति दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥ २॥

अथर्व० कां० ६। सू० ६८ ॥२॥

अर्थ—जब बालों को भिगोते हैं नाई बालों को काटे, पिता बालक की दीर्घायु तथा दृष्टि वृद्धि के लिए चिकित्सा करे।

ओं सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु। ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥ २॥

पारस्कर० कां० २। कं० १। ६।

अर्थ—हे बालक तेरे सिर को भगवान के पैदा किए हुए जल तेरे केशों को भिगोवें, जिस से तुम ज्ञानी व दीर्घजीवि बनो।

इन मन्त्रों को बोल के बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेर के केशों को भिगावे तत्पश्चात् कंघा लेके केशों को सुधार के इकट्ठा करे अर्थात् बिखरे न रहें तत्पश्चात्

दाहिनी ओर के केशों को हाथ से दर्भ लेकर दबाना—

ओं ओषधे त्रायस्व एन ꣳ मैन ꣳ हि ꣳ सीः । य० अ० ४ । मं० ।

हे परमेश्वर वा विदुषी देवी तुम इस बालक की रक्षा करो । अथवा यह दर्भ इस की रक्षा करती है ।

इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबाके

छुरा अवलोकन—

ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि । मं० ब्रा० १ । ६ । ४ ॥

"यह छुरा मुण्डन रूप यज्ञ का साधन है ।" इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के—

छुरे को दाहिने हाथ में लेने का मन्त्र—

ओं शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मामाहि ꣳ सीः । य० अ०३ । मं० ६३ ।

अर्थ—हे परमेश्वर आपका नाम कल्याण करने वाला है; आप अखण्डनीय हैं, हे परम पिता आपको बार बार नमस्कार है । आप इस बालक की आयु को बढ़ावें ।

इस मन्त्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे । तत्पश्चात्

छुरे वा कुशाओं को केशों के समीप ले जाने का मन्त्र—

ओं स्वधिते मैन ꣳ हि ꣳ सीः । य० अ० ४ । मं १ ॥

हे अखण्डनीय प्रभु इस बालक की रक्षा कीजिए अथवा बलकारक औषधि इस की रक्षा करती है ।

ओं निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥

य० अ० ३ । मं० ६३ ।

अर्थ—भगवान् आप की कृपा से सब कष्टों का निवारण करता हूँ जिस से इस की आयु लम्बी हो और यह अन्न खाने में समर्थ हो तथा, धन की पुष्टि कर सके ।

इन दो मन्त्रों को बोल के उस छुरे वा उन कुशाओं को केशों के समीप ले जाके ।

प्रथम बार दायीं ओर के केशकाटने का मंत्र—

ओं येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।

तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् । अ० कां ६ । ६८ । ३ ॥

अर्थ—जिस विधि से श्रेष्ठ नाई ने छुरे से शांत स्वभाव, तेजस्वी बालक का मुण्डन किया है—इसी विधि से हे ब्रह्मणो इस बालक के सिर का मुण्डन करवाओ, भगवान् की कृपा से यह बालक गौ घोड़ों और प्रजा वाला हो ।

इस मन्त्र को बोल के कुश सहित उन केशों को काटे* और वह काटे हुए केश और दर्भ शमी वृक्ष

* केशछेदन की रीति ऐसी है कि इसी ओर केश दोनों मुट्ठि से पकड़ कर अर्थात् दोनों ओर से पकड़ के बीच में से केशों को छुरे से काटे यदि छुरे के बदले कैंची से काटे तो भी ठीक है ॥

के मन्त्र सहित अर्थात् यहां शमी वृक्ष के पत्र भी प्रथम सेट रखने चाहिएं। उन सब को लड़के का पिता वा लड़के की मां एक शरावा में रखें और कोई केश छेदन करते समय खड़ा हो उस मनोनीत को उठा के शरावा में अथवा उस के पास रखे। तत्पश्चात् इसी प्रकार—

दूसरी बार बायीं ओर के केशछेदन का मंत्र—

ओं येनधाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्यय स्वस्तये ॥

अर्थ—जिस सामर्थ्य से भगवान ने बड़े, अग्निवायु तथा बिजली को स्थिति के लिए रखा है, उसी सामर्थ्य से तेरी आयु के वृद्धि के लिए कल्याण और यश के लिए मुण्डन को करता हूँ।

इस मन्त्र से दूसरी बार दूसरी ओर का केशसमूह काट के उसी प्रकार शरावा में रखे तत्पश्चात्

तीसरी बार पीछे के केश काटने का मन्त्र—

ओ येन भूयश्च रात्र्यं ज्योक् च पश्यति सूर्यम्।

तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥

अर्थ—जिस ईश्वर के दिये हुए सामर्थ्य से रात्रि में स्थित पदार्थों को, प्रलय पर्यन्त सूर्य को देखता है, शेष पूर्ववत्।

इस मन्त्र से तीसरी बार उसी प्रकार केशसमूह को काट के उपर्युक्त तीन मन्त्रों अर्थात् येनावपत् ओं येनधाता०, ओं येन भूयश्च० और

चौथी बार आगे के केश काटने का मंत्र—

ओं येनावपत्०, ओं येनधाता०, ओं येनभूयश्च तथा—

ओं येन यूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत।

तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे ॥

अर्थ—जिस विधि से भगवान् ने अग्नि आदि की सामर्थ्ययुक्त बनाया है मुण्डन के द्वारा वैसे ही मैं तुमको जीने के लिये सामर्थ्ययुक्त बनाता हूं।

इस एक, इन चार मन्त्रों को बोलके चौथी बार इसी प्रकार केशों के समूह को काटे। अर्थात् प्रथम दक्षिण बाजू के केश काटने की विधिपूर्ण हुए पश्चात् बांई ओर के केश काटने की विधि करे तत्पश्चात् उसके आगे पीछे का केश काटे परन्तु पांचवीं वार काटने में येन पूषः इसके बदले मन्त्र

पांचवी बार बीच के केश छेदन के मंत्र—

येनावपत्, येनधाता, येनभूयश्च तथा—

ओं येन भूरिश्चरादिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यं।

तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये ॥१॥

भगवान् की जिस सामर्थ्य से यह वायु द्युलोक में भ्रमण करता है वैसे ही सूर्य लोक में भ्रमण करता है।

इस मन्त्र को बोल के केश छेदन करे तत्पश्चात्—

पूर्ववत् शिर पर हाथ फेरने वा छठी बार-पीछे के लघु मस्तिष्क के केश छेदन मन्त्र—

ओं त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपस्य त्र्यायुषं। यद्देवेषु त्र्यायुषंन्नोऽस्तु त्र्यायुषं॥ १॥

य० ३।

इस मन्त्र को बोल के शिर के पीछे केश एक बार काट के इसी (ओं त्र्यायुषं) मंत्र को बोलते जाना और औंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर के मन्त्र पूरा हुए पश्चात् छुरा नाई के हाथ में देके:—

छुरा तीक्ष्ण करने का मन्त्र—

ओं यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान्। शुंधिः शिरो मास्यायुः प्रमोषीः॥

आ० १। १७। १५

अर्थ—हे नापित तुम चलने वाले सुन्दर धार वाले छुर से इस बालक के केशों को काटो, इसके शिर को शुद्ध करो। हे प्रभो आप इस बालक के जीवन को लम्बा करो।

इस मन्त्र को बोल के नापित से पथरी पर छुरे की धार तेज कराके नापित से बालक का पिता कहे कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर अच्छे प्रकार कोमल हाथ से भिजो, सावधानी और कोमल हाथ से क्षौर कर, कहीं छुरा न लगने पावे। इतनी कह के कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा, उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा के जितने केश रखने हों उतने ही केश रक्खे परन्तु पांचों ओर थोड़ा २ केश रखावे अथवा किसी एक ओर रक्खे अथवा एक बार सब कटवा देवे पश्चात दूसरी बार के केश रखने अच्छे होते हैं जब क्षौर हो चुके तब कुण्ड के पास पड़ा वा धरा हुआ देने के योग्य पदार्थ वा शरावा आदि कि जिन में प्रथम अन्न भरा था नापित को देवे और मुण्डन किये हुए सब केश दर्भ शमीपत्र और गोबर नाई को देवे, यथायोग्य उस को धन वा वस्त्र भी देवे और नाई, केश दर्भ शमीपत्र और गोबर को जंगल में ले जा गढ़ा खोद के उस में सब डाल ऊपर से मट्टी से दाब देवे अथवा गोशाला नदी वा तालाब के किनारे पर उसी प्रकार केशादि को गाड़ देवे, ऐसा नापित से कह दे अथवा किसी को साथ भेज देवे वह उस से उक्त प्रकार करा लेवे। क्षौर हुए पश्चात मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में लगा बालक के शिर पर लगा के स्नान करा उत्तर वस्त्र पहिना के बालक की पिता अपने पास ले शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ के पृष्ठ २६ में सामवेद का महावामदेव्यगान करके बालक की माता स्त्रियों और बालक का पिता पुरुषों का यथायोग्य सत्कार करके विदा करें और जाते समय सब लोग तथा बालक के माता पिता परमेश्वर का ध्यान करके—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः॥

इस मन्त्र को बोल बालक को आशीर्वाद दे के अपने २ घर को पधारें और बालक के माता पिता प्रसन्न होके बालक को प्रसन्न रक्खें॥

इति चूडाकर्मसंस्कारविधिः समाप्तः॥

मुण्डन संस्कार के लाभ—

निर्वतयाम्यायुषे इस मन्त्र के द्वारा पिता पांच उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। मैं इस बालक का मुंडन करता हूं इसके स्वास्थ्य को ऐसा बनाऊंगा जिस से इस को भोजन खाने वा पचाने में कोई बाधा न पड़े। वर्तमान में इसी से अनेक बालक पीड़ित हैं वे कुपथ्य करते हैं इसी भाव को ब्रह्मा शब्द से प्रकट किया है।

दूसरा उत्तरदायित्व प्रजननाय अर्थात् मैं इसकी प्रजनन शक्ति को स्थिर रक्खूंगा। तीसरा रायस्पोषाय धन की रक्षा करने की प्रवृत्ति को उत्पन्न करूंगा। आजकल सैंकड़ों बालक व्यर्थ अपने माता पिता के धन को नष्ट करते तथा अपने स्वास्थ्य का नाश भी कर लेते हैं।

चौथे सुप्रजास्त्वाय में शिक्षादि द्वारा इस बालक को सुन्दर प्रजा बनाऊंगा जिससे समाज देश वा मेरे कुल का कल्याण कर सके।

पांचवां उत्तरदायित्व "सुवीर्याय" मैं इस को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देकर वा अपने व्यवहार से इस को ब्रह्मचारी बनाऊंगा। इन पांच बातों में जीवन का सम्पूर्ण सुन्दर प्रोग्राम आगया है। यदि माता पिता मुंडन के इस उत्तरदायित्व को अनुभव करें तब सारे देश का कल्याण हो जावे।

येनावपत्—इस मन्त्र जीवन निर्वाह का सर्वोत्तम साधन बतलाया है। गोमान् यह बालक गौओं वाला तथा घोड़ों वाला होवे। स्वास्थ्य के लिए जिस पर जीवन के कार्यों का निर्भर है ये दोनों वस्तु परमावश्यक हैं। गौ से दूध दधि मक्खन आदि का प्राप्त करना तथा अश्व की सवारी करके व्यायाम से उसका पाचन करना।

येन धाता इस मंत्र में इस बात का वर्णन है कि—आयु वृद्धि के लिये वायु अग्नि तथा बिजली का युक्ति पूर्वक सेवन करना, इन तीनों से शक्ति प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है जो व्यक्ति इन तीनों तत्त्वों का ठीक प्रयोग करेगा वह अवश्य दीर्घ आयु होगा।

"त्र्यायुषं" मंत्र में बतलाया है कि मनुष्य चार सौ वर्ष तक अपनी आयु की वृद्धि कर सकता है। सत्य है आर्य ऋषि महर्षि जन ब्रह्मचर्य वा ओषधियों के सेवन से तथा यज्ञ वा शुद्ध वायु आदि के सेवन से अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेते थे जिसका संसार के अन्य भू भागों में उदाहरण मिलना कठिन है।

"यत् क्षुरेणमर्चयता" इस मंत्र में कि मुंडन से आयु लम्बी होती है। इसमें मुंडन का महत्त्व दर्शाया है। चरक वा सुश्रुत में लिखा है—

पौष्टिकं वृष्य मायुष्यं शुचिरूपं विराजनं।
केश श्मश्रु नखादीनां कर्तनं संप्रसाधनं॥ चरक सूत्र स्था० अ० ५। ५३॥

बालों के काटने से पुष्टि आयु वृद्धि शुद्धि होती है।

यौपोपशमनं केश नख रोम मार्जनं। हर्ष लावण्य सौभाग्यकरमुत्साह वर्धनम्॥
सुश्रुत चि० अ० २४। ७२॥

केशादि का काटना पाप नाशक हर्ष बल सौंदर्य सौभाग्य वा उत्साह के बढ़ाने वाला है इन प्रमाणों से वेद के इस मन्त्र की पुष्टि होती है जिसमें लिखा है मुण्डन से आयु वृद्धि होती है।

दांत निकलते समय बालक के शिर में [illegible] होते हैं उनके शमन करने के लिए बालक का मुण्डन करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा वह अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो जावेगा। इत्यादि मुण्डन संस्कार के अनेक लाभ हैं।

पांचवां वा छठी बार केश काटने का प्रयोजन यह है की मनुष्य के लघु वा बड़ा दो मस्तिष्क हैं, उनकी विशेष रक्षा करनी चाहिये और वे पीछे वा अग्र भाग में विशेषतया माने जाते हैं अतएव आगे पीछे दूसरी बार केश काटे जाते हैं।

शंका—शिवो नामासि इस मंत्र में उस्तरे की पूजा लिखी है तब आर्य समाजी क्षुर पूजक हुए?

उत्तर—संस्कारविधि में क्षुर पूजन का नाम भी नहीं है। जिस मंत्र से लोगों में भ्रम होता है वह संस्कार चन्द्रिका वा संस्कार प्रकाश आदि ग्रंथों ने फैलाया है। महर्षि दयानंद इस मंत्र का अर्थ परमात्मापरक करते हैं कि वह प्रभु शिव कल्याणकारी है उस प्रभु का स्मरण करके उस्तरे का अवलोकन करते हैं।

शंका—मुण्डन में उस्तरे को विष्णु की डाढ़ लिखा है इस से सिद्ध है कि परमात्मा साकार है।

उत्तर—विष्णुर्वै यज्ञः शतपथादि में यज्ञ का नाम विष्णु लिखा है उस्तरा यज्ञ का साधन है, दंष्ट्र के अर्थ साधन हैं परमात्मा का दांत नहीं और क्या सचमुच यह उस्तरा आप के परमात्मा का दांत है कितनी विडम्बना है।

शंका—यत् क्षुरेण मन्त्र का पाठ अथर्व में केशश्मश्रु आता है किन्तु यहां केवल केश है इस का क्या उत्तर है?

उत्तर—पारस्कर में लिखा है 'मुखमिति केशांते' अर्थात् केशांत संस्कार में मुख वा श्मश्रु का ग्रहण करना चाहिये, मुंडन शिर वा केश का ही ग्रहण होता है। कारण बालक के डाढ़ी मूंछ नहीं होते अतः गृह्य सूत्रकारों ने प्रकरण के अनुकूल केवल केश शब्द लिखा है।

शंका—केश कितनी बार काटने चाहियें?

उत्तर—श्री स्वामी जी महाराज के लेखानुसार ६ बार केश काटने का विधान प्रतीत होता है। मैंने महाराज के लेखनानुसार ६ बार केश काटने लिखे हैं। लघु तथा बड़ा २ मस्तिष्क उन्हीं की रक्षा के लिए चारों ओर तथा बीच के केश काटने का विधान है। लघु मस्तिष्क के दूसरी बार केश काटने का इस लिए विधान है कि—छोटा जानकर उस की उपेक्षा न की जावे वह शरीर में बहुत महत्व रखता है।

अथ कर्णवेधसंस्कारविधिं व्याख्यास्यामः

अत्र प्रमाणम्, कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा ॥ १ ॥

यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है। बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पांचवें वर्ष का उचित है जो दिन कर्ण वा नासिका वेध का ठहराया हो उस दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध जल से स्नान और वस्त्रालङ्कार धारण करा के बालक की माता यज्ञशाला में लावे पृष्ठ ३-२५ तक में लिखी हुई सब विधि करे और बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना धर के—

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ ऋ० मं० १। सू० ८९ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के चरक, सुश्रुत वैद्यक ग्रंथों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से कर्ण वा नासिका वेध करावे कि जो नाड़ी आदि को बचा के वेध कर सके पूर्वोक्त मन्त्र से दक्षिण कान और—

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ऋ० मं० ६। सू० ७५ ॥

वक्ष्यन्ति वेदा गनीगन्ति कर्णं—कुछ कहती हुई धनुष की डोरी जैसे वीर पुरुष के कान के पास प्राप्त होती है, प्रियं सखायं परिषस्वजाना—जैसे पत्नी पति से प्रेम करती है, योषेवशिङ्क्तेवितताधि धन्वञ्ज्या—यह डोरी ही वीर को महिला तुल्य प्रिय है, ज्या इयं समने पारयन्ती—क्योंकि यह डोरी वीरों को संग्राम में पार लगाने वाली, विजय दिलाने वाली है।

इस मन्त्र को पढ़ के दूसरे वामकर्ण का वेध करे तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे जिस से छिद्र पूर न जावें और ऐसी औषधि उस पर लगावे जिससे कान पके नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें।

इति कर्णवेधसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथोपनयनसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

अत्र प्रमाणानि—अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत ॥ १ ॥ गर्भाष्टमे वा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम् ॥ ४ ॥ आषोडशाद्ब्राह्मस्यानतीतः कालः ॥ ५ ॥ आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ६ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र का प्रमाण है इसी प्रकार पारस्करादि गृह्यसूत्रों का भी प्रमाण है।

अर्थ—जिस दिन जन्म हुआ हो अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उससे ८ (आठवें) वर्ष में ब्राह्मण के, जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक को यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के १६ (सोलह) क्षत्रिय के २२(बाईस) और वैश्य के बालक को २४ (चौबीस) से पूर्व २ यज्ञोपवीत होना चाहिये यदि पूर्वोक्त काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें ॥

श्लोक—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ १ ॥

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के लड़के का जन्म वा गर्भ से पांचवें, क्षत्रिय के लड़के का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के लड़के का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें, परन्तु यह बात तब सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे, उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठबुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़ने वाले होते हैं जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें—

यज्ञोपवीत का समय—उत्तरायण सूर्य और—

वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत् । ग्रीष्मे राजन्यम् । शरदि वैश्यम् । सर्वकालसेके ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ॥

अर्थ—ब्राह्मण का वसन्त, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद ऋतु में यज्ञोपवीत करें अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है और इसका प्रातःकाल ही समय है।

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है ॥

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीनों वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये उन व्रतों में ब्राह्मण का लड़का एक व्रत वा तीनों व्रत दुग्धव्रत, क्षत्रिय का लड़का (यवागू) अर्थात् यव को मोटा दल के गुड़ के साथ पतली जैसी कि कढ़ी होती है वैसी बना कर पिलावें

(यवागू) अर्थात् मांड करके पीना ॥

और (शोभिता) अर्थात् जिसको मीलक भी मिलाना कहते हैं वैसी तो ही चौगुना दूध एक गुना तथ यथायोग्य खांड केशर डाल के कपड़े में छान कर बनाया जाता है उसको वैश्य का लड़का घी के साथ का अर्थात् जब जब लड़कों को भूख लगे तब २ तीनों वर्णों के लड़के इन तीनों पदार्थों ही का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें ॥

विधिः—अब जिस दिन उपनयन करना हो उसके पूर्व दिन में सब सामग्री इकट्ठी कर यथास्थ शोधन आदि कर लेवे और उस दिन पृष्ठ ३-२५वें तक सब कुण्ड के समीप सामग्री धर प्रातःकाल बालक का क्षौर करा शुद्ध जल से स्नान करा के उत्तम वस्त्र पहिना यज्ञमण्डप में पिता व आचार्य बालक को मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावे और बालक का पिता और पृष्ठ १८ में लिखे ऋत्विज् लोग भी पूर्वोक्त प्रकार अपने २ आसन पर बैठ यथावत् आचमनादि क्रिया करें ॥

उपनयन संस्कारविधि—

(१) यज्ञोपवीत से प्रथम एक दिन अथवा तीन बालक को उपवास करावें ।

(२) यज्ञोपवीत वाले दिन बालक के क्षौर कर्म आदि करा कर शुद्ध वस्त्र पहना कर पिता आचार्य वा पुरोहित आदि आचमन करके बालक के मुख से यह मन्त्र बुलवावें—

ब्रह्मचर्यमागम्, ब्रह्मचर्यमानि । पार० कां० २ । कं० २ ॥

मैं ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करता हूँ तथा प्रतिज्ञा करता हूँ कि ब्रह्मचारी रहूँगा ।

यह वचन बुलवा के फिर आचार्य—

वस्त्र पहनाने का मन्त्र—

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् ।

तेन त्वा परिदध्म्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलायवर्चसे ॥ १ ॥ पार० कां० २ । कं० ३ ॥

अर्थ—हे बालक जैसे वेद का महाविद्वान्, वस्त्र धारण कराता है, वैसे ही मैं तुमको दीर्घ जीवन तथा बल के लिये, ज्ञान के लिए वस्त्र धारण कराता हूँ ।

इस मन्त्र को बोलके बालक को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र पहनावे पश्चात् बालक आचार्य के सम्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेके—

यज्ञोपवीत का मंत्र—

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

* आचार्य उसे कहते हैं कि जो साङ्गोपाङ्ग वेद के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का ज्ञान करा देवे ।

रहित, प्रेम से विद्या का दाता, सब से सुख बढ़ाने में तत्पर जो [illegible] पढ़ाने वाला हो उसको [illegible] चाहिये ।

अर्थ—यह यज्ञोपवीत परमपवित्र है, भगवान् के इसके बनने आदि गुणों से युक्त किया है, यह आयु के देनेवाला मुख्य है, मैं इसको धारण करता हूँ, यह यज्ञोपवीत बल वा तेज का देने वाला है।

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेननोपनह्यामि ॥ २ ॥ पार० कां० २ ॥

अर्थ—यह यज्ञका सूत्र है, इस यज्ञोपवीत में मैं अपने आपको बांधता हूँ।

इन मन्त्रों को बोल के आचार्य बायें स्कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर बीच में निकाल दाहिने हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि तक धारण करावे तत्पश्चात् बालक को अपने दाहिने और साथ बैठा के ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण का पाठ करके समिधाधान, अग्न्याधान कर (ओं अदितेऽनुमन्य स्व०) इत्यादि पूर्वोक्त चार मन्त्रों से पूर्वोक्त रीति से कुण्ड के चारों ओर जल छिड़का पश्चात् आज्याहुति करने का आरम्भ करना ॥

वेदी में प्रदीप्त हुई समिधा को लक्ष्य में धर चमसा में आज्यस्थाली से घी ले, आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) तथा पृष्ठ २३ २४ में आज्याहुति ८ तीनों मिल के १६ (सोलह) घृत की आहुति देके पश्चात् बालक के हाथ से प्रधान होम जो विशेष शाकल्य बनाया हो उसकी आहुतियां निम्नलिखित मन्त्रों से दिलानीं, (ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि०) आदि से ४ (चार) आज्याहुति देवे। तत्पश्चात्—

हवन विधि—

(१) ईश्वरस्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण।

(२) अग्न्याधान, समिधाधान, जलसेचन।

(३) आघारावाज्य-भागाहुति चार, व्याहृति आहुति चार।

(४) अष्टाज्याहुति।

(५) ओं भूर्भुवः स्वः अग्नआयुंषि से चार शाकल्य आहुति

पांच आज्याहुति के मंत्र

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम्।

तेनर्ध्या समिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थ—हे व्रतों के पति परमात्मन्, मैं व्रत पर आचरण करूँगा, यह आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ, उसके पालन के लिये आप शक्ति प्रदान कीजिए, आपकी कृपा से वह व्रत समृद्ध हो अथवा मैं समृद्धिशाली बनूँ। मैं झूठ को छोड़ कर सत्य को प्राप्त होता हूँ।

ओं वायो व्रतपते०*स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं सूर्य व्रतपते० स्वाहा। इदं सूर्याय इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं चन्द्र व्रते पते० स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं व्रतानां व्रतपते० स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय व्रतपतये इदन्न मम ॥ ५ ॥

मं० ब्रा० १ । ६ । ६—१३ ॥

अर्थ—प्रथम मन्त्रवत् केवल अग्नि के स्थान में वायु, सूर्य, चन्द्र और व्रतादि को जानना।

इन पांच मन्त्रों से पांच आज्याहुति दिलानी उसके पीछे—

(१) व्याहृति आहुति चार।

(२) स्विष्टकृताहुति।

(३) प्राजापत्याहुति।

यह सब मिल के छः घृत की आहुति देनी, सब मिल के १५ आहुति बालक के हाथ से दिलानी। उसके पश्चात् आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठे और बालक आचार्य के सम्मुख पश्चिम में मुख करके बैठे तत्पश्चात् आचार्य बालक की ओर देख के—

आचार्य के जप का मन्त्र—

ओं आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमत्यं युयोतन।

अरिष्टाः सन्तरेमहि स्वस्ति चरतादयम् ॥ १ ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १४ ॥

अर्थ—हम सब इस बालक की सङ्गति करते हैं। आपकी कृपा से यह बालक श्रेष्ठ पुरुषों की सङ्ग करे, हम इसके सब कष्टों को अपने ऊपर लेते हैं, यह कल्याण के मार्ग पर चले। इसमन्त्र का जाप करे।

ब्रह्मचारी का कथन—

ओं ब्रह्मचर्यमागामुपमानयस्व ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १६ ॥

अर्थ—मैंने ब्रह्मचर्य धारण किया है आप मेरा उपनयन कीजिए।

आचार्य का कथन—

"कोनामसि" तेरा नाम क्या है?

बालकोक्ति—एतन्नामास्मि। मैं इस नाम वाला हूं। तत्पश्चात्—

बालक की दक्षिण हस्ताञ्जलि जल से भरने का मन्त्र—

ओं आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥

अर्थ—यह सुख देने वाला जल है, सुन्दर दृष्टि के लिए, बल प्रदान करता है।

ओं योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥

अर्थ—कामना करने वाली माताएं जैसे अपने बालकों को सुन्दर दूध देती हैं, वैसे ही यह जल हम को अपना सार भाग प्रदान करते हैं।

ओं तस्मा अरं गमाम वो यस्यक्षयाय जिन्वथ। आपोजनयथा च नः॥ ३॥

ऋ० मं० १० । सू० ९ ॥ १–३।

अर्थ—जैसे यह अन्न को बल प्रदान करते हैं, हम इन को प्राप्त होते हैं, वैसे हमें बल प्रदान हो।

इन मन्त्रों को पढ़ के बटुक की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्धोदक से भरनी तत्पश्चात् आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भरके—

आचार्य की हस्ताञ्जलि का पानी बालक की हस्ताञ्जलि में डालने का मंत्र—

ओं तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्।

श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥ १॥ ऋ० मं० ५। सू० ८२॥

अर्थ—हम भगवान के स्वरूप को वा दिये हुए भोजन को स्वीकार करते हैं, सब को धारण करने वाले सामर्थ्य को धारण करते हैं।

इस मन्त्र को पढ़ के आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि का जल बालक की हस्ताञ्जलि में छोड़ के, बालक की हस्ताञ्जलि अंगुष्ठ सहित पकड़ के—

अञ्जलि का जल पात्र में छुड़ाने का मन्त्र—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्यां हस्तं गृह्णामि॥ १॥

यजु० अ० ५। मं० २६॥

अर्थ—संसार के उत्पन्न करने वाले भगवान के ऐश्वर्य के लिए मैं तुम को ग्रहण करता हूं, प्राण अपान के बल वीर्य के लिए मैं तुम को ग्रहण करता हूं, बलवान पुरुष जैसे अपने भुजदण्डों से अन्यों की रक्षा करता है वैसे मैं तुम्हारे हाथ को पकड़ता हूं।

इस मन्त्र को पढ़ के बालक की हस्ताञ्जलि का जल नीचे पात्र में छुड़ा देना इसी प्रकार दूसरी बार अर्थात् प्रथम आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि भर बालक की अंजलि में अपनी हस्ताञ्जलि का जल भर के।

दूसरी बार जल छुड़ाने का मन्त्र—

ओं सविता ते हस्तमग्रभीत्, असौ॥ १॥

"हे बालक तेरे हाथ जगदुत्पादक भगवान् ने ग्रहण किया है।" इस मन्त्र से पात्र में छुड़वादे। पुनः इसी प्रकार आचार्य अपने हाथ में जल भर पुनः बालक की हस्ताञ्जलि में भर अंगुष्ठ सहित हाथ पकड़—

तीसरी बार जल छुड़वाने का मन्त्र—

ओं अग्निराचार्यस्तव, असौ। मं० ब्रा० १। ६। १५॥

* असौ और अमुम् इन दोनों पदों के स्थान में सर्वत्र बालक का नाम बोले।

"हे बालक तेरा असली आचार्य ज्ञान स्वरूप भगवान् है।" तीसरी बार बालक की पगड़ी का जल छुड़वाके बाहर निकल सूर्य के सामने खड़े रह देख के आचा[illegible]

बालक को सूर्यावलोकन कराने के मन्त्र—

ओं देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी ते गोपाय समामृत ॥ १ ॥

अर्थ—हे देव आप का यह ब्रह्मचारी है आप इसकी रक्षा कीजिए। यह मुझ से अच्छा बर्ताव करे।

दूसरा मन्त्र—

तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्तात् ।

इस दूसरे मन्त्र को पढ़ के बालक को सूर्यावलोकन करा, बालक सहित आचार्य सभा मण्डप में आ। यज्ञ कुण्ड की उत्तर बाजू की ओर बैठ के। इस मन्त्र को आचार्य पढ़े—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात्सउश्रेयान् भवति जायमानः ।

ओं सूर्यस्याव्रतमन्व वर्त्तस्व, * असौ ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३। सू० ८। म० ४ ॥

अर्थ—यह युवक सुंदर वस्त्रों वाला यज्ञोपवीत धारी विद्या से युक्त होकर आवे, यह विद्या जन्म के बाद श्रेष्ठ होता है! हे बालक तू सूर्य के व्रत को धारण कर।" इस मन्त्र को पढ़े और बालक आचार्य की सम्मुख बैठे। पश्चात् आचार्य बालक के दक्षिण कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श और पश्चात् अपने हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके।

ओं प्राणानांग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि, अमुम् । मै० ब्रा० १। ६। २० ॥

अर्थ—यह नाभि प्राणों का केन्द्र है, जगदीश आप की कृपा से इस बालक को मृत्यु नष्ट न करे, मैं इस को आप के अर्पण करता हूं!

उदर स्पर्श मन्त्र—

ओं अहुर इदं ते परिददामि, अमुम् ॥ २ ॥

हे वायु के प्रेरक प्रभु इसे मैं तेरे अर्पण करता हूँ। इस मन्त्र से उदर पर—

हृदय स्पर्श मंत्र—

ओं कृशन इदं परिददामि, अमुम् ॥ ३ ॥

हे अग्नि रूप प्रभो, इस मन्त्र से हृदय पर—

दक्षिण स्कन्ध स्पर्श मंत्र—

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि, असौ ॥ ४ ॥

हे बालक तुझे प्रजापति के लिए समर्पण करता हूँ। इस मन्त्र को बोल के दक्षिणस्कन्ध।

वामस्कन्धस्पर्श मंत्र—

ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, असौ ॥ ५ ॥

संस्कारोत्पादक देव के लिए तुझे समर्पण करता हूँ।"

इस मन्त्र को बोल के बाम हाथ से बाएं कन्धे को स्पर्श करके बालक के हृदय पर हाथ धर के।

बालक के हृदय पर हाथ रखने का मंत्र—

ओं तं धीरासः कवयउन्नयन्ति। स्वाध्योमनसा देवयन्तः॥ ६॥ ऋ. ३।८।

अर्थ—स्वाध्यायशील मन से कामना करते हुए, इस बालक को धैर्य शाली, कवि उन्नत करते हैं।

इस मन्त्र को बोल के आचार्य सम्मुख रह कर बालक के दक्षिण स्कन्ध के ऊपर अपना हाथ धर के फिर हृदय पर अपना हाथ रख के।

पुनः हृदय पर हाथ रखने का मंत्र—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥ १॥ पार० कां० २ कं० २॥

आचार्य इस प्रतिज्ञामन्त्र को बोले अर्थात् हे शिष्य बालक! तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूं। तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्रमन हो प्रीति से सुन कर उस के अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति, परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करे। यह प्रतिज्ञा करावे इसी प्रकार शिष्य भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि हे आचार्य! आप के हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूं। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप मेरी वाणी को एकाग्र होके सुनिये और परमात्मा मेरे लिये आप को सदा नियुक्त रक्खे इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्तिः—

को नामाऽसि॥ तेरा नाम क्या है?

बालकोक्तिः—अहंभोः॥

मेरा अमुक नाम ऐसा उत्तर देवे। आचार्यः—

कस्य ब्रह्मचार्य्यसि॥ तू किसे का ब्रह्मचारी है। बालकः—

भवतः॥ आपका। पार० कां० २। कं० २॥

रक्षा मन्त्र—

इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्य स्तव असौ।

अर्थ—तू सुख स्वरूप भगवान का ब्रह्मचारी है, ज्ञानस्वरूप भगवान तेरा आचार्य है, मैं तेरा आचार्य हूं। इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात्।

शिक्षा का मंत्र—

ओं कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कयुपनयते कायत्वा परिदधामि॥१॥

ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावा पृथिवीभ्यांत्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टयै ॥ पार० कां० २ । कं० २ ।

अर्थ—तू प्रजापति का ब्रह्मचारी है, प्राण का ब्रह्मचारी है, कौन तेरा किस के लिए उपनयन करता है, मैं सुखस्वरूप भगवान की प्राप्ति के लिए तेरा उपनयन करता हूं, जलविद्या वा औषधिविद्या को जानने के लिये तुझ को नियुक्त करता हूं, द्युलोक वा पृथिवी लोक को जानने के लिये तुझे नियुक्त करता हूं । सब विद्वानों की संगति करने के लिए तुझे नियुक्त करता हूं, सब भूतों की रक्षा के लिए तुझ को नियुक्त करता हूं ।

इन मन्त्रों को बोल बालक को शिक्षा करे कि प्राण आदि की विद्या के लिये यत्नवान् हो ।।

यह उपनयन संस्कार पूरे हुए । पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ करने का विचार पिता और आचार्य का हो तो उसी दिन करना और जो दूसरे दिन का विचार हो तो पृष्ठ २६-२७ में लिखे महावामदेव्यगान करके संस्कार में आई हुई स्त्रियों का बालक की माता और पुरुषों का बालक का पिता सत्कार करके विदा करे और माता पिता आचार्य सम्बन्धी इष्ट मित्र सब मिलके:—

ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः ।

हे बालक तू सौ बरस तक धनादि से बढ़ता हुआ दीर्घ आयु वाला तेजस्वी वर्चस्वी हो ।

इत्युपनयनसंस्कार विधिः समाप्तः

उपनयन महिमा—

(१) यज्ञोपवीतं परमं इस वाक्य में यज्ञोपवीत को आयु बल वा तेज के देने वाला लिखा है और ब्रह्मचारी कहता है कि मैं इस यज्ञ सूत्र से अपने आप को बांधता हूं । यह सत्य है जो अपने आप को इस सूत्र से सूचित ब्रह्मचर्यादि नियमों में अपने आप को बांधेगा तथा अष्टविध मैथुनों से अपने आप को बचाता हुआ वैदिक नियमों पर आचरण करेगा उस का बल तेज स्मरणशक्ति मेधा अवश्यमेव बढ़ेंगे । अतः यह सूत्र इन गुणों का देने वाला है ।

(२) यज्ञोपवीत के ३ धागे होते हैं और तीन ही मनुष्य पर ऋण होते है—ऋषि ऋण, देव ऋण, तथा पितृ ऋण । यज्ञोपवीत के तीन धागे इस बात के सूचक हैं कि प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं किंतु इन तीन ऋणों में बंधा हुआ है । इन को उतारना प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है । कैसी सुंदर शिक्षा है यदि प्रत्येक प्राणी यह अनुभव करे कि मैंने ये तीनों ऋण उतारने हैं तब लोगों में स्वार्थ का नाम न रहे, सारा देश स्वर्ग तुल्य हो जावे कोई भी देश का प्राणी दुःखी निरक्षर न रहे देशभक्ति का समुद्र भक्ति की तरङ्गों में तरङ्गित हो उठे ।

विद्याध्ययन से ऋषिऋण दूर होता है तथा हवनादि से देवऋण दूर होता है वा पितृ सेवा वा सुप्रजा से पितृऋण दूर होता है ये तीनों ही राष्ट्र का सच्चा स्वरूप है ।

(३) अग्ने व्रतपते इस मन्त्र में बालक व्रत धारण वा उस के आचरण की प्रतिज्ञा करता है और कहता है कि प्रभो मैं तुम्हारे समक्ष प्रतिज्ञा करता हूं काराजों पर लिखी हुई वा राजा प्रजा के आगे की हुई प्रतिज्ञा का भङ्ग मनुष्य अनेक प्रकार से कर सकता है किंतु उस अन्तर्यामी से तो किसी प्रकार भी नहीं बच सकता अतः भगवान् को साक्षी बना कर की हुई प्रतिज्ञा का विशेष महत्व है।

आगे कहता है प्रभो आपकी कृपा से इस प्रतिज्ञा के पालन करने में समर्थ होऊं। इस से निरभिमानता पाई जाती है तथा जो कार्य प्रभु के सहारे से किया जाता है वह अवश्यमेव सफल होता है। आगे कहता है इस प्रतिज्ञा से मैं समृद्धिशाली बनूं। इससे यह सूचित होता है कि यह प्रतिज्ञा निरर्थक नहीं किंतु सार्थक है।

प्रतिज्ञा का स्वरूप यह है कि असत्य को त्याग कर सत्य को प्राप्त करूं। कैसा सुन्दर स्वरूप वा लक्षण है सत्य शब्द से संसार के सब कल्याण कारक गुणों का समावेश हो गया है।

(४) तत् सवितु मंत्र में यह बतलाया है कि हम प्रभु के भोजन को स्वीकार करते हैं तथा उसके सुन्दर व श्रेष्ठ सामर्थ्य को धारण करते हैं। यह भाव सबके हृदय में आजावे की सब को भोजन प्रदान करने वाला प्रभु है तब परस्पर कितनी सद्भावना बढ़ सकती है।

(५) युवासुवासा इस मंत्र में यह कहा है कि विद्या के द्वारा जो दूसरा जन्म होता है उसी से मनुष्य उत्तम होता है। केवल जन्म से नहीं है बालक तुम सूर्य व्रत को धारण करो जैसे सूर्य अपने नियमों पर अटल होता हुआ संसार को प्रकाश प्रदान करता है वैसे तुम भी संसार में दानी विज्ञानी परोपकारी तेजस्वी बन कर रहो।

(६) तीन बार जल छोड़ने का यह प्रयोजन है कि यह जल जैसे शीतल वैसे ही अंजली से आचार्य यह सूचित करता है कि मैं अपने विद्यारूपी जल से तुम्हें पूर्ण वा शांत करूंगा। तीन बार जल का प्रयोजन यह है कि प्रथम प्रतिज्ञा मन में पुनः वाणी में वा पश्चात् आचरण में आती है। मैं तीनों प्रकार से अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा।

(७) यह धर्म का तथा यज्ञ का चिह्न भी है संसार में सम्पूर्ण कार्य चिह्नों से चल रहे हैं। सेना विभाग में देखो विमानों पर टैङ्क वा समुद्रीय नौकाओं पर सब पर प्रत्येक देश के भिन्न २ चिह्न हैं यदि वे न हों तब उनको न पहचान कर संग्राम करना ही अत्यन्त कठिन हो जावे। प्रत्येक ध्वजों के ऊपर भी रंग वा चिह्न पृथक २ हैं यज्ञोपवीत बुद्धि पूर्वक धर्म वा यज्ञ का अनेक अन्य महत्वों के रखते हुए चिह्न भी है।

अथ वेदारम्भसंस्कारविधिर्व्याख्यास्यते

वेदारम्भ उसको कहते हैं जो गायत्री मन्त्र से लेके साङ्गोपाङ्ग* चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करना ॥

समयः—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है यदि उस दिवसे में न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करे। यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करे ॥

विधिः—जो वेदारम्भ का दिन ठहराया हो उस दिन प्रातःकाल शुद्धोदक से स्नान कराके शुद्ध वस्त्र पहिना, पश्चात् कार्यकर्त्ता अर्थात् पिता यदि पिता न हो तो आचार्य बालक को लेके उत्तमासन पर वेदी के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठे। तत्पश्चात् पृष्ठ ३—१५ तक में ईश्वरस्तुति †, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण करके पृष्ठ २५—२६ में (भूर्भुवः स्वा०) इस मन्त्र से अन्याधान पृष्ठ २५—२६ में (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिधाधान, पृष्ठ २७ में (ओं अदितेनुमन्यस्व०) इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड के तीनों ओर और (ओं देव सवितः०) इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिटका के (उद्बुध्यस्वाग्ने०) इस मन्त्र से अग्नि को प्रदीप्त करके प्रदीप्त समिधा पर पृष्ठ २७—२८ में आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) व्याहृति आहुति ४ (चार) और गत पृष्ठों के अनुसार आज्याहुति आठ, मिलके १६ (सोलह) आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान ‡ होमाहुति दिला के पश्चात् व्याहृति ४ (चार) और स्विष्टकृत् आहुति १ (एक) प्राजापत्याहुति १ (एक) मिलकर छः आज्याहुति बालक के हाथ से दिलानी तत्पश्चात्—

अग्नि एकत्र करने का मंत्र—

ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु। ओं यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि। ओं एवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। ओं यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि। ओं एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥ १ ॥ पार० कां० २। कं० ४ ॥

हे प्रभो आप कीर्ति वाले हैं मुझ को कीर्ति वाला बनाइये। जैसे आप यशस्वियों के यशस्वी हैं ऐसे

---

* (अङ्ग) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष। (उपाङ्ग) पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदांत। (उपवेद) आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद और अर्थवेद अर्थात् शिल्पशास्त्र। (ब्राह्मण) ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ। (वेद) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन सब को क्रम से पढ़े।

† जो उपनयन किये पश्चात् उसी दिन वेदारम्भ करे उसको पुनः वेदारम्भ के आदि में ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना और शांतिप्रकरण करना आवश्यक नहीं ॥

‡ प्रधान होम उसको कहते हैं जो संस्कार मुख्य करके किया जाता है ॥

ही मुझ को यशस्वियों का यशस्वी बनाइये। भगवन् जैसे आप बुद्धिमानों में वा सर्वजड़ पदार्थों में यज्ञ रूपी निधि की रक्षा करने वाले हैं। तथा आप की दया से मैं मनुष्यों के कोष वेद का रक्षक अध्येता बनूं।

वेदारम्भसंस्कार विधि—

(१) ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शांति पाठ।

(२) अग्न्याधान समिधाधान।

(३) घृत की पांच आहुति जल सेचन।

(४) आघारावाज्य भागाहुति चार व्याहृति चार

(५) अष्टाज्याहुति।

(६) प्रधान होमाहुति अग्न आयुषि चार मन्त्र तथा अग्ने व्रतपते।

(७) व्याहृति आहुति स्विष्टकृत वा प्राजापत्य।

इस मन्त्र से वेदी के अग्नि को इकट्ठा करना तत्पश्चात् बालक कुंड की प्रदक्षिणा कर के अदितेऽनुमन्यस्व इत्यादि चार मन्त्रों से कुंड के सब ओर जल सेचन कर के बालक कुंड के दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख खड़ा रह कर घृत में भिगो के एक समिधा हाथ में ले

समिधा डालने का मंत्र—

ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथात्वमग्ने समिधा समिध्यस एव महमायुषा मेधया वर्च्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेन समिन्धे जीव पुत्रोममाचार्यो मेधावी अहम सानि अनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्म वर्चस्वी अन्नादो भूयासं स्वाहा ॥१॥ पार० कां० २ कं० ।४॥

अर्थ—इस अग्नि में समिधा डालता हूं जैसे यह अग्नि समिधाओं के डालने से बढ़ता है वैसे मैं प्रभु की दया से आयु मेधा ज्ञान पशु ब्रह्म वर्चस से बढ़ूं वा प्रदीप्त होऊं। मेरे आचार्य के पुत्र जीते रहें। मैं मेधावी प्रिय यशस्वी तेजस्वी सुन्दर अन्न के खाने वाला इस की कृपा से हो जाऊं।

समिधा वेदिस्थ अग्नि के मध्य में छोड़ देनी इसी प्रकार दूसरी ओर तीसरी समिधा छोड़े। पुनः—"अग्ने सुश्रवस" इस मंत्र से वेदिस्थ अग्नि को इकट्ठा करके अदित्येऽनुमन्यस्व इत्यादि चार मंत्रों से जल सेचन करके बालक वेदि के पूर्वाभिमुख बैठ के वेदी के अग्नि पर दोनों पश्चिम में हाथों को थोड़ा सा तपा के हाथ में जल लगा—

हथेली में जल लगा मुख स्पर्श करने के मंत्र—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥१॥

भगवन् आप तनूपा हैं मेरे शरीर की रक्षा कीजिये।

ओं आयुर्दा अग्ने स्यायुर्मे देहि ॥२॥

हे आयु प्रद मुझ को आयु प्रदान कीजिये।

वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥

विज्ञानप्रद परमात्मन् मुझ को विज्ञान दीजिये।

ओं अग्ने यन्मेतन्वायनं तन्म आपृण ॥४॥

परमेश जो मेरे शरीर में न्यूनता है उसको पूर्ण करो।

ओं मेधां मे सविता आदधातु ॥५॥

जदुत्पादक मुझ को मेधा प्रदान करे।

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥

विदुषी देवी मुझ को मेधा देवे।

मेधां मे अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजौ ॥७॥

पुष्प माला धारी अध्यापक, उपदेशक मेधा देवें।

इन सात मंत्रों से सात बार किंचित् हथेली उष्ण कर जल स्पर्श करके मुख स्पर्श करना तत् पश्चात्

बालक—

मुखादि स्पर्श के मंत्र

ओं वाक्च म आप्यायतां। इस मंत्र से मुख—मेरी वाणी बढ़े वा पवित्र होवे।

प्राणश्च म आप्यायतां। इस मंत्र से नासिका द्वार—प्रभो मेरे प्राण बड़े होवें।

ओं चक्षुश्च म आप्यायतां। इस मंत्र से दोनों नेत्र, मेरी नेत्र ज्योति बढ़े।

श्रोत्रं च म आप्यायतां। इस मंत्र से दोनों कान, मेरे दोनों श्रोत्र बलवान् बनें।

ओं यशोबलं च म आप्यायतां। इस दोनों बाहुओं को स्पर्श करे।

मेरे यश और बल पवित्र होवें।

बालक द्वारा उपस्थान मंत्रः—

मयि मेधां मयिप्रजां अग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयिप्रजांमयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु। यन्तेऽग्ने तेजस्ते नाहं तेजस्वी भूयासं। यत्तेऽग्नेवर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासं। यत्तेऽग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासं। तैत्ति० आ० प्र० ४४ ॥

अर्थ—मुझ में प्रभु मेधा प्रजा वा तेज प्रदान करे। दूसरे में अग्नि के स्थान में इन्द्र शब्द जोड़ना तथा तीसरे सूर्य शब्द लगाना। हे अग्ने परमात्मन् तुम्हारे तेज तथा दुष्ट बाधक शक्ति से मैं तेजस्वी वर्चस्वी तथा दुष्ट ताड़क बनूं ॥

इन मन्त्रों से बालक परमेश्वर का उपस्थान कर के कुंड की उत्तर बाजू की ओर जो के जानू को भूमि में टेक के, पूर्वाभिमुख बैठे और आचार्य बालक के सम्मुख पश्चिमाभिमुख बैठ—

बालकोक्तिः—अधीहि भूः सावित्रीं मो अनुब्रूहि ।

अर्थात् आचार्य से बालक कहे कि आचार्य ! प्रथम एक ओंकार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक मन्त्र को मुझे उपदेश कीजिये तत्पश्चात् आचार्य एक वस्त्र अपने और बालक के कंधे पर रख के अपने हाथ से बालक के दोनों हाथ की अंगुलियों को पकड़ के नीचे लिखे प्रमाणे बालक को तीन बार कर के गायत्री मन्त्रोपदेश करे ।

प्रथम बार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् ।

इतना टुकड़ा एक एक पद का शुद्ध उच्चारण बालक से करा के दूसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि

एक एक पद से यथावत् धीरे धीरे उच्चारण करवा के तीसरी बार—

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

धीरे धीरे इस मन्त्र को बुलवा के संक्षेप से इस का अर्थ भी नीचे लिखे प्रमाण आचार्य सुनावे—

अर्थ—यह मुख्य परमेश्वर का नाम है जिस नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं जो प्राण का भी प्राण सब दुःखों से छुड़ाने हारा स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुख की प्राप्ति कराने हारा है उस सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक समग्र ऐश्वर्य के दाता कामना करने योग्य सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का जो अतिश्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्धस्वरूप है उस को हम लोग धारण करें । यह जो परमात्मा हमारी बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करें । इसी प्रयोजन के लिए इस जगदीश्वर को स्तुति प्रार्थनोपासना करना और इस से भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव उस के तुल्य वा उस से अधिक नहीं मानना चाहिये । इस प्रकार अर्थ सुनाये, पश्चात्—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्टवा नियुनक्तु मह्यम् ॥१॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

इस मन्त्र से बालक और आचार्य पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा कर के—

मेखला का मंत्र—

इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्ण पवित्रं पुनती म आगात् ।
प्राणापानाभ्यां बल मा दधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम् । मं० ब्रा० १ । २ । २७ ।

यह सुन्दर कटि सूत्र है इस को मैं बांधता और यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी दुर्वचन नहीं बोलूंगा। अपनी सुन्दरता का दुरुपयोग नहीं करूंगा। प्राण तथा अपान के द्वारा बलकी वृद्धि करूंगा।

इस मन्त्र से आचार्य सुन्दर चिकनी प्रथम बना के रखी हुई मेखला * को बाल की कटि में बांध के—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ १ ॥ ऋ० मं० ३। सू० ८। मंत्र ४॥

इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोछे और एक उत्तरीय और दो कटिवस्त्र ब्रह्मचारी को आचार्य देवे और उनमें से एक कौपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे तत्पश्चात् आचार्य दण्ड † हाथ में लेके सामने खड़ा रहे और बालक भी आचार्य के सामने हाथ जोड़—

दण्ड धारण का मंत्र—

ओं यो मे दंडः परापतद्धैहायसोऽधिभूम्याम्। तमह पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥१॥
पार० कां० २। कं० २॥

इस मन्त्र को बोल के बालक आचार्य के हाथ से दण्ड ले लेवे, तत्पश्चात् पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करे—

ब्रह्मचार्यसि असौ‡ ॥१॥ अपो अशान ॥२॥ कर्म कुरु ॥३॥ दिवा मा स्वाप्सीः ॥४॥ आचार्याधीनो वेदमधीष्व ॥५॥ द्वादश वर्षाणि प्रतिवेद ब्रह्मचर्यं गृहाण वा ब्रह्मचर्यं चर ॥६॥ आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात् ॥७॥ क्रोधानृते वर्जय ॥८॥ मैथुनं वर्जय ॥९॥ उपरि शय्यां वर्जय ॥१०॥ कौशीलवगन्धाञ्जनानि वर्जय ॥११॥ अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोहभयशोकान् वर्जय ॥१२॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वादन्त धावन-स्नानसन्ध्योपासनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनायोगाभ्यासान्नित्यमाचर ॥१३॥ क्षुरकृत्यं वर्जय ॥१४॥ मांसरूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय ॥१५॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय ॥१६॥ अन्तर्ग्रामनिवासोपान-

---

* ब्रह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुष संज्ञक तृण वा बलूकल की और वैश्य को ऊन वा सन की मेखला बांधे।

† ब्राह्मण के बालक को खड़ा रख के भूमि से ललाट के केशों तक पलाश व विल्व वृक्ष का, क्षत्रिय को वट वा खदिर का ललाट भ्रू तक, वैश्य को पीलू अथवा गूलर वृक्ष का नासिका के अग्रभाग तक दण्ड प्रमाण है और वे दण्ड चिकने सुधे, अग्नि में जले, टेढ़े, कीड़ों के खाये हुए न हों और एक २ मृगचर्म उनके बैठने के लिये एक २ जलपात्र, एक उपपात्र और एक २ आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये।

‡ असौ इस पद के स्थान में ब्रह्मचारी का नाम सर्वत्र उच्चारण करे।

ब्रह्मचारी चरेति ॥१७॥ ऊर्ध्वरेताः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संस्थो-वरेताः सततं भव ॥१८॥ तैलाभ्यङ्गमर्दनात्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥१९॥ नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव ॥२०॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव ॥२१॥ मेखलादण्डधारणभैक्ष्यचर्यसमिदाधानोदकस्पर्शनाचार्यप्रियाचरणप्रातःसायमग्निवादनविधानं चयजिते-न्द्रियत्वादीन्येते ते नित्यधर्माः ॥२२॥

अर्थः—तू आज से ब्रह्मचारी है ॥ १ ॥ नित्य सन्ध्योपासन भोजन के पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर ॥ २ ॥ दुष्ट कर्मों को छोड़ धर्म किया कर ॥ ३ ॥ दिन में शयन कभी मत कर ॥ ४ ॥ आचार्य के आधीन रह के नित्य साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ने में पुरुषार्थ किया कर ॥ ५ ॥ एक एक साङ्गोपाङ्ग वेद के लिये बारह बारह वर्ष पर्यंत ब्रह्मचर्य अर्थात् ४८ वर्ष तक वा जब तक साङ्गोपाङ्ग चारों वेद पूरे होवें तब तक अखंडित ब्रह्मचर्य कर ॥ ६ ॥ आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करे उस को तू कभी मत मान और उस का आचरण मत कर ॥ ७ ॥ क्रोध और मिथ्याभाषण करना छोड़ दे ॥ ८ ॥ आठ*प्रकार के मैथुन को छोड़ देना ॥ ९ ॥ भूमि में शयन करना पलङ्ग आदि पर कभी न सोना ॥ १० ॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर ॥ ११ ॥ अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर ॥ १२ ॥ रात्रि के चौथे पहर में जाग आवश्यक शौचादि दंतधावन, स्नान, सन्ध्योपासना, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर ॥ १३ ॥ चोर मत करा ॥ १४ ॥ मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे ॥ १५ ॥ बैल घोड़ा हाथी ऊंट आदि की सवारी मत कर ॥ १६ ॥ गांव में निवास और जूता और छत्र का धारण मत कर ॥ १७ ॥ लघुशङ्का के निवृत्त आदि इंद्रिय के स्पर्श से वीर्यस्खलन कभी न कर के वीर्य को शरीर में रख निरंतर ऊर्ध्वरेता अर्थात् नीचे वीर्य को मत गिरने दे इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर ॥ १८ ॥ तैलादि से अङ्गमर्दन उबटना अति खट्टा इमली आदि, अति तीखा लालमिर्च आदि, कसेला हरड़ें आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि इनका सेवन मत कर ॥१९॥ नित्य युक्ति से आहार विहार कर के विद्याग्रहण में यत्नशील हो ॥२०॥ सुशील मीठी बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर ॥ २१ ॥ मेखला और दंड का धारण, भिक्षाचरण, समिदाधान, स्नान, संध्योपासन, आचार्य का प्रियाचरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना ये तेरे नित्य करने के और जो निषेध किये ये नित्य न करने के कर्म हैं ॥ २२ ॥

जब यह उपदेश पिता कर चुके तब बालक पिता को नमस्कार कर हाथ जोड़ के कहे कि जैसा आप ने उपदेश किया वैसा ही करूंगा। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर के कुण्ड के पश्चिम

* स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकांतवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है जो इन को छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी होता है।

भाग में खड़ा रह के माता, पिता, बहिन, भाई, मामा, मौसी, चाची आदि से के और भिक्षा ले के आवे न करे उन से भिक्षा * मांगे और जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के आगे धर देवे तत्पश्चात् आचार्य उस में से कुछ थोड़ा सा अन्न लेके वह सब भिक्षा बालक को देदेवे और वह बालक उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख छोड़े तत्पश्चात् बालक को शुभासन पर बैठा के पृष्ठ २६—२७ में लिखे वामदेव्यगान को करना तत्पश्चात् बालक पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे पश्चात् सायंकाल तक विश्राम और गृहाश्रम संस्कार में लिखी विधि सन्ध्योपासना आचार्य बालक के हाथ से करावे और पश्चात् ब्रह्मचारी सहित आचार्य कुण्ड के पश्चिम भाग में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे और स्थालीपाक अर्थात् भात बना उस में घी डाल पात्र में रख पृष्ठ २०-२१ में लि० समिदाधान कर पुनः समिधा प्रदीप्त कर आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) दोनों मिल के ८ (आठ) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ा हो के "ओं अग्ने सुश्रवा०" इस मन्त्र से तीन समिधा की आहुति देवे तत्पश्चात् बालक बैठ के यज्ञकुण्ड की अग्नि से अपना हाथ तपा में पूर्ववत् मुख का स्पर्श कर के अङ्गस्पर्श करना तत्पश्चात् पृष्ठ २२-२३ में लि० प्र० बताये हुए भात को बालक आचार्य को होम और भोजन के लिये देवे पुनः आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में ले के उस में घी मिला—

ओं सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥
इदं सदसस्पतये—इदन्न मम ॥ १ ॥ य० अ० ३२ । मं० १३ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
इदं सवित्रे—इदन्न मम ॥ २ ॥ यजु० अ० २२ । मं० ६ ॥ ओं ऋषिभ्यः स्वाहा ॥
इदं ऋषिभ्यः—इदन्न मम ॥ ३ ॥ आश्व० अ० १ । कं० २२ । सू० १४ ॥

इन तीन मन्त्रों से तीन और (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से चौथी आहुति तत्पश्चात् पृष्ठ २२-२३ में लि० व्याहृति आहुति ४ (चार) पृष्ठ २४-२५ में (ओं त्वन्नो०) इस ८ (आठ) मन्त्र से आज्यहुति ८ (आठ) मिल के १२ (बारह) आज्याहुति देके ब्रह्मचारी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे पृष्ठ २६-२७ में लि० वामदेव्यगान आचार्य के साथ करके—

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये ॥

ऐसा वाक्य बोल के आचार्य्य का वन्दन करे और आचार्य्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य ॥

* ब्राह्मण का बालक यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भगवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु" और क्षत्रिय का बालक "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" वैश्य का बालक "भिक्षां ददातु भवान्" और "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा वाक्य बोले ॥

ऐसा आशीर्वाद देके पश्चात् होम से उने हुए हविष्य अन्न और दूसरे भी सुन्दर मिष्टान्न का भोजन आचार्य के साथ अर्थात् पृथक् २ बैठ के करें तत्पश्चात् हस्त मुख प्रक्षालन करके संस्कार में निमन्त्रण में जो आये हों उन को यथायोग्य भोजन करा तत्पश्चात् स्त्रियों को स्त्री और पुरुषों को पुरुष प्रीति पूर्वक विदा करें और सब जन बालक को निम्नलिखित:—

हे बालक ! त्वमीश्वरकृपया विद्वान् शरीरात्मबलयुक्तः कुशली वीर्यवानरोगः सर्वा विद्या अधीत्याऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः ॥

अर्थ—हे बालक तू विद्वान् बलवान वीर्यवान कुशल अरोगी होकर पुनः आ ।

ऐसा आशीर्वाद दे के अपने २ घर को चले जाएं तत्पश्चात् ब्रह्मचारी ३ (तीन) दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सायं पूर्व लिखित (ओमग्ने सुश्रव०) इस मन्त्र से समिधा होम और पृष्ठ २४ में लि० मुख आदि अङ्गस्पर्श आचार्य करावे तथा तीन दिन तक (सदसस्पति०) इत्यादि मन्त्रों से ४ (चार) स्थालीपाक की आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवावे और ३ (तीन) दिन तक चार लवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के संयम की प्रतिज्ञा करे तथा आचार्य भी करे ॥

आचार्य उपनयनो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ १ ॥ इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥ ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ॥ स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्येणतपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ४ ॥ ब्रह्मचर्येण कन्यायुवानं विन्दते पतिम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ११ । सू० ५ ॥

संक्षेप से भावार्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञापूर्वक समीप रख के ३ (तीन) रात्रि पर्य्यन्त गृहाश्रम के प्रकरण में लिखे सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उसके आत्मा के भीतर गर्भ रूप विद्या स्थापन करने के लिये उसको धारण कर और उसको पूर्ण विद्वान् कर देता और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य विद्या की पूर्ण करके घर को आता है तब उसको देखने के लिये सब विद्वान् लोग सम्मुख जा कर बड़ा मान्य करते हैं ॥ १ ॥

जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होम कर ब्रह्मचर्य के व्रत का नियमपूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढोत्साही होता है वह जानो पृथिवी सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सब का पालन करता है क्योंकि वह समिदाधान मेखलादि चिह्नों का धारण और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ॥ २ ॥

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण को दीक्षित होके [illegible] वर्ष तक डाढ़ी मूंछ आदि पंचकेशों का धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता है वह पूर्ण समुद्र [illegible] को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तम समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है वह सब लोगों का [illegible] बारंबार पुरुषार्थ और जगत को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

वही राजा उत्तम होता है जो पूर्ण ब्रह्मचर्यरूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित सुशील जितेन्द्रिय हो कर राज्य को विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और [illegible] हो सकता है जो यथावत ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है ॥ ४ ॥

जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण जवान हो के अपने सदृश कन्या से विवाह करें वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवति हो अपने तुल्य पूर्ण युवावस्था वाले पति को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों का शब्द अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है तभी प्रकाशमान होता उसमें सम्पूर्ण दिव्यगुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख क्लेशों का नाश, सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम बुद्धि, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रज्ञा को धारण करके सब मनुष्यों के हित के लिये सब विद्याओं का प्रकाश करता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यकालः ॥

इसमें छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण ।

मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद ॥ १ ॥ पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत् प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ २ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳ सवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३ ॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥ ४ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहम्प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ५ ॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत् तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ६ ॥ तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् स ब्रूयात् प्राणा

आदित्या इव ये तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुते। माहं प्राणानामोदित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीत्येतदेव तत्र दृष्टमृषिर्हैव मंवोते ॥ ७ ॥

अर्थः—जो बालक को ५ (पांच) वर्ष की आयु तक माता पांच से ८ (आठ) तक पिता ८ (आठ) से ४८ (अड़तालीस) ४४ (चवालीस) ४० (चालीस) ३६ (छत्तीस) ३० (तीस) तक अथवा २५ (पचीस) वर्ष तक तथा कन्या को ८ (आठ) से २४ (चौबीस) २२ (बाईस) २० (बीस) १८ (अठारह) अथवा १६ (सोलह) वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष स्त्री विद्यावान् होकर धर्मार्थ काम मोक्ष के व्यवहारों में अतिचतुर होते हैं ॥ १ ॥ यह मनुष्य देह यज्ञ अर्थात् अच्छे प्रकार उस को आयु बल आदि से संपन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि २४ (चौबीस) वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और १६ (सोलह) वर्ष तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण जैसे (चौबीस) अक्षर का गायत्री छन्द होता है वैसे करे वह प्रातःसवन कहाता है जिससे इस मनुष्य-देह के मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं जो बलवान् होकर सब शुभ गुणों को शरीर आत्मा और मन के बीच में वास कराते हैं ॥२॥ जो कोई इस २५ (पचीस) वर्ष के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह वा विषयभोग. करने का उपदेश करे उसको वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि देख, यदि मेरे प्राण मन और इन्द्रिय २५ (पच्चीस) वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए तो मध्यम सवन जो कि आगे ४४ (चवालीस) वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है उसको पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है इसलिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूं कि जो इस शरीर प्राण अन्तःकरण और आत्मा के संयोगरूप सब शुभ गुण, कर्म और स्वभाव के साधन करने वाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्यदेह धारण के फल से विमुख रहूं और सब आश्रमों के मूल सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सब के मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महादुःखसागर में कभी डूबूं किन्तु जो प्रथम आयु में ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोगरहित होता है इसलिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूंगा ॥ ३ ॥ और जो ४४ (चवालीस) वर्ष तक अर्थात् जैसा ४४ (चवालीस) अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है वह ब्रह्मचारी रुद्ररूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिसके आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह दुष्ट कर्म करने वालों को सदा रुलाता रहता है ॥ ४ ॥ यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता और विषय सम्बन्धी भी अधिक आनन्द होता है वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता क्योंकि सांसारिक व्यवहार विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है अन्य कोई नहीं, इसलिये मैं इस सर्वोत्तम सुख प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान् बलवान् आयुष्मान् धर्मात्मा हो के सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊंगा। तुम्हारे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं और अपने कुल को नष्ट भ्रष्ट कभी न करूंगा ॥ ५ ॥ अब ४८ (अड़तालीस) वर्ष पर्यन्त जैसा कि ४८ (अड़तालीस) अक्षर का जगती छन्द होता है वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या,

ग्रहण करता है ॥ ६ ॥ यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे उसको ब्रह्मचारी उत्तर देवे कि अरे ! छोकरों के छोकरे मुझ से दूर रहो तुम्हारे दुर्गन्धरूप भ्रष्ट वचनों से मैं दूर रहता हूं, मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूंगा। इसको पूर्ण करके सब रोगों से रहित सर्वविद्यादि शुभ गुण, कर्म स्वभाव सहित होऊंगा। इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करे जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ाने, विशेष तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूं ॥ ७ ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धियौवनं संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति । तत्राषोडशाद् वृद्धिः ॥ आपञ्चविंशतेर्यौवनम् ॥ आचत्वारिंशतस्सम्पूर्णता । ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥ पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥१॥

यह धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुतग्रन्थ का प्रमाण है।

अर्थ—इस मनुष्य देह की ४ अवस्थाएं हैं—एक वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी संपूर्णता, चौथी किञ्चित्परिहाणि करने हारी अवस्था है। इन में १६ (सोलहवें) वर्ष आरम्भ २५ (पचीसवें) वर्ष में पूर्ति-वाली वृद्धि की अवस्था है। जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष वा डंडे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश कर के पश्चात्ताप करेगा, पुनः उस के हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा और दूसरी जो युवावस्था उसका आरम्भ २५ (पचीसवें) वर्ष से और पूर्त्ति ४० (चालीसवें) वर्ष में होती है जो कोई इस को यथावत् संरक्षित न करे रक्खेगा वह अपनी भाग्यशालिता को नष्ट कर देवेगा और तीसरी पूर्ण युवावस्था ४० (चालीसवें) वर्ष में होती है जो कोई ब्रह्मचारी होकर पुनः ऋतुगामी परस्त्रीत्यागी एकस्त्रीव्रत गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा वह भी बना बनाया धूल में मिल जायगा और चौथी ४० (चालीसवें) वर्ष से यथावत् निर्वीर्य न हो तावत् किञ्चित् हानिरूप अवस्था है यदि किञ्चित् हानि के बदले वीर्य्य की अधिक हानि करेगा वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जायगा और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित रक्खेगा वह सर्वदा आनन्दित होकर सब संसार को सुखी कर सकेगा ॥

अब इस में इतना विशेष समझना चाहिये कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एक सा समय नहीं है किन्तु जितना सामर्थ्य २५ (पचीसवें) वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में १६ (सोलहवें) वर्ष में हो जाता है यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो २५ (पचीस) वर्ष का पुरुष और १६ (सोलह) वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं इस कारण इस अवस्था में जो विवाह करना वह अधम विवाह है और जो १७ (सत्रहवें) वर्ष की स्त्री और ३० (तीस) वर्ष का पुरुष १८ (अठारह) वर्ष की स्त्री और छत्तीस वर्ष का पुरुष १९ (उन्नीस) वर्ष की स्त्री ३८ (अड़तीस) वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इस को मध्यम समय जानो और जो २० (बीस) २१ (इक्कीस) २२ (बाईस) वा २४

(छत्तीस) वर्ष की स्त्री ४० (चालीस) ४८ (अड़तालीस) ४६ (छयालीस) और ४८ (अड़तालीस) वर्ष का पुरुष होकर विवाह करे वह सर्वोत्तम है। हे ब्रह्मचारिन्! इन वाक्यों को तू ध्यान में रख जो कि तुझ को और तेरे आश्रमों में काम आवेंगे। जो मनुष्य अपने सन्तान कुलसम्बन्धी और देश की उन्नति करना चाहें वे इन पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातों का यथावत् आचरण करें॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता॥१॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः। कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥२॥
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्। यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ॥३॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥४॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥५॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च। न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥६॥
सर्वं कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा। सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्॥७॥
यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः। यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥८॥
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥९॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः। अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥१०॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः। ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥१२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥१३॥
संस्कारोद्वाह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥१४॥
वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः। वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥१५॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥१६॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति। तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥१७॥
श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि॥१८॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्। विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥१९॥मनु०॥

अर्थः—कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्र का मार्ग), हाथ, पग, वाणी ये दस (१०) इन्द्रियां इस शरीर में हैं॥१॥ इसमें कर्ण आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं॥२॥ ग्यारहवां इन्द्रिय मन है वह अपने स्मृति आदि गुणों से दोनों प्रकार के इन्द्रियों को जीतने

करता है कि जिस मन के जीतने में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ जैसे सारथि घोड़ों को कुपथ में नहीं जाने देता वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करने वाले विषयों में जाते हुए इन्द्रियों को रोकने का सदा प्रयत्न किया करे ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसन्देह दोषी हो जाता है और इन पूर्वोक्त दश इन्द्रियों को वश में करके ही पश्चात् सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जिस का आहारादि (खानपान नहीं, चाहना वा इन्द्रियों को वश में रखना आदि) बिगड़ा वा जिसका विशेष प्रभाव (वर्णाश्रम के गुण कर्म) बिगड़े हैं उस पुरुष के वेद पढ़ना, त्याग अर्थात् संन्यास लेना, यज्ञ (अग्निहोत्रादि) करना, नियम (ब्रह्मचर्याश्रम आदि) करना, तप (निन्दा, स्तुति और हानि, लाभ आदि द्वन्द्व का सहन) करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते। इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि अपने नियम धर्मों को यथावत् पालन करके सिद्धि को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियों को वश में कर और आत्मा के साथ मन को युक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किञ्चित् २ पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे ॥ ७ ॥ बुद्धिमान् ब्रह्मचारी को चाहिये कि यमों का सेवन नित्य करे केवल नियमों का नहीं क्योंकि यमों * को न करता हुआ और केवल नियमों † का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है इसलिये यमसेवनपूर्वक नियम-सेवन नित्य किया करे ॥८॥ अभिवादन करने का जिसका स्वभाव और विद्या वा अवस्था में वृद्ध पुरुषों को जो नित्य सेवन करता है उसकी अवस्था, कीर्त्ति और बल इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि आचार्य, माता, पिता, अतिथि, महात्मा आदि अपने बड़ों को नित्य नमस्कार और सेवन किया करे ॥ ९ ॥ अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा, वह निश्चय करके बालक होता और जो मन्त्रद वर्णात् दूसरे को विचार देने वाला विद्या पढ़ा विद्या विचार में निपुण है वह पितास्थानीय होता है क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषों ने अज्ञ जन को बालक कहा और मन्त्रद को पिता ही कहा है इससे प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर ज्ञानवान् विद्यावान् अवश्य होना चाहिये ॥ १० ॥ धर्मवेत्ता ऋषिजनों ने न वर्षों, न पके केशों वा भूलते हुए अङ्गों, न धन और न बन्धुजनों से बड़प्पन माना किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वादविवाद में उत्तर देने वाला अर्थात् वक्ता ही वह बड़ा है, इससे ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्यावान् होना चाहिये जिससे कि संसार में बड़प्पन प्रतिष्ठा पावें और दूसरों को उत्तर देने में अति निपुण हों ॥ ११ ॥ उस कारण से वृद्ध नहीं होता कि जिससे इसका शिर भूल जाय, केश पक जावें किन्तु जो जवान भी पढ़ा हुआ विद्वान् है उसको विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है इससे ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥ १२ ॥ जैसे काठ का पुतला हाथी वा जैसे चमड़े का बनाया हुआ मृग हो वैसे बिना पढ़ा हुआ विप्र

---

* अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥
अवैरता, सत्य बोलना, चोरीत्याग, वीर्यरक्षण और विषयभोग में घृणा ये ५ यम हैं ॥

† शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥
शौच, सन्तोष, तप (हानि लाभ आदि द्वन्द्व का सहना), स्वाध्याय (वेद का पढ़ना), ईश्वरप्रणिधान (सकल ईश्वरार्पण) ये पांच नियम कहाते हैं।

अर्थात् ब्राह्मण को बुद्धिमान् जन होना है उक्त ने हाथी मृग और विप्र तीनों नाममात्र धारण करते हैं अतः कारण-ब्रह्मचर्याश्रम संपन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये ॥१३॥ ब्राह्मण विष के समान उत्तम मान [illegible] रहते और अमृत के समान अपमान की आकांक्षा सर्वदा करे अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमों [illegible] भिक्षामात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे ॥ १४ ॥ द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादिकों में उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्या करता हुआ वेद ही का अभ्यास करे जिस ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन को वेदाभ्यास करना इस संसार में परमतप कहा है इस से ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर अवश्य वेदविद्याध्ययन करे ॥ १५ ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है वह जीवता ही अपने वंश के सहित शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है इस से ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर वेदविद्या अवश्य पढ़े ॥ १६ ॥ जैसे फावड़ा से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है वैसे गुरु की सेवा करने वाला पुरुष गुरुजनों ने जो पाई हुई विद्या है उस को प्राप्त होता है, इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर गुरुजन की सेवा कर उनसे सुने और वेद पढ़े ॥ १७ ॥ उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ पुरुष अपने से न्यून से भी विद्या पावे तो ग्रहण करे । नीच जाति से भी उत्तम धर्म का ग्रहण करे और निन्द्य कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्रीजन का ग्रहण करे, यह नीति है, इस से गृहस्थाश्रम से पूर्व २ ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े, उत्तम धर्म सीखे और ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करे क्योंकि ॥ १८ ॥ विष से भी अमृत ग्रहण करना, बालक से भी उत्तम वचन को लेना और नाना प्रकार के शिल्प काम सब से अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें । इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर देश २ पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे ॥ १९ ॥

यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि । नो इतराणि । येके चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयाऽसने प्रश्वसितव्यम् ॥ तैत्तिरीयारण्य० प्रपा० ७ । अनु० ११ ॥ येके च अस्मत् श्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः

ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपश्शमस्तपो दानं
तपो यज्ञस्तपो ब्रह्मभूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ॥२॥ तैत्तिरीयारण्य० प्रपा० १० । अनु० ५ ॥

अर्थः—हे शिष्य ! जो अनिन्दित पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण रहित न्यायधर्माचरण सहित कर्म हैं उन्हीं का सेवन तू किया करना, इस से विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना । हे शिष्य ! जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्मयुक्त उत्तम कर्म हैं उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हों उन का आचरण कभी मत कर । हे ब्रह्मचारिन् ! जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मवित् विद्वान् हैं उन्हीं के समीप बैठना संग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर ॥ १ ॥ हे शिष्य ! यथार्थ का ग्रहण, सत्य मानना सत्य बोलना, वेदादि सत्य शास्त्रों का सुनना अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना, श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, क्रोधादि के त्याग से शांत रहना, विद्या आदि शुभ गुणों का दान करना, अग्निहोत्रादि और विद्वानों का सङ्ग करना, जितने [illegible]

ऋतश्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यश्च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्या० । दमश्च स्वाध्या० । शमश्च स्वाध्या० । अग्नयश्च स्वाध्या० । अग्निहोत्रं च स्वाध्या० । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाकोमौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ ३ ॥ तैत्तिरी० प्रपा० ७ । अनु० ६ ॥

अथ—हे ब्रह्मचारिन् ! तू सत्य धारण कर, पढ़ और पढ़ाया कर । सत्योपदेश करना कभी मत छोड़, सदा सत्य बोल, पढ़ और पढ़ाया कर । हर्ष शोकादि छोड़, प्राणायाम योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर । अपनी इंद्रियों को बुरे कामों से हटा, अच्छे कामों में चला, विद्या का ग्रहण कर और कराया कर । अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा, न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और कराया कर तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर । अग्निविद्या के सेवनपूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर । अग्निहोत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर, सत्यवादी होना तप है, यह सत्यवचा, राथीतर आचार्य न्यायाचरण में कष्ट सहना तप तपोनित्य, पौरुशिष्टि आचार्य और धर्ममें चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है। यह नाकमौद्गल्य आचार्य का मत है और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप [यही पूर्वोक्त तप] है ऐसा तू जान ॥ ३ ॥ इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक का पिता करे ।

तत्पश्चात घर को छोड़ गुरुकुल में जावें । यदि पुत्र हो तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेजें । यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को भी पाणिनिमुनिकृत वर्णोच्चारण शिक्षा १ (एक) महीने के भीतर पढ़ा देवें । पुनः पाणिनी मुनि कृत अष्टाध्यायी का पाठ पदच्छेद अर्थ सहित ८ (आठ) महीने में अथवा १ (एक) वर्ष में पढ़ा देवे, धातु पाठ और दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी पुनः पाणिनिमुनिकृत लिङ्गानुशासन और उणादि, गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थ एवुल् और तृच् प्रत्ययान्त सुबंत रूप ६ (छः) महीने के भीतर सधवा देवें । पुनः दूसरी बार अष्टाध्यायी पदार्थोक्ति, समास, शङ्का समाधान, उत्सर्ग, अपवाद*अन्वयपूर्वक पढ़वे और संस्कृतभाषण का भी अभ्यास कराते जायें, ८ महीने के भीतर इतना पढ़ना पढ़ाना चाहिये ।

तत्पश्चात पतञ्जलि मुनि कृत महाभाष्य, वर्णोच्चारण शिक्षा, अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादि-गण, लिङ्गानुशासन, इन ६ (छः) ग्रंथों की व्याख्या यथावत लिखी है, डेढ़ वर्ष में अर्थात १८ (अठारह) महीने में इस को पढ़ना पढ़ाना । इस प्रकार शिक्षा और व्याकरण शास्त्र को ३ (तीन) वर्ष ५ (पांच) महीने वा नौ महीने अथवा ४ (चार) वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृतविद्या के मर्मस्थलों को समझने के योग्य

* जिस सूत्र का अधिक विषय हो वह उत्सर्ग और जो किसी सूत्र के बड़े विषय में से थोड़े विषय में प्रवृत्त हो वह अपवाद कहाता है ।

होवे। तत्पश्चात् यास्कमुनिकृत निघंटु, निरुक्त तथा कात्यायनादि मुनिकृत शब्द १ (एक) वर्ष के भीतर पढ़ के, अन्ययार्थ, आप्त मुनि कृत वाच्यवाचक सम्बन्ध रूप * यौगिक योगरूढि और रूढि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत जानें। तत्पश्चात पिङ्गलाचार्यकृत पिङ्गल सूत्र छन्दोभाष्य सहित ३ (तीन) महीने में पढ़ और ३ (तीन) महीने में श्लोकादिरचनविद्या को सीखे। पुनः यास्कमुनिकृत काव्यालंकारसूत्र वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्यार्थ, अन्वयसहित पढ़ के इसी के साथ मनुस्मृति, विदुरनीति और किसी प्रकरण में के १० सर्ग वाल्मीकीय रामायण के ये सब १ (एक) वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें। तथा १ (एक) वर्ष में सूर्यसिद्धांतादि में से कोई १ (एक) सिद्धांत से गणितविद्या जिस में बीजगणित, रेखागणित और पाटीगणित जिस को अङ्कगणित भी कहते हैं पढ़ें और पढ़ावें। निघण्टु से ले के ज्योतिष् पर्यन्त वेदांगों को चार वर्ष के भीतर पढ़ें। पत्पश्चात जैमिनिमुनिकृत सूत्र पूर्वमीमांसा को व्यासमुनिकृत व्याख्यासहित, कणादमुनिकृत वैशेषिक सूत्ररूप शास्त्र को गोतम मुनिकृत प्रशस्तपादभाष्यसंहित, वात्स्यायनमुनिकृत भाष्यसहित पतंजलिमुनिकृत योगसूत्र योगशास्त्र, भागुरिमुनिकृत भाष्ययुक्त कपिलाचार्यकृत सूत्रस्वरूप सांख्यशास्त्र जैमिनि वा बौद्धायन आदि मुनिकृत व्याख्यासहित व्यासमुनिकृत शारीरिकसूत्र तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छांदोग्य और बृहदारण्यक १० (दश) उपनिषद् [व्यासादिमुनिकृत व्याख्यासहित वेदांतशास्त्र] इन ६ (छः) शास्त्रों को २ (दो) वर्ष के भीतर पढ़ लेवें। पत्पश्चात् बहवृच, ऐतरेय, ऋग्वेद का ब्राह्मण, आश्वलायनकृत श्रौत तथा गृह्यसूत्र† और कल्पसूत्र पदक्रम और व्याकरणादि के सहाय से छन्दः, स्वर, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ सहित ऋग्वेद का पठन ३ वर्ष के भीतर करै, इसी प्रकार यजुर्वेद को शतपथब्राह्मण और पदादि के सहित २ (दो) वर्ष तथा सामब्राह्मण और पदादि तथा गानसहित सामवेद को २ (दो) वर्ष, तथा गोपथब्राह्मण और पदादि के सहित अथर्ववेद २ (दो) वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें। सब मिल के ९ (नौ) वर्षों के भीतर ४ (चारों) वेदों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। पुनः ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद जिसको वैद्यकशास्त्र कहते हैं, जिस में धन्वन्तरिजीकृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि ऋषिकृत चरक आदि आर्षग्रंथ हैं, इनको ३ (तीन) वर्ष के भीतर पढ़ें। जैसे सुश्रुत में शस्त्र लिखे हैं बनाकर शरीर के सब अवयवों को चीर के देखें, तथा जो उस में शारीरिकादि विद्या लिखी है साक्षात् करें।

तत्पश्चात् यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिसको शस्त्रास्त्र विद्या कहते हैं जिस में अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं, जो इस समय बहुधा नहीं मिलते ३ (तीन) वर्ष में पढ़ें और पढ़ावें। पुनः सामवेद का उपवेद गांधर्ववेद, जिसमें नारदसंहितादि ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ के स्वर, राग, रागिणी, समय, वाद्यित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना आदि का अभ्यास यथावत् ३ (तीन) वर्ष के भीतर करें।

* यौगिक जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे जैसे—पाचक याजकादि। योगरूढि, जैसे—पङ्कजादि शब्द, जैसे—पङ्क, पंज इत्यादि।

† जो ब्राह्मण वा सूत्र वेदविरुद्ध हिंसापरक हों उसका प्रमाण न करना।

तदनन्तर अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिसको शिल्पशास्त्र कहते हैं, जिस में विश्वकर्मा आदि ऋषिमुनिकृत संहिता ग्रंथ हैं, उनको ६ (छः) वर्ष के भीतर पढ़ के विमान, तार, भूगर्भादि विद्याओं को साक्षात् करें। ये शिक्षा से ले के आयुर्वेद तक १४ (चौदह) विद्याओं को ३१ (इकत्तीस) वर्षों में पढ़ के महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें।

इति वेदारम्भसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

वेदारम्भ का महत्व—

अग्ने सुश्रवसः—इस मन्त्र में अनेक उपदेश हैं प्रथम उपदेश यह है कि जैसे प्रभु की स्तुति सब करते हैं वैसे ही मैं ऐसे कर्म करूं जिस से मेरा यश बढ़े। सत्य यश वही है जो मनुष्य सुन्दर कर्म करे ऐसा यश मनुष्य को शतशः पापों से बचाता है। दूसरा उपदेश यह है कि जैसे परमात्मा सब प्रकृति के पदार्थ वा ज्ञाननिधि का रक्षक है वैसे मैं भी ज्ञाननिधि का रक्षक बनूं। यदि सब यह प्रतिज्ञा करके उस पर आचरण करें तब सारा देश वा समाज साक्षर तथा अनेक पदार्थों से सम्पन्न हो सकता है।

अग्नये समिधं—इस मन्त्र में बालक यह प्रतिज्ञा करता है कि जैसे यह अग्नि सिमिधा से प्रचंड हो कर अनेक दोषों को नष्ट करता करता हुआ प्रकाश वा उष्णता से संसार का महोपकार करता है वैसे ही मैं भी विद्यारूपी ईन्धन वा सदाचार से प्रदीप्त हो कर जहां अपना कल्याण करूंगा वहां संसार का भी कल्याण करूंगा तथा मैं मेधा प्रजा पशु ब्रह्म वर्चः धारण करता हुवा अनादरणीय तपस्वी तेजस्वी तथा भली प्रकार श्रेष्ठ अन्न के भक्षण करने वाला बनूंगा इन्हीं गुणों से मनुष्य संसार में प्रदीप्त होता है।

विदुर ने लिखा है—

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयंति प्रज्ञा च कौल्यं च तथा श्रुतं च।
पराक्रमश्चा बहुभाषिताः च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

मनुष्य सुन्दर कुल मेध श्रुत पराक्रम सत्य वा मित भाषण दान कृतज्ञता इन गुणों से संसार में प्रकाशित होता है।

तनूपा इस मन्त्र में भगवान् से आयु ज्ञान आदि गुणों की याचना की है तथा यह लिखा है कि हे प्रभु जो कुछ मुझ में न्यूनता है वह आप अपनी कृपा से पूर्ण कर दीजिये। इस मनुष्य की निरभिमानता नम्रता प्रभु परायणता तथा जिज्ञासा वृति प्रकट होती है। इन्हीं भावों से प्रेरित हो कर मनुष्य संसार में ख्याति कर सकता है अहंकार से नहीं।

वाक् म आप्यायतां—इत्यादि मन्त्रों में यह उपदेश है कि प्रभु की कृपा से मेरी सब इन्द्रियां बलवान् बनें। शतशः मन्त्र वेदों में इन्द्रियों को पुष्ट करने के आते हैं कोई भी मन्त्र इन को नष्ट करने का नहीं आता। कारण यह है कि इनकी पुष्टि के बिना हम संसार में कोई भी पुण्य का कार्य नहीं कर सकते इस से सूरदास आदि का नेत्रों को निकालना अवैदिक कार्य जंचता है। जब वेद में आत्म हत्या को पाप लिखा है तब इन्द्रिय

इच्छा पाप क्यों नहीं ? आज कल भी अनेक लोग अपनी इन्द्रियों का छेदन कर देते हैं कई सुखा देते हैं।

इयं दुरुक्त—इस मन्त्र में मेखला को इन बातों का चिह्न बतलाया है अर्थात् मेखला इन कर्तव्यों का बोधक है—दुर्वचन नहीं बोलना, अपने शरीर के वर्णादि का कभी भी दुरुपयोग नहीं करना, प्राणायाम के द्वारा मैं अनेक प्रकार के बलों की वृद्धि करूंगा। आज भी चिह्न सैंकड़ों कर्तव्यों के बोधक वा परिचायक हैं। विमान वाहकों के चिह्न भिन्न हैं, जलीय यान वाहकों के भिन्न हैं, पोलिस के पृथक् हैं। ऐसे ही मेखला इन कार्यों का परिचायक वा चिह्न है।

योमे दंड—इस वाक्य में दंड को आकाश वा भूमि में रक्षक बतलाया है। तथा इस से ज्ञान वा आयु वृद्धि होती है यह सत्य है जिस जाति में दंड देने की शक्ति नहीं होती उस के जीवन को बलवान् शठ लोग नष्ट करते हैं। जिन जातियों में दंड देने की शक्ति होती है वे ही संसार में अपने आपको सुरक्षित रख सकती हैं।

इत्यादि वेदारंभ के अनेक प्रयोजन हैं। महर्षि ने विस्तार से लिखे हैं।

अथ समावर्त्तन संस्कारविधिं वक्ष्यामः ॥

समावर्त्तनसंस्कार उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य्यव्रत, साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या, उत्तमशिक्षा और पदार्थविज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त होके विवाहविधानपूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय छोड़ के घर की ओर आना। इसमें प्रमाण:—

वेदसमाप्तिं वाचयीत* । कल्याणैः सह सम्प्रयोगः† । स्नातकायोपस्थिताय । राज्ञे च । आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च दधनि मध्वानीय । सर्पिर्वा मध्वलाभे । विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्कः ‡ ॥ यह आश्वलायनगृह्यसूत्र। तथा परस्करगृह्यसूत्रः—

वेदꣳ समाप्य स्नायाद् । ब्रह्मचर्यं वाष्टचत्वारिꣳशकम् * । त्रय एव स्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति ? ॥

जब वेदों की समाप्ति हो तब समावर्त्तनसंस्कार करे। सदा पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में साथ रक्खे। राजा आचार्य श्वशुर चाचा और मामा आदि का अपूर्वागमन जब हो और स्नातक अर्थात् जब विद्या और ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घर को आवे तब प्रथम (पाद्यम्) पग धोने का जल (अर्घ्यम्) मुखप्रक्षालन के लिये जल और आचमन के लिये जल देके शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा सहत न मिले तो घी मिला के एक अच्छे पात्र में धर इनको मधुपर्क देना होता है और विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा

---

* अ० १। कण्डि० २२। सू० १६॥ † अ० १। कण्डि० २३। सू० २०॥

‡ अ० १। कण्ड० २४। सू० २–७॥ * कां० ३। कण्डि० ६। सू० १, २॥

? कां० ३। कण्डी० ५। सू० १२॥

विद्यास्नातक के तीन * प्रकार के स्नातक होते हैं इस कारण वेद की समाप्ति और ४८ (अड़तालीस) वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रतस्नान करे ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो भव्रः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व० कां० ११ । प्रपा० २४ । व० १६ । मं० २६ ॥

अर्थः—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप को करता हुआ वेदपठन वीर्य्यनिग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर पश्चात् पृ० १०३—१०४ में लिखे अनुसार स्नानविधि करके पूर्ण विद्याओं को धरता सुन्दर वर्णयुक्त होके पृथिवी में अनेक शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है वही धन्यवाद के योग्य है ॥

इसका समय—वेदारम्भ में लिखे प्रमाणे जानना । परन्तु जब विद्या, हस्तक्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा होवे तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के स्थान दो हैं एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने आगे विवाह में लिखे प्रमाणे सब विधि करे। इस संस्कार की विधि पूरी करके पश्चात् विवाह करे।

विधिः—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे उस दिन आचार्य के घर में पृ० १५—१६ में लिखे यज्ञकुण्ड आदि बना के सब शाकल्य और सामग्री संस्कार दिन से पूर्व दिन में जोड़ रक्खे और स्थालीपाक† बना के तथा घृतादि और पात्रादि यज्ञशाला में वेदी के समीप रक्खे पुनः पृ० १८ में लिखे० यथावत् ४ (चारों) दिशाओं में आसन बिछा बैठ पृ० ५ (पांच) से पृ० १४ तक में ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण करें और जितने वहां पुरुष आये हों वे भी एकाग्रचित्त होके ईश्वर के ध्यान में मग्न होवें तत्पश्चात् पृ० २० में अग्न्याधान समिदाधान करके पृ० २१ में वेदी के चारों ओर उदकसेचन करके आसन पर पूर्वाभिमुख आचार्य बैठ के पृ० २२ में आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृ० २३ में व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृ० २४—२५ में अष्टाज्याहुति ८ (आठ) और पृ० २३ में स्विष्टकृत् आहुति १ (एक) और प्राजापत्याहुति १ (एक) ये सब मिलके (अठारह) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् ब्रह्मचारी (ओं अग्ने सुश्रवा० इस मन्त्र से कुण्ड का अग्निकुण्ड के मध्य में इकट्ठा करे तत्पश्चात (ओं अग्नये समिध०) इस मन्त्र से कुण्ड में ३ (तीन) सविधा होम कर (ओं० तनूपा०) इत्यादि ७ (साह) मन्त्रों से दाहिण हस्ताञ्जलि आगी पर थोड़ी सी तपा उस जल से मुखस्पर्श और तत्पश्चात पृ० १६ में० (ओं वाङ्म०) इत्यादि मन्त्रों से उक्त प्रमाणे अङ्गस्पर्श कर पुनः सुगन्धादि औषधयुक्त जल से भरे हुए ८ (आठ) घड़े वेदी के उत्तर भाग में जो पूर्व से रक्खे हुए यों उनमें सेः—

---

* जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य व्रत को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्यास्नातक, जो ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त करके स्नान करता है वह व्रतस्नातक और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है वह विद्याव्रतस्नातक कहाता है ॥

† जो कि पूर्व पृ० १७ में लिखे प्रमाणे भात आदि बनाकर रक्खा—

समावर्तन संस्कार विधिः—

(१) ईश्वरोपासना स्वस्तिवाचन शांति पाठ।
(२) अग्न्याधान समिधाधान जल सेचन।
(३) आघारावाज्याहुति चार व्याहृति आहुति चार।
(४) अष्टाज्याहुति स्विष्टकृताहुति प्राजापत्याहुति।
(५) सुश्रवसः इस से अग्नि चयन।
(६) अग्नये समिधं से ३ समिधा डालना।
(७) अग्ने तनूपा से मुख स्पर्श।

जल के आठ घट

ओं ये अप्स्वंतरग्नयः प्रविष्ट गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहातान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि॥ पार० कां० २ कं० ।। ६ ।।

अर्थ—जो जलों में दुःख दायक अग्नि है। छिपाने वाला, तपाने वाला तथा मानसिक दुःखदायक अजीर्ण करने वाला विविध पीड़ा पहुंचाने वाला शरीरों को दूषित करने वाला इन्द्रियों को नष्ट करने वाले इन आठ प्रकार के अग्नियों को छोड़ कर सुखदायक अग्नि है उस को ग्रहण करता हूं।

आठ स्नान का मन्त्र

ओं तने मा सिंचामिश्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्म वर्चसाय॥

अर्थ—शोभा यश ब्रह्म तथा ब्रह्मचर्य के लिए स्नान करता हूं।

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् उपरि कथित (येअप्स्वंतर) इस मन्त्र को बोल के दूसरे घट को ले उस में से लोटे में जल ले के—

दूसरी बार स्नान का मन्त्र

ओं येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता सुराम्।
येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः। पार० कां० २। कं० ६। सू० १२॥

अर्थ—हे वैद्यों वा अध्यापक उपदेशकों, जिस से तुम ने शोभा को बढ़ाया है, जिस से विद्वानों को सुख दिया है, जिस ने नेत्रों को ज्योति को बढ़ाया है, वह यश मुझ को प्राप्त हो।

इस मन्त्र को बोल के स्नान करना तत्पश्चात् पूर्ववत् ऊपर के (ओं ये अप्स्वन्तर) इसी मन्त्र का पाठ बोल के वेदों के उत्तर में रखे घड़ों में से तीन घड़ों को ले के उपनयन प्रकरणोक्त

तीसरी बार स्नान करने के मंत्र—

ओं आपो हिष्ठा मयो भुवः, ओं तस्मा अरङ्ग मामवः, ओं यो वः शिवतमोरसः आदि।

इन तीन मन्त्रों को बोल के उन घड़ों के जल से स्नान करना। तत्पश्चात् आठ घड़ों में से रहे हुए

तीन घड़ों को ले कर आपोहिष्ठा इन्हीं तीन मन्त्रों को मन में बोल के स्नान करे।

मेखला वा दंड छोड़ने का मंत्र—

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ ऋ० मं० १। सू० २४॥

अथ प्रथम कर दिया है।

इस मन्त्र को बोल ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दंड छोड़े। तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सम्मुख खड़ा रह कर

उपस्थान के मन्त्र—

ओं उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रियो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्याविभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थाद्दिवायाविभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं माकुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायंयाविभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मां कुर्वाविदन् मा गमय॥ पार० कां० २। कं० ६॥

अर्थ—हे प्रभु आप अनेक प्रकार से प्रकाशित हो रहे हो, प्रकाश स्वरूप वा आनन्द स्वरूप हो, अनेक प्राकृतिक पदार्थों के अधिष्ठाता हो, अनेक भक्त आपका स्मरण करते हैं, आप दसों दिशाओं में सेवनीय हैं मुझे पूज्यता प्रदान कीजिए, मुझे अपने दर्शन दीजिए।

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान स्तुति करके तत्पश्चात् दही वा तिल प्राशन करके जटा लोम और नख वपन अर्थात् छेदन कराके

दन्तधावन का मन्त्र—

ओं अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजाऽपमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च॥ पार० कां० २। कं० ६। १०॥

अर्थ—दान्तों को शुद्ध करो, यह सुन्दर जल है, इससे मुख शुद्ध होता है तथा यश और ऐश्वर्य मिलता है।

इस मन्त्र को बोलके ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे। तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य शरीर पर मलकर शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र अर्थात् धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्धित युक्त चन्दनादि का अनुलेपन करे, तत्पश्चात् चक्षु मुख नासिका के छिद्रों का—

प्राणादि स्पर्श का मन्त्र—

ओं प्राणापानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोत्रं मे तर्पय॥ पा० कां० २। ४। ६॥

अर्थ—मेरे प्राण अपान, चक्षु और कानों को पुष्ट करो।

इस मन्त्र से स्पर्श करके हाथ में जल ले अपसव्य और दक्षिण मुख होके—

ओं पितरः शुन्धध्वम् ॥ पा० कां० २ । ६ । १६ ॥

अर्थ—हे पितरो जैसे जल संसार की शान्ति देता है वे हम को शान्ति प्रदान कीजिए।

इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़ के सव्य होकर—

जप का मन्त्र—

ओं सुचक्षा अहमक्षीभ्यांभूयासꣳ सुवर्चा मुखेन।

सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम् ॥ पा० २। कां० २ । कं० ६ ।

अर्थ—आंखों से सुन्दर देखूं, मुख से सुन्दर बोलूं, कानों से सुन्दर सुनूं।

इस मन्त्र का जप करके—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।

शतं च जीवामि शरदः पुरुची रायस्पोषमभि संव्ययिष्ये ॥ पा० कां० २ । ६ । २० ॥

अर्थ—यश वा दीर्घ जीवन के लिए मैं इन कपड़ों को पहनता हूं। मैं अनेक प्रकार के धनों की पुष्टि करूंगा।

इस मन्त्र से सुन्दर अति श्रेष्ठ वस्त्र धारण करे।

उपवस्त्र धारण का मन्त्र—

ओं यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती।

यशोभगश्च माविन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ पार० कां० २ । ६ ॥ २१

अर्थ—द्यु लोक और पृथ्वी लोक के द्वारा मैं यशस्वी बनूं। बिजली और भगवान् मुझे यश से युक्त करें।

इस मन्त्र से उत्तम उपवस्त्र धारण करके—

पुष्पमाला धारण करने का मन्त्र—

ओं या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय।

ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च ॥ पार० कां० २ । ६ । २३ ॥

अर्थ—जिस पुष्पमाला को दीर्घ दृष्टि ऋषि या विद्वान्, श्रद्धा के लिए इन्द्रियों की पुष्टि के लिए पहनते हैं मैं वैसी ही पुष्पमालाओं को यश और ऐश्वर्य के लिए पहनता हूं।

इस मन्त्र से सुगन्धित पुष्पों की माला लेके—

ओं यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु।

तेन त्वं ग्रथितः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ॥ पार० कां० २ । ६ ॥ २४

अर्थ—भगवान् ने बहुत बड़ा यश क्रिया पुरुषों में उत्पन्न किया है, उसी मनस्वियों के यश को अपने में धारण करता हूं।

इस मन्त्र से धारण करनी या शिरो वेष्टन अर्थात् पगड़ी दुपट्टा और टोपी आदि अथवा मुकुट हाथ में लेके

पगड़ी आदि धारण करने का मन्त्र—

ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् इत्यादि

इस मन्त्र से धारण करे इसके पश्चात् अलङ्कार लेके

अलंकार धारण करने का मंत्र—

ओं अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात् ॥ पा० २। ६ ॥

अर्थ—हे प्रभु ! आप अलंकृत सर्वोत्तम हैं, मुझ को सर्वोत्तम बनाइये।

इस मन्त्र से धारण करे और—

अंजन का मंत्र—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽसि चक्षुर्मेदेहि ॥ य० ४। ३।

अर्थ—हे प्रभु ! आप मेघों को उत्पन्न करने वाले हैं जो नेत्र के लिए हितकर हैं, मुझे चक्षु प्रदान कीजिए।

इस मन्त्र से आंख में अंजन करना। तत्पश्चात्—

ओं रोचिष्णुरसि । पा० २। ६। हे प्रभु, तुम प्रकाशक हो, मुझे प्रकाश दो।

इस मन्त्र से दर्पण में मुख का अवलोकन करे। तत्पश्चात्—

छत्र धारण का मन्त्र—

ओं बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो मामन्तर्धेहि ॥ पा० २।६।२६॥

अर्थ—हे परमेश ! आप बड़ों के आश्रय वा दुख नाशक हैं मुझे पाप से पृथक् कीजिए किन्तु तेज वा यश से पृथक् न कीजिए।

इस मन्त्र से छत्रधारण करे। पुनः—

जूता धारण का मन्त्र—

ओं प्रतिष्ठे स्थोविश्वतो मापातम् ॥ पा० २। ६।

अर्थ—यह दृढ़ जूता मेरे पांव की कांटे आदि से रक्षा करता है अतः मैं इसे धारण करता हूं।

इस मन्त्र से जूता जोड़ा धारण करे, तत्पश्चात्—

इस मन्त्र पढ़के यह मन्त्र—

ओं त्रिभ्यो मानाष्ट्रभ्यस्परि पाहि सर्वतः ॥ पा० । २ । ६ । ३१

अर्थ—यह दण्ड मुझे दुष्टों से बचाता है।

इस मन्त्र से बांस आदि की एक सुन्दर लकड़ी हाथ में धारण करनी, तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्यकुल से अपना पुत्र घर को आवे उसको बड़े मान प्रतिष्ठा उत्सव उत्साह से अपने घर पर ले आवें, घर पर लाके उनके पिता माता सम्बन्धी बन्धु आदि ब्रह्मचारी का सत्कार पृष्ठ १०३ में लिखे प्र० करें पुनः संस्कार में आये हुए आचार्य आदि को उत्तम अन्नापानादि से सत्कारपूर्वक भोजन कराके और वह ब्रह्मचारी और उसके माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा पूर्वोक्त प्रकार मधुपर्क करे सुन्दर पुष्पमाला वस्त्र गोदान धन आदि की दक्षिणा यथाशक्ति देके सब के सामने आचार्य के जो कि उत्तम गुण हों उनकी प्रशंसा कर और विद्यादान की कृतज्ञता सब को सुनावे। सुनो भद्रजनो ! इन महाशय आचार्य ने मेरे पर बड़ा उपकार किया है जिसने मुझको पशुता से छुड़ा उत्तम विद्वान् बनाया है, उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता, इसके बदले में अपने आचार्य को अनेक धन्यवाद दे नमस्कार कर प्रार्थना करता हूं कि जैसे आपने मुझ को उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृतकृत्य करेंगे और (जैसे आपने मुझको) विद्या देके आनन्दित किया है वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को कृतकृत्य और आनन्दित करता रहूंगा और आप के किये उपकार को कभी न भूलूंगा। सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर आप मुझ और सब पढ़ने पढ़ानेहारे तथा सब संसार पर अपनी कृपादृष्टि से सब को सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल युक्त और परोपकारादि शुभ कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ पुरुषार्थी उत्साही करे कि जिससे इस परमात्मा की सृष्टि में उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभावों को करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर कराके सदा आनन्द में रहें ॥

समावर्तनसंस्कारविधिः समाप्तः

समावर्तन का महत्व—

(१) जब स्नातक गृहस्थ में प्रवेश करता है तब समावर्तन संस्कार में उसकी याचना होती है कि यह गृहस्थ योग्य है या नहीं यदि अयोग्य व्यक्ति गृहस्थ प्रविष्ट हो गया तब वह जहां अपनी हानि करेगा, वहां देश तथा समाज को भी अवश्य हानि होगी। अतः परीक्षार्थ उसकी आठ दूषित अग्नियों की परीक्षा की जाती है।

(१) अथर्व० में लिखा है—

ईर्ष्याग्नेः प्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापरां।
अग्निं हृदय शोकं ते निर्वापयामसि ॥

तेरे हृदय में ईर्ष्यारूपी अग्नि की ज्वालाएं जल रही हैं। तथा बढ़ती ही जाती हैं। उनको तथा तेरे हृदय की शोकदायक अग्नियों को मैं दूर करता हूँ। इस मन्त्र में ईर्ष्याग्नि शोकाग्नि आदि अनेक

अग्नियों का वर्णन आता है। एवं यहां आठ दूषित अग्नियां बतलाई हैं—(१) गुरु अग्नि (२) अगुरु मंदाग्नि (३) मयूष प्रचंडाग्नि (४) मन संतापकाग्नि (५) अस्खल अजीर्णकारकाग्नि (६) विदाह विविध पीड़ादायकाग्नि (७) ननूदुषु—शरीर को दूषित करने वाला अग्नि (८) इन्द्रियहा इन्द्रियों को नष्ट करने वाला अग्नि। ये आठ प्रकार के अग्नि हैं जिनसे दूषित होकर मनुष्य किसी कार्य का नहीं रहता। इन दूषित अग्नियों से शरीर अनेक रोगों से दूषित हो जाता है। शोकादि अग्नि से मन दूषित हो जाता है इन्द्रियहा अग्नि से इन्द्रियें नष्ट हो जाती हैं। इस लिए आचार्य लोग उसकी परीक्षा करते थे। यदि वह इन अग्नियों से दूषित हो तब उसको गृहस्थ में आने की आज्ञा नहीं देते थे परिणाम यह था कि—सारी आर्य जाति शारीरिक आत्मिक तथा सामाजिक रूप से बलवती रहती थी।

(२) स्नातक आठ पानी के घड़ों से आठ बार स्नान करता है। इसका भी यही उद्देश्य है कि उन आठ प्रकार की अग्नियों को शांत कर दिया जावे ताकि किसी प्रकार उपद्रव न हो सके इसी बात का सूचक आठ घड़े तथा उनसे स्नान है।

(३) येनश्रियं में इस बात का वर्णन है कि यश दो प्रकार का होता है, एक दूषित जो दुष्ट साधनों से प्राप्त किया जाता है। दूसरा निर्मल यश—जो उत्तम साधनों द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्नातक कहता है जिससे समाज देश वा मेरी शोभा वा सम्पत्ति बढ़े तथा विद्वानों का आदर हो और मेरी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण न होवे। मैं उस यश का संसार में जाकर उपार्जन करूंगा। सत्य है आज जितने उपद्रव राष्ट्र व समाज में हैं वे केवल दूषित साधनों से उपार्जित यश के कारण से हैं।

(४) अन्नाद्याय—इस मन्त्र में यह बतलाया है कि पाचन शक्ति को ठीक रखने के लिए दांतन करनी चाहिए। यदि मुख शुद्ध नहीं होगा तब अवश्य पाचन शक्ति नष्ट हो जावेगी। दूसरा प्रयोजन मुख शुद्धि तथा दांत के द्वारा शरीर के ठीक रहने से यश तथा ऐश्वर्य के उपभोग भी होंगे अतः दन्तधावन करना चाहिए।

५. विश्वाभ्यो :—इस मंत्र से दंड धारण का विधान है—मनु में लिखा है—

दंडः शास्ति प्रजा सर्वाः दंड एवाभिरक्षति दंड सुप्तेषु जागर्ति दंड धर्मं विदुर्बुधाः

दंड प्रजा का शासन करता है, दंड ही रक्षा करता है सोए हुए लोगों में दंड ही जागता है इस लिए राज द्वारा दुष्टों को दंड देना धर्म है इस लिए दंडादि का धारण करना है।

शंका—पितरः शुंधध्वं इस मंत्र में स्पष्ट पितरों को पानी देना लिखा है।

समाधान—जब सूर्य दक्षिणायन होता है तब उसकी शक्तिएं क्षीण हो जाती हैं। इसी प्रकार पितर भी वृद्धावस्था में क्षीणता की ओर जाते हैं। अतः दक्षिण दिशा पितरों की मानी जाती है इस लिए स्नातक दक्षिण की ओर मुख करता है। अमरकोष में लिखा है वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यंतु दक्षिणं वाम सव्य तथा दक्षिण अपसव्य है अतः दक्षिण को होना अपसव्य तथा उस से विपरीत सव्य होना है इस

से यदि पीछे कन्या विवाहित जाना जाय तब भी कोई हानि नहीं। ब्रह्मचारी अब आश्रम का परिवर्तन करने लगा है, इस लिए सब आप्तजन इस का सूत्रक है। जल का प्रयोजन यह है हे पितरों जैसे यह जल स्वच्छ तथा शांत है ऐसे आप लोगों ने मुझ को विद्यारूपी निर्मल जल में स्नान कराके स्वच्छ वा शांत किया है आगे भी आप मुझ पर ऐसी ही कृपा करते रहोगे।

शंका—इस संस्कार में जूते तथा दंड की पूजा लिखी है क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है?

समाधान—कदापि नहीं, यहां तो केवल यह लिखा है कि इन जूतियों से मेरे पाओं की रक्षा होती है। यह कह कर स्नातक पांवों में पहिन लेता है क्या मूर्तिएं भी पांवों में पहनी जाती हैं यदि नहीं तब जूते की। पूजा कैसी दंड भी रक्षा के लिए धारण किया जाता है न कि पूजा के लिए।

अथ विवाहसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

विवाह उसको कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण, स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीतियुक्त हो के निम्नलिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है। इसमें प्रमाणः—

उदगयन आपूर्य्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे * चौलकर्मोपनयनगोदानविवाहाः ॥ १ ॥

सार्वकालमेके विवाहम् ॥ २ ॥

यह आश्वलायन गृह्यसूत्र और—

आवसथ्याधानं दारकाले ॥ ३ ॥

इत्यादि पारस्कर और—

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत ॥ ४ ॥ लक्षणप्रशस्तान् कुशलेन ॥ ५ ॥

इत्यादि गोभिलीय गृह्यसूत्र और इसी प्रकार शौनकगृह्यसूत्र में भी है॥

अर्थः—उत्तरायण शुक्लपक्ष अच्छे दिन अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो उस दिन विवाह करना चाहिये॥ १॥ और कितने ही आचार्यों का ऐसा मत है कि सब काल में विवाह करना चाहिये॥ २॥ जिस अग्नि का स्थापन विवाह में होता है उस का आवसथ्य नाम है॥ ३॥ प्रसन्नता के दिन स्त्री का पाणिग्रहण, जो कि स्त्री सर्वथा शुभ गुणादि से उत्तम हो, करना चाहिये॥ ४। ५॥

इस का समयः—पृष्ठ ६७-६८ तक में जानना चाहिये वधू और वर की आयु, कुल, वास्तव्यस्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें, अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों। स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी और अधिक से अधिक दूनी होवे। परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिये। इस में प्रमाणः—

---

* यह नक्षत्रादि का विचार कल्पनायुक्त है इससे प्रमाण नहीं।

वेदान्वीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥१॥
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥२॥
असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥४॥
हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामय्याव्यपस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥५॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥६॥
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥७॥
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥८॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥९॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् । आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥१०॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलङ्कृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥११॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥१२॥
सह नौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च । कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥१३॥
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः । कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते ॥१४॥
इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥१५॥
हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥१६॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१७॥
ब्राह्म दिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥१८॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः । पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥१९॥
इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः । जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥२०॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा । निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥२१॥

अर्थ—ब्रह्मचर्य से ४ (चार), ३ (तीन), २ (दो) अथवा १ (एक) वेद को [illegible] अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम को धारण करे ॥१॥ यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षणयुक्त स्त्री

से विवाह करे ॥३॥ जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो, वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है ॥३॥ विवाह में नीचे लिखे हुए दश कुल, चाहें वे गाय आदि पशु धन और धान्य से कितने ही बड़े हों उन कुलों की कन्या के साथ विवाह न करे ॥४॥ वे दश कुल ये हैं :—१ एक जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो। २ दूसरा—जिस कुल में कोई भी उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा—जिस कुल में कोई विद्वान् न हो। ४ चौथा—जिस कुल में शरीर के ऊपर बड़े २ लोम हों। ५ पांचवां—जिस कुल में बवासीर हो। ६ छठा—जिस कुल में क्षयी (राजयक्ष्मा) रोग हो। ७ सातवां—जिस कुल में अग्निमान्द्य से निराशय रोग हो। ८ आठवां—जिस कुल में मृगी रोग हो। ९ नववां—जिस कुल में श्वेतकुष्ठ और १० दशवां—जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों। उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करे ॥५॥ पीले वर्णवाली, अधिक अंगवाली जैसी छंगुली आदि, रोगवती, जिस के शरीर पर सुख भी लोम नहीं और जिसके शरीर पर बड़े २ लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलने हारी और जिस के पीले बिल्ली के सदृश नेत्र हों ॥६॥ तथा जिस कन्या का (ऋक्ष) नक्षत्र पर नाम अर्थात् रेवती रोहिणी इत्यादि, (नदी) जिसका गंगा, यमुना इत्यादि, (पर्वत) जिसका विन्ध्याचला इत्यादि, (पक्षी) पक्षी पर अर्थात् कोकिला, हंसा इत्यादि, (अहि) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि, (प्रेष्य) दासी इत्यादि और जिस कन्या का (भीषण) कालिका, चण्डिका इत्यादि नाम हो उस से विवाह न करे ॥७॥ किन्तु जिस के सुन्दर अंग, उत्तम नाम, हंस और हस्तिनी के सदृश चालवाली, जिस के सूक्ष्म लोम सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दाँत हों जिस के सब अङ्ग कोमल हों उस स्त्री से विवाह करे ॥८॥ ब्राह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच ये विवाह आठ प्रकार के होते हैं ॥९॥ ब्राह्मण कन्या के योग्य सुशील विद्वान् पुरुष का सत्कार करके कन्या को वस्त्रादि से अलंकृत करके उत्तम पुरुष को बुला अर्थात् जिसको कन्या ने प्रसन्न भी किया हो उसको कन्या देना वह ब्राह्म विवाह कहाता है ॥१०॥ विस्तृत यज्ञ में बड़े २ विद्वानों का वरण कर उस में कर्म करनेवाले विद्वान् को वस्त्र आभूषण आदि से कन्या को सुशोभित करके देना वह दैव विवाह ॥११॥ ३ (तीसरा) १ (एक) गाय बैल का जोड़ा अथवा २ (दो) जोड़े* वर से लेके धर्मपूर्वक कन्यादान करना वह आर्ष विवाह ॥ १२ ॥ और ४ (चौथा) कन्या और वर को पाठशाला में विधि करके सब के सामने तुम दोनों मिल के गृहाश्रम के कर्मों को यथावत् करो ऐसा कह कर दोनों की प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण होना वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ये ४ (चार) विवाह उत्तम हैं ॥ १३ ॥ और ५ (पांचवाँ) वर की जातिवालों और कन्या को यथाशक्ति धन देके होम आदि विधि कर कन्या देना आसुर विवाह कहाता है। १४ ॥ ६ (छठा) वर और कन्या की इच्छा से दोनों का संयोग होना और अपने मन में मान लेना कि हम दोनों स्त्री पुरुष हैं यह काम से हुआ गान्धर्व विवाह कहाता है ॥ १५ ॥ और ७ (सातवां) हनन छेदन अर्थात् कन्या

* यह बात मिथ्या है क्योंकि आगे मनुस्मृति में निषेध किया है और युक्तिविरुद्ध भी है इसलिये कुछ भी लेके वर दोनों को प्रसन्नता से पाणिग्रहण होना आर्ष विवाह है।

के होने वालों का विदारण कर क्रोशती, रोती, कांपती और भयभीत हुई कन्या को [illegible] घर के विवाह करना यह राक्षस विवाह ॥ १६ ॥ और जो सोती, पागल हुई वा नशा खाकर उन्मत्त हुई कन्या को बुलाकर दूषित कर देना, यह सब विवाहों में नीच से नीच महानीच दुष्ट अति दुष्ट पैशाच विवाह है ॥ १७ ॥ ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापत्य इन ४ (चार) विवाहों में पाणिग्रहण किये हुए स्त्री पुरुषों को जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे वेदादिविद्या से तेजस्वी, आप्त पुरुषों के सम्मत, अत्युत्तम होते हैं ॥ १८ ॥ वे पुत्र वा कन्या सुन्दर रूप, बल, पराक्रम, शुद्धशुद्धयादि उत्तम गुणयुक्त, बहुधनयुक्त, पुण्यकीर्त्तिमान् और पूर्ण भोग के भोक्ता, अतिशय धर्मात्मा होकर १०० (सौ) वर्ष तक जीते हैं ॥ १९ ॥ इन चार विवाहों से जो बाकी रहे [४ (चार)] आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच, इन चार दुष्ट विवाहों से उत्पन्न हुए सन्तान निन्दित कर्मकर्त्ता, मिथ्यावादी, वेदधर्म के द्वेषी, बड़े नीच स्वभाव वाले होते हैं ॥ २० ॥ इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि जिन निन्दित विवाहों से नीच प्रजा होती है उनका त्याग और जिन उत्तम विवाहों से उत्तम प्रजा होती है उनका स्वीकार किया करें ॥ २१ ॥

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च । अप्राप्तमपि तां तस्मै कन्यां दद्यादिचक्षणः ॥१॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि । न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥२॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती । ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥३॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले, कन्या के सदृश रूपलावण्यादि गुणयुक्त, वर ही को चाहें । वह कन्या (वर) माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिससे दोनों अति प्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ १ ॥ चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से ३ (तीन) वर्ष को छोड़ के चौथे वर्ष में विवाह करे ॥ ३ ॥

(प्रश्न) "अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि श्लोकों की क्या गति होगी ? (उत्तर) इन श्लोकों और इनके मानने वालों की दुर्गति । अर्थात् जो इन श्लोकों की रीति से बाल्यावस्था में अपने सन्तानों का विवाह कर करा कर उनको नष्ट भ्रष्ट रोगी अल्पायु करते हैं वे अपने कुल का जानों सत्यानाश कर रहे हैं । इस लिये यदि शीघ्र विवाह करें तो वेद में लिखे हुए १६ (सोलह) वर्ष से न्यून कन्या और २५ (पचीस) वर्ष से न्यून पुरुष का विवाह कभी न करें करावें । इसके आगे जितना अधिक ब्रह्मचर्य रक्खेंगे उतना ही उनको आनन्द अधिक होगा ॥

(प्रश्न) विवाह निकटवासियों से अथवा दूरवासियों से करना चाहिये ? (उत्तर)

[illegible] ॥

[illegible] का [illegible] कि जितना दूर देश में विवाह होगा उतना ही उनको अधिक लाभ होगा (पूर्व) समीप के देश वा भाई बन्धुओं का परस्पर विवाह कर्म नहीं होता ? (उत्तर) एक दोष यह है कि समीप विवाह होने में प्रीति कभी नहीं होती क्योंकि जितनी प्रीति परोक्ष पदार्थ में होती है उतनी प्रत्यक्ष में नहीं। और बाल्यावस्था के कुछ दोष भी विदित रहते हैं। तथा भय भी अधिक नहीं रहते। दूसरा जब तक [illegible] दूसरे कुल के साथ सम्बन्ध नहीं होता तब तक शरीर आदि की पुष्टि भी पूर्ण नहीं होती। दूर सम्बन्ध होने से परस्पर प्रीति उन्नति ऐश्वर्य बढ़ता है निकट से नहीं। युवावस्था ही में विवाह होना चाहिये ॥

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमाना परियन्त्यापः। स शुक्रेभिः शिकभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ १ ॥ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्। कृता इवोप हि प्रसर्से अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ २ ॥ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्दृ हो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्। आसासु पूषु परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि ॥ ३ ॥

ऋ० मं० २। सू० ३५। मं० ४–६ ॥

[illegible] पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आसां अवस्थाद्य आ च घोषात्पुरू सहस्रा परिवर्त्तयाते ॥ ४ ॥ ऋ० मं० ५। सू० ३७। मं० ३ ॥

उप व एषे वन्द्यभिः शूषैः प्रयह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्पमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ५ ॥ ऋ० मं ५। सू० ४१। मं० ७ ॥

अर्थः—जो (मर्मृज्यमानाः) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त (युवतयः) २० (बीसवें) वर्ष से २४ (चौबीसवें) वर्ष वाली हैं वे कन्या लोग जैसे (आपः) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) हम को प्राप्त होने वाली अपने २ प्रसन्न अपने २ से ब्योढ़े वा दूने आयु वाले (तम्) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षणयुक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (सः) वह ब्रह्मचारी (शुक्रेभिः) शुद्ध गुण और (शिकभिः) वीर्यादि से युक्त हो के (अस्मे) हमारे मध्य में (रेवत्) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और (दीदाय) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे (अप्सु) अन्तरिक्ष वा समुद्र में (घृतनिर्णिक्) जल को शोधन करने हारा (अनिध्मः) आप प्रकाशित [illegible] वैसे ही इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें ॥ १ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! जैसे (तिस्रः) [illegible] निकृष्ट उत्तमयुक्त (देवीः नारीः) विदुषी नरों की विदुषी स्त्रियां (अस्मै) इस (अव्यथ्याय) [illegible] के लिये (देवाय) ब्रह्मादि उत्तम विद्वानों को (दिधिषन्ति) धारण

करती है (धेनुः इव) की हुई शिक्षायुक्त के समान (अप्सु) प्राप्त [illegible] पुरुष से स्त्री (उप, प्रसर्सृते) सम्बन्ध को प्राप्त होती है, [illegible] स्त्री आनन्द को प्राप्त होती है जैसे जलों में (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (पूर्वसूनाम्) आगे उत्पन्न हुई [illegible] का बालक (धयति) दुग्ध पी के बढ़ता है वैसे इन ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी स्त्री के सम्बन्ध [illegible] है ॥ २ ॥ जैसे राजादि सब लोग (पूर्षु) अपने नगरों और (आमासु) अपने घर में [illegible] कन्यारूप प्रजाओं में उत्तम शिक्षाधरों को (परः) उत्तम विद्वान् (अप्रमृष्यम्) शत्रुओं को सहने [illegible] ब्रह्मचर्य से प्राप्त हुए शरीरात्मबलयुक्त देह को (अरातयः) शत्रु लोग (न) नहीं (विनशन) [illegible] सकते और (अनृतानि) मिथ्याभाषणादि दुष्ट दुर्व्यसनों को प्राप्त (न) नहीं होते वैसे उत्तम [illegible] द्रुहः) द्रोह आदि दुर्गुण और (रिषः) हिंसा आदि पाप (न, सम्पृचः) सम्बन्ध नहीं [illegible] किन्तु [illegible] युवावस्था में विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक विधि से सन्तानोत्पत्ति करते हैं इनके (अप्सु) [illegible] (सदने) सुखरूप गृहाश्रम के मध्य में उत्तम बालकों का (जनिम) जन्म होता है इसलिये हे स्त्री व पुरुष ! तू (सूरीन्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कर (च) और ऐसे गृहस्थों को (अत्र) इस गृहाश्रम में सदैव (स्वः) सुख बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! (यः) जो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त पूर्ण जवान (इमम्) सब प्रकार की परीक्षा करके (महिषीम्) उत्तम कुल में उत्पन्न हुई विद्या शुभगुण रूप सुशीलतादि युक्त (इषिराम्) वर की इच्छा करनेहारी हृदय को प्रिय स्त्री को (एति) प्राप्त होता है और जो (पतिम्) विवाह से अपने सेवन की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (इयम्) यह (वधूः) स्त्री अपने सदृश, हृदय को प्रिय पति को (एषि) प्राप्त होती है वह पुरुष वा स्त्री (अस्य) इस गृहाश्रम के मध्य (आश्वस्यात्) अत्यन्त विद्या धन आदि युक्त सब ओर से होवे और वे दोनों (रथः) रथ के समान (आघोषात्) परस्पर प्रिय वचन बोलें (च) और सब गृहाश्रम के भार को (वहाते) उठा सकते हैं तथा वे दोनों (पुरु) बहुत (सहस्रा) असंख्य उत्तम कार्यों को (परिवर्तयाते) सब ओर से सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्यायुक्त अपने सन्तानों को कराके स्वयंवर विवाह कराओ तो वे (वन्द्येभिः) कामना के योग्य (चित्तयद्भिः) सब सत्य विद्याओं को जाननेहारे (अर्कैः) सत्कार के योग्य (एषः) शरीरात्मबलों से युक्त हो के (वः) तुम्हारे लिये (एषे) सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें और वे (उषासानक्ता) जैसे दिन और रात तथा जैसे (विदुषीव) विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (विश्वम्) गृहाश्रम के सम्पूर्ण व्यवहार को (आवहतः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ह) वैसे ही इस (यज्ञम्) संगतरूप गृहाश्रम के व्यवहार को वे दो पुरुष पूर्ण कर सकते हैं और (मर्त्याय) मनुष्यों के लिये यही पूर्वोक्त विवाह पूर्ण सुखदायक है और (यहो) बड़े ही शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष दोनों (दिवः) कामनाओं को (उप, प्र, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त हो सकते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

जैसे ब्रह्मचर्य में कन्या का ब्रह्मचर्य कहा है वैसे ही सब पुरुषों को ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़कर पूर्ण जवान हो परस्पर परीक्षा करके जिससे जिसको विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना [illegible]

[illegible] विवाह न करने से ब्रह्मचर्य में अनिच्छित प्रत्यक्ष सह कन्या का विवाह करा दो [illegible] विवाह होकर गृहाश्रम में क्योंकर न डूबेंगे और जो पूर्वोक्त विधि से विवाह करते हैं वे ईश्वराज्ञा के अनुकूल होने से पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं। (प्रश्न) विवाह अपने २ वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्ण में भी (उत्तर) अपने २ वर्ण में। परन्तु वर्णव्यवस्था गुण कर्म के अनुसार होनी चाहिये जन्ममात्र से नहीं। जो पूर्ण विद्वान् धर्मात्मा परोपकारी जितेन्द्रिय मिथ्याभाषणादिदोषरहित विद्या और धर्मप्रचार में तत्पर रहे इत्यादि उत्तम गुण जिसमें हों वह ब्राह्मण ब्राह्मणी। विद्या बल शौर्य न्यायकारित्वादि गुण जिसमें हों वह क्षत्रिय क्षत्रिया। और विद्वान् हो के कृषि पशुपालन व्यापार देशभाषाओं में चतुरत्वादि गुण जिसमें हों वह वैश्य वैश्या। और जो विद्याहीन मूर्ख हो वह शूद्र शूद्रा कहावे। इस क्रम से विवाह होना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ ही विवाह होने में आनन्द होता है अन्यथा नहीं॥ इस वर्णव्यवस्था में प्रमाण :—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥ आपस्तम्बे ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।

क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ३ ॥ मनुस्मृतौ ॥

अर्थः—धर्माचरण से नीचे वर्ण उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और उस वर्ण में जो २ कर्त्तव्य अधिकार रूप कर्म हैं वे सब गुण कर्म उस पुरुष और स्त्री को प्राप्त होवें॥ १॥ वैसे ही अधर्माचरण से उत्तम वर्ण नीचे २ के वर्ण को प्राप्त होवे और वे ही उस २ वर्ण के अधिकार और कर्मों के कर्त्ता होवें॥ २॥ उत्तम कर्म स्वभाव से जो शूद्र है वह वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण; और वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण; तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है वैसे ही नीच कर्म और गुणों से जो ब्राह्मण है वह क्षत्रिय वैश्य शूद्र; और क्षत्रिय वैश्य शूद्र; तथा वैश्य, शूद्र वर्ण के अधिकार और कर्मों को प्राप्त होता है॥

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था होने से पक्षपात न होकर सब वर्ण उत्तम बने रहते और उत्तम बनने में प्रयत्न करते, और उत्तम वर्ण, भय से कि मैं नीच वर्ण न हो जाऊं इसलिये बुरे कर्म छोड़ उत्तम कर्मों ही को किया करते हैं इससे संसार की बड़ी उन्नति है। आर्यावर्त्त देश में जब तक ऐसी वर्णव्यवस्था (अर्थात् पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण उत्तमता से स्वयंवर विवाह होता था तभी देश की उन्नति थी, अब भी ऐसा ही होना चाहिये जिससे आर्यावर्त्त देश अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होकर आनन्दित होवे॥

अब कन्या वर एक दूसरे के गुण कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें:—दोनों का तुल्य शील, समान दुःख, समान आचार, समान रूपादि गुण, अहिंसकता, सत्य मधुर भाषण, कृतज्ञता, दयालुता, अहंकार, मात्सर्य, हिंसा, क्रोध, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्याग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, [illegible] मद्यपानादिदोषों का त्याग, पुरुषार्थों में अति चतुरता हो जब २ प्रातः सायं [illegible]

की पति के चरणस्पर्श पादप्रक्षालन आसमर्दन करे तथा दोनों परस्पर श्रम [illegible] करके आनन्द मंगल वर के शरीर से स्त्री का शरीर पतला और पुरुष के [illegible] चाहिये तत्पश्चात् भीतर की परीक्षा स्त्री पुरुष वचनादि व्यवहारों से करें।

ओं ऋतमग्ने प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितम्।
यदिय कुमार्य्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यताम्। यत्सत्यं तदुदश्यताम्॥

अर्थः—जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और उत्तर स्त्रियों से कन्या की परीक्षा में परीक्षा करावे पश्चात् उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषों की सभा करके दोनों परस्पर संवाद करें कि हे स्त्री वा हे पुरुष! इस जगत् के पूर्व ऋत यथार्थस्वरूप महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ था और उस महत्तत्त्व में सत्य त्रिगुणात्मक नाशरहित प्रकृति प्रतिष्ठित है जैसे पुरुष और प्रकृति के योग से सब [illegible] उत्पन्न हुआ है वैसे मैं कुमारी और मैं कुमार पुरुष इस समय दोनों में विवाह करने की सत्य प्रतिज्ञा करती वा करता हूं उसको यह कन्या और वर प्राप्त होवें और अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिये दृढ़ोत्साही रहें।

विधिः—जब कन्या रजस्वला होकर पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाण शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उस में विवाह करने के लिये प्रथम ही सब सामग्री जोड़ रखनी चाहिये और १६-१८ पृष्ठ में लि० यज्ञशाला, वेदी, ऋत्विक्, यज्ञपात्र, शाकल्य आदि सब सामग्री एक जा के रखनी उचित है पश्चात् एक ॥ घंटेमात्र रात्रि जाने पर:—)

विवाह संस्कार विधिः

वधूवर स्नान मंत्राः

ओं काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुं सुरते अभवत्।
परमन्न जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा॥ १॥

अर्थ—विवाह की शुभेच्छा को सब जानते हैं इस का नाम आह्लाद है—इस से प्रेरित होकर इस देवी से विवाह करो—यह जल है इस से स्नान करो। हे शुभेच्छा! इस वर का कन्या में तेरा माधुर्य कहा है तथा तपस्या के द्वारा तुम्हारा निर्माण हुआ है।

इमं ते उपस्थं मधुना। संसृजामि प्रजापतेर्मुख मेतत् द्वितीयम्।
तेन पुंसोऽभि भवासि सर्वान वशान् ध शिष्यसि असि स्वाहा॥

अर्थ—मैं तेरी गोद वा व्यवहार को माधुर्य से युक्त करती हूं। यह गोद वा व्यवहार [illegible] के

[illegible] यदि आवश्यक रात्रिके [illegible] हो सके तो यथाशक्ति [illegible] कर लेवे [illegible] लिखे हुए डेरा जाने॥

उत्तम कुलों में श्रेष्ठ हो सो तुम्हारे वरा में है तुम सब बातों का [illegible]

ओं अग्निं क्रव्यादमक्रव्यन गुहानाः स्त्रीणामुपस्थ ऋषय पुरा गा।
तेनाज्यं अकृण्वं स्त्रै श्रङ्गं त्वाष्टं त्वयि तद्धातु स्वाहा ॥ २ ॥ मं० ब्रा० १ । प्र० ३ ।

अर्थ—श्मशान की भयंकर अग्नि को दूर करते हुए ऋषियों ने स्त्री पुरुष का सान्निध्य किया है तथा गार्हपत्य अग्नि से उन्नति के लिए संयुक्त किया है।

इन मन्त्रों से सुगन्धित शुद्ध जल से पूर्ण कलशों को लेके वधू वर स्नान कर [illegible] वधू उत्तम वस्त्रालङ्कार धारण करके उत्तम आसन पर पूर्वाभिमुख बैठे तत्पश्चात् पृष्ठ ३ से १५ तक लिखी हुई ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण करें तत्पश्चात् पृष्ठ २०–२१ में लिखे प्रमाणे अन्याधान समिदाधान पृष्ठ १६ में लि० स्थालीपाक आदि यथोक्त कर वेदी के समीप रक्खे वैसे ही वर भी एकान्त अपने घर में जाके उत्तम वस्त्रालङ्कार करके यज्ञशाला में आ उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठे के पृष्ठ ३–४ में लि० [illegible] स्तुति † प्रार्थनोपासना कर वधू के घर को जाने का ढंग करे तत्पश्चात् कन्या के और वर पक्ष के पुरुष बड़े सामान (सम्मान ?) से वर को घर ले जावें जिस समय वर वधू के घर प्रवेश करे उसी समय वधू के कार्यकर्त्ता मधुपर्क आदि से वर का निम्नलिखित प्रकार आदर सत्कार करें उसकी रीति यह है कि वर वधू के घर में प्रवेश करके पूर्वाभिमुख खड़ा रहे और वधू तथा कार्यकर्त्ता वर के समीप उत्तराभिमुख खड़े रह के वधू और कार्यकर्त्ता—

सत्कार के लिए वर को साथ वर की पूजा करने का मन्त्र—

साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम् ॥ पार० कां० १ । कं० ३ । सू० ४ ॥

आप उत्तम हैं हम आप का पूजन करते हैं।

इस वाक्य को बोल के उस पर वर—

उत्तर वाक्य—

ओं अर्चत ॥ पा० कां० १ । १३ ॥

सत्कार कीजिये।

इसके अनन्तर वधू के पुरोहित और कार्यकर्त्ता ने वर के लिए उत्तम आसन सिद्ध कर रखा हो उस को वधू हाथ में ले वर के आगे खड़ी रहे ॥

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यतां ।

यह उत्तम आसन है आप ग्रहण कीजिये, वर—

ओं प्रति गृह्णामि । १-३ ।

सहर्ष ग्रहण करता हूं ।

इस वाक्य को बोल के वधू के हाथ से आसन ले बिछा उस पर समा मण्डप में पूर्वाभिमुख बैठ के वर—

आशीर्वाद लेकर बोलने का मन्त्र—

वर्मोऽस्मि समानना मुद्यतामिव सूर्य इमं त मभि तिष्ठामियो मा कश्चाभिदासति ॥

पार० कां १ कं० ३ ॥

अर्थ—मैं अपने तुल्य जनों में बलवान् हूं । सूर्य जैसे उदय होने वालों में बलवान् है मैं उस के समान शक्ति रखता हूं, जो कोई भी मुझ को दास बनाना चाहता है ।

इस मन्त्र को बोले तत् पश्चात् कार्यकर्ता एक सुन्दर पात्र में पूर्ण जल भरे के कन्या के हाथ में देवे और कन्या—

पांव प्रक्षालन का जल—

पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यतां ।

यह सुंदर पांव धोने का जल है, लीजिये ।

इस वाक्य को बोल के वर के आगे धरे पुनः वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥ पार० कां १ । कं० ३ ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से उदक ले पग का प्रक्षालन करे और उस समय—

पग धोते समय का मंत्र—

ओं विराजो दोहोसि विराजो दोहमशीय । मयि पाद्यायै विराजो दोहः ।

अर्थ—यह जल प्रकाशक पदार्थों में पूर्णता देने वाले हैं, विराजो दोह मशीय—मैं इस को प्राप्त करता हूं, मयि पाद्यायै विराजो दोह—यह मेरे पांव धोने का जल है ।

इस मन्त्र को बोले तत् पश्चात् फिर भी कार्यकर्ता दूसरा शुद्ध लोटा पवित्र जल से भर कन्या के हाथ में देवे पुनः कन्या—

यदि आरंभ वर्ष हो तो प्रथम दक्षिण पग पश्चात् बायां और अन्य चैत्रादि वर्ष हों तो प्रथम बायां पग

ओं अपोऽअन्वचारिषं प्रतिगृह्णता ॥

यह मुख प्रक्षालन का जल है।

इस वाक्य को बोल के वर के हाथ में देवे और वर—

ओं प्रतिगृह्णामि ॥

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से जल पात्र लेके उस से मुख प्रक्षालन करके फिर उसी जल से मुख धोके—

मुख प्रक्षालन के पश्चात बोलने के मंत्र—

ओं आपस्थ युष्माभिः सर्वान्कामान वामवानि।
ओं समुद्रं वः प्रहिणोमिस्वां योनिमभि गच्छत।
अरिष्टास्माकं वीरा मा परासेचिमत्पयः ॥ पा० १।३।

अर्थ—यह जल हैं, इन से मैं अपने सब काम सिद्ध करता हूँ, यह पुनः समुद्र में चले जावें हैं इनको साधन बना कर हमारे वीर दुःख रहित होते हैं, यह मुझ से दूर न हों अर्थात् इनके अभाव का कष्ट मुझे न देखना पड़े।

इन मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वेदी के पश्चिम में बिछाये हुए उसी शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठे। फिर कार्यकर्त्ता सुन्दर उपपात्र जल से पूर्ण भर उसमें आचमनी रख कन्या के हाथ में देवे और उस समय कन्या—

आचमनीय जल देने का मंत्र—

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयम्प्रतिगृह्यताम्

यह आचमन के योग्य जल है, लीजिए। इस वाक्य को बोल के वर के सामने करे, वर कहे

ओं प्रतिगृह्णामि। पा० १।३॥

ग्रहण करता हूँ।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ में से जल पात्र को ले सामने धर उसमें से दाहिने हाथ में जल, जितना अंगुलियों के मूल तक पहुँचे उतना ले के वर—

ओं आगन्न् यशसा स ँ सृज वर्चसा।
तन्मा कुरु प्रिय प्रजानामधिपतिं पशूनामरिष्ट तनूनाम् ॥ पा० १।३।

तीसरा आचमन करें। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता मधुपर्क * का पात्र कन्या के हाथों से

ओं मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ॥

अर्थ—यह मधुपर्क है स्वीकार कीजिये।

ऐसे विनती वर से करें और वर

ओं प्रतिगृह्णामि ।

इस वाक्य को बोल के कन्या के हाथ से ले और उस समय

ओं मित्रस्या त्वा चक्षुषाप्रतीक्षे । पा० १ । ३ ।

मैं इसको मित्र की दृष्टि से देखता हूँ ।

इस मन्त्रस्थ वाक्य को बोल के मधुपर्क को अपनी दृष्टि से देख और

बाम हाथ में लेने का मंत्र—

ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ॥

य० अ० १ । १७ ।

अर्थ पूर्व कर दिया गया है ।

इस मन्त्र को बोल के मधुपर्क पात्र को बाम हाथ में लेवे

मधुपर्क अवलोकन के मंत्र—

ओं भूर्भुवः स्वः । मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥१॥

अर्थ—हम ऐसा आचरण करें जिससे, वायु मीठा हो बहे, नदियां मीठा होकर चलें, ओषधियां हमारे लिए मधुरतायुक्त हों ।

ओं भूर्भुवः स्वः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥२॥

अर्थ—हम ऐसी युक्ति से सेवन करें जिससे, रात्रि और उषाकाल मीठा हो, भूमि का प्रत्येक कण मीठा हो, द्युलोक मीठा हो रक्षक मीठा हो ।

ओं भूर्भुवः स्वः । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥

अर्थ—वनस्पतियां मीठी हों, सूर्य मधुयुक्त हो, हमारे लिये सूर्य की किरणें मीठी हों ।

इन मन्त्रों से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे —

---

* मधुपर्क कुछ दही में घी और शक्कर मिलाकर बनाया जाता है ।

* ४ (चार) तोले सहित अथवा ४ (चार) तोले घी मिलाकर हाथ से

[illegible] मन्त्र—

ओं नमः शार्वास्यायाशनाय यत्त आविद्धं तत्ते निष्कृन्तामि । पार० १।३।१५॥

अर्थ—यह उठरामि के लिए अन्न है, इस में जो कण आदि हैं उसे निकालता हूं।

इस मन्त्र को पढ़, दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठ से मधुपर्क को तीन बार बिलोवे और उस मधुपर्क में से वर

पूर्व दिशा में छींटा देने का मन्त्र—

ओं वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ—वसु ब्रह्मचारी इस मधुपर्क के अधिकारी हैं। इस मन्त्र से पूर्व दिशा।

दक्षिण में छींटे देने का मन्त्र—

ओं रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ—रुद्र ब्रह्मचारी इस को खाने के अधिकारी हैं। इस मन्त्र से दक्षिण दिशा।

पश्चिम में छींटे देने का मन्त्र—

ओं आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

अर्थ—जगती छन्द के ४८ अक्षर होते हैं, इसी तरह ४८ वर्ष का आदित्य ब्रह्मचारी इसे खाने का अधिकारी है। इस मन्त्र से पश्चिम दिशा।

उत्तर दिशा में छींटे देने का मन्त्र—

ओं विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्षयन्तु ॥

सब विद्वान् इस के खाने के अधिकारी हैं।

इस मन्त्र से उत्तर दिशा में थोड़ा २ छोड़े अर्थात् छींटे देवे।

ऊपर को तीन बार छींटे देने का मन्त्र—

ओं [illegible] त्वा परिगृह्णामि । आश्व० गृ० अ० १।२४।१५।

अर्थ—मैं [illegible] प्राणियों की भलाई के लिए इस मधुपर्क को ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्रस्थ पात्र से दाल के पात्र के मध्य भाग में से लेके ऊपर की ओर तीन बार फेंकना। फिर उस मधुपर्क के तीन भाग करके तीन कांसे के पात्रों में भर भूमि में अपने सम्मुख तीनों पात्र रखे।

निम्न मन्त्र को तीन बार बोल वारी २ तीन बार मधुपर्क खावे।

मधुपर्क भक्षण का मन्त्र—

[illegible] मधव्यो मधु रूपमन्नाद्यम् । तेनाहं मधुनो

[illegible] मधव्योऽसानि ॥ पार० १।३॥

अर्थ—जो मधुरों का मधुर है, परमरूप तथा भक्षणीय है, मैं उन मीठों के मीठे से परम सुन्दर मीठा तथा अन्न के पालन करने वाला बनूं।

इस मन्त्र को एक एक बार बोल के एक एक भाग में से वर थोड़ा थोड़ा प्राशन करे। सब प्राशन जो उन पात्रों में शेष उच्छिष्ट मधुपर्क रहा हो वह किसी अपने सेवक को देवे वा जल में डाल दे। तत्पश्चात्—

आचमन के मन्त्र—

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा। ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

इन दोनों मन्त्रों से दो आचमन अर्थात् एक से एक और दूसरे से दूसरा वर करे। तत्पश्चात् वर आदि इन्द्रियों का जल से स्पर्श करे। फिर कन्या—

गोदान—

ओं गौर्गौ प्रतिगृह्यताम्॥

अर्थ—यह सुन्दर गौ ग्रहण कीजिए।

इस वाक्य से वर की विनती कर के अपनी शक्ति के योग्य वर को गोदानादि द्रव्य जो कि घर के हो, अर्पण करे और वर

ओं प्रतिगृह्णामि।

इस वाक्य से उसे ग्रहण करे। इस प्रकार मधुपर्क विधि यथावत् वर के वधू और कार्यकर्त्ता वर को मण्डप स्थान* से घर में ले जावे शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठा के वर के सामने पश्चिमाभिमुख वधू को और कार्यकर्त्ता उत्तराभिमुख बैठ के

कन्या दान

ओं अमुक† गोत्रोत्पन्नामिमामुक नाम्नी‡ मङ्गलकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्॥

अमुक गोत्र उत्पन्न अमुक नाम वाली अलंकृत कन्या को आप ग्रहण कीजिए।

इस प्रकार बोल के वर का हाथ चत्ता अर्थात् हथेली ऊपर रख के उस के हाथ में वधू का दक्षिण हाथ देवे और वह

---

* यदि सभामण्डप स्थापन न किया हो तो जिस घर में मधुपर्क हुआ हो उस से दूसरे घर में वर को ले जावे।

† अमुक इस पद के स्थान में जिस गोत्र और कुल में वधू उत्पन्न हुई हो उस का उच्चारण अर्थात् उस का उच्चारण

‡ अमुकनाम्नीम् इस स्थान में वधू का नाम [illegible]

ओं परिदधामि ।

ऐसा बोल के फिर—

वधू को वस्त्र देने का मंत्र

ओं जरां गच्छ परिधत्स्व वासो भवा कृष्टीनामभिशस्ति पावा । शतं च जीव शरदः सुवर्चा रयिं च पुत्राननु संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्ववासः ।

अर्थ—वृद्धावस्था तक जीती रह, मनुष्यों में प्रमाद से अपनी रक्षा कर, तेजस्विनी सौ साल तक जीती रहो, सुन्दर धन वा सुसन्तान को प्राप्त हो, सुन्दर जीवन वाली इस वस्त्र को धारण

इस मन्त्र को बोल के वधू को उत्तम वस्त्र देवे । तत्पश्चात्—

उपवस्त्र देने का मंत्र—

ओं या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देवीस्तन्तूनभितो ततन्थ ।

तास्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वायुष्मतीदं परिधत्स्ववासः ॥ पार० १ । ४ । १३ ॥

अर्थ—जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत को काता वा बुना है, जिन्होंने सूत को फैलाया, जिन ने इसे सीया है, वे देवियां तुझे वृद्धावस्था पर्यन्त शिक्षा देती रहें, आगे पूर्ववत् ।

इस मन्त्र को बोल के वधू को वर उपवस्त्र देवे, वह उपवस्त्र को यज्ञोपवीतवत् धारण करे ।

वर के वस्त्र धारण करने का मंत्र—

ओं परिधास्ये यशोधास्ये दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।

शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ पार० कां० २ । कं० ॥ १ ॥ अर्थ—शरीर को ढांपने और यश के लिए, दीर्घायु के लिए वृद्धावस्था तक जीवित रहूं, मैं उत्तम वस्तुओं को धारण करता हुआ सौ साल तक जीता रहूं, भगवान मुझ पर कृपा करें जिस से मैं धनों की पुष्टि वा संग्रह करता रहूं ।

इस मन्त्र को पढ़ के वर आप अधोवस्त्र धारण करे और—

दुपट्टा धारण करने का मंत्र—

ओं यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रो बृहस्पति ।

यशोभगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ॥ पा० कां० २ । कं० ॥

अर्थ—द्युलोक पृथिवी लोक के द्वारा मैं यश का विस्तार करूं, धनी और सुखी बना मिलें, भगवान् मुझे यश प्रदान करें, मैं अपने मार्ग से यश को प्राप्त करूं ।

इस मन्त्र को पढ़ के दुपट्टा धारण करे । इस प्रकार वर कपड़े पहन के जनवासे तक जाकर कन्या पक्ष का कोई यज्ञ मण्डप में जा कुशों के समीप रख [illegible] पृष्ठ २०८ पंक्ति २५ में देखो ।

घृत वा घृत से कुण्ड के अग्नि को प्रदीप्त करे, और आहुति के लिये सुगन्ध [illegible] घी [illegible] में [illegible] कुण्ड के अग्नि पर गरम कर कांसे के पात्र में रक्खे, और स्रुव आदि होम के पात्र तथा शुद्ध जलपात्र [illegible] सामग्री यज्ञकुण्ड के समीप जोड़ कर रक्खे, और वरपक्ष का एक पुरुष शुद्ध वस्त्र धारण कर शुद्ध जल से पूर्ण एक कलश को ले के यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर कुण्ड के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख हो कलश स्थापन अर्थात् भूमि पर अच्छे प्रकार अपने आगे धर के जब तक विवाह का कृत्य पूर्ण न हो जाय तब तक उत्तराभिमुख बैठा रहे, और उसी प्रकार वर के पक्ष का दूसरा पुरुष हाथ में दण्ड लेके कुण्ड के दक्षिण भाग में कार्य समाप्तिपर्यन्त उत्तराभिमुख बैठा रहे, और इसी प्रकार सहोदर वधू का भाई, अथवा सहोदर न हो तो चचेरा भाई, मामा का पुत्र, अथवा मौसी का लड़का हो वह चावल या जुवार की धाणी और शमी वृक्ष के सूखे पत्ते इन दोनों को मिला कर शमी पत्र युक्त धाणी की ४ (चार) अञ्जलि एक शुद्ध सूप में रख के धाणी सहित सूप ले के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख बैठा रहे । तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता एक सपाट-शिला जो कि सुन्दर चिकनी हो उसको तथा वधू और वर को कुण्ड के समीप बैठाने के लिये दो कुशासन वा यज्ञीय तृणासन वा यज्ञीय वृक्ष की छाल के जो कि प्रथम से सिद्ध कर रक्खे हों उन आसनों को रखवावे । तत्पश्चात् वस्त्र धारण की हुई कन्या को कार्यकर्त्ता वर के सम्मुख लावे और उस समय वर और कन्या—

वर वधू का प्रतिज्ञा मंत्र—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ । सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥१॥

ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४७ ॥

इस मन्त्र को बोलें । तत्पश्चात् वर दक्षिण हाथ से वधू का दक्षिण हाथ पकड़ के:—

ओं यदैषि मनसा दूरं दिशोऽनुपवमानो वा । हिरण्यपर्णो वैकर्णः स त्वा मन्मनसां करोतु * असौ ॥२॥

पार० कां० १ । कं० ४ ॥

---

* वर और कन्या बोलें कि हे (विश्वे, देवाः) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो ! आप हम दोनों को (समञ्जन्तु) निश्चय करके जानें कि अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहाश्रम में एकत्र रहने के लिये एक दूसरे का स्वीकार करते हैं कि (नौ) हमारे दोनों के (हृदयानि) हृदय (आपः) जल के समान (सम्) शांत और मिले हुए रहेंगे जैसे (मातरिश्वा) प्राणवायु हमको प्रिय है वैसे (सम) हम दोनों एक दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे जैसे (धाता) धारण करने हारा परमात्मा सब में (सम्) मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है वैसे हम दोनों एक दूसरे का धारण करेंगे जैसे (समुदेष्ट्री) उपदेश करने हारी स्त्रियों से प्रीति करता है वैसे (नौ) हमारे दोनों का आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को (दधातु) धारण करे ।

* (असौ) इस पद के स्थान में कन्या का नाम उच्चारण करना, हे वरानने वा हे वरानने (यत्) जो तू (मनसा) अपनी इच्छा से मुझ को जैसे (पवमानः) पवित्र वायु (वा) जैसे (हिरण्यपर्णो वैकर्णः) [illegible] सुवर्ण आदि [illegible] से ग्रहण करने वाला सूर्य (दूरम्) दूरस्थ [illegible] (दिशोनु) [illegible] प्राप्त होता है [illegible] प्राप्त [illegible]

इस मन्त्र को बोल के उसको लेके घर के बाहर मण्डप स्थान में कुण्ड के समीप हाथ पहले धो
देवे और वधू तथा वर—

ओं भूर्भुवः स्वः । अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥३॥
ओं भूर्भुवः स्वः । सा नः पूषा शिवतमामैरय सा न ऊरू उशति विहर ।
यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामुकामा बहवो निविष्टये ॥४॥

ऋ० मं० १० । सू० ८५ ॥

इन चार मन्त्रों को वर बोल के दोनों वर वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किये हुए आसन पर पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के वधू :—

ओं प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम् ॥ मं० ब्रा० १।१।८॥

अर्थ—प्रभो कृपा करो मेरे पति का मार्ग; कल्याणयुक्त हो, आप की कृपा से निर्विघ्न पति के मार्ग को पाऊं।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे यज्ञकुण्ड के समीप दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पुरोहित की स्थापना करनी। तत्पश्चात्—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों में प्रत्येक मन्त्र से एक २ आचमन वैसे तीन आचमन वर, वधू और पुरोहित और कार्यकर्त्ता करके हस्त और मुख प्रक्षालन एक शुद्धपात्र में करके दूर रखवा दे हाथ और मुख पोंछ के

अपनी इच्छा से मुझ को प्राप्त होती वा होता है उस (त्वा) तुझ को (सः) वह परमेश्वर (मनसा) मेरे मन के अनुकूल (करोतु) करे, और हे (वीर) जो आप मन से मुझ को (एषि) प्राप्त होते हो उस आपको जगदीश्वर मेरे मन के अनुकूल सदा रक्खे ॥

* हे वरानने (अपतिघ्नि) पति से विरोध न करनेहारी तू जिस के (ओम्) अर्थात् रक्षा करनेवाला (भूः) प्राणदाता (भुवः) सब दुःखों को दूर करने हारा (स्वः) सुखस्वरूप और सब सुखों का दाता आदि वाक्य है उस परमात्मा की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से हे (अघोरचक्षुः) प्रियदृष्टि (एधि) हो (शिवा) मङ्गल करनेहारी (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं को सुखदाता (सुमनाः) पवित्रात्मा करणयुक्त प्रसन्नचित्त (सुवर्चाः) सुन्दर शुभ गुण कर्म स्वभाव और विद्या से सुप्रकाशित (वीरसूः) उत्तम वीर पुरुषों को उत्पन्न करनेहारी (देवृकामा) देवर की कामना करती हुई अर्थात् नियोग की इच्छा करनेवाली (स्योना) सुखयुक्त घर की (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्यादि के लिये (शम्) सुख करनेहारी (भव) हो वैसी ही और (चतुष्पदे) गौ आदि पशुओं की भी (शम्) सुख देनेहारी हो वैसे ही मैं तेरा पति भी बना करूं ॥

पृ० २१ में लिखे यज्ञकुण्ड में (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव०) इस मन्त्र से अग्न्याधान पृ० २२ में (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान और पृ० २२ में लिखे—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से कुण्ड की तीन ओर और (ओं देव सवित: प्रसुव०) इस मन्त्र की चारों ओर दक्षिण हाथ की अञ्जलि से शुद्ध जल सेचन करके कुण्ड में डाली हुई समिधा पश्चात् पृ० २२ में लि० वधू वर पुरोहित और कार्यकर्त्ता आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) तत्पश्चात् पृ० २३ में लि० व्याहृति आहुति ४ (चार) घी की की और पृ० २३ में लि० अष्टा (आठ) ये सब मिल के १६ (सोलह) आज्याहुति दे के प्रधान होम का प्रारम्भ करें। प्रधान समय वधू अपने दक्षिण हाथ को वर के दक्षिण स्कन्धे पर स्पर्श करके पृ० २३ में लि० (ओं भू अग्न आयूंषि०) इत्यादि चार मन्त्रों से अर्थात एक २ से एक २ मिल के ४ (चार) आज्या से करें और—

सामान्य हवन विधि—

(१) समिधाधान, अग्न्याधान।

(२) पांच घृताहुति तथा जल सेचन।

(३) आघारावाज्यभागाहुति चार—व्याहृति आहुति चार।

(४) अष्टाज्याहुति अनन्तर।

(५) प्रधान होम का आरम्भ करें।

इस समय वधू अपने दायें हाथ से वर के दायें कन्धे को स्पर्श करे।

(६) अग्न आयूंषि इत्यादि चार मन्त्रों से आहुति देकर निम्न मन्त्रों से आहुति डालें।

ओं भूर्भुवः स्वः । त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्नमम ॥मं० ४ ।

अर्थ—अन्न देने वाले प्रभो, आप न्यायकारी हैं, आप गुप्त रूप से कन्याओं की रक्षा करते हैं, दम्पती इन्द्रियों द्वारा सुकर्म करके, पोषक मित्र की नाईं आपको प्राप्त करते हैं, आप वर वधू को अपने तुल्य मन वाला कीजिए।

इस मन्त्र को बोल के पांचवीं आज्याहुति देनी, तत्पश्चात्—

अष्ट घृतहोम—(जिस से अष्ट का धारण वा पालन हो)

ओं घृतपाड् घृतधामाग्निर्गन्धर्वः । स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु
तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदमृतपाड्घृतधाम्ने अग्नये गन्धर्वाय इदन्नमम ॥

अर्थ—जो राष्ट्रपति सत्य को सहन करने वाला तथा सत्य का धाम है, जो अग्निवत् शत्रु नाशक
र वाणी को धारण करने वाला है, वह हमारे ब्रह्म तेज तथा क्षात्र तेज की रक्षा करे, उसके लिए
ाणी प्राप्त हो।

ओं ऋतोषाड्ऋतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम।
ताभ्यः स्वाहा। इदमोषधिभ्योऽप्सरोभ्यो मुदभ्यः। इदन्नमम॥ २॥

अर्थ—ऐसे राजा की जलों से पैदा होने वाली औषधियां सब को आनन्द प्रदान करती हैं।
त।

ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्योगन्धर्वः। सन इदं ब्रह्म क्षत्रंपातु तस्मै
स्वाहा वाट्। इदं सꣳहिताय विश्वसाम्ने सूर्याय गन्धर्वाय—इदन्नमम॥ ३॥
ओं सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस।
आयुवो नामताभ्यस्त्वाहा॥ इदं मरीचिभ्योऽप्सरोभ्य आयुभ्यः इदन्नमम॥ ४॥

अर्थ—जो सब सत्पुरुषों वा भूत द्रव्य से मिला हुआ है संसार को शान्ति देने वाला है, पृथिवी को
करने वाली सूर्य, उसकी जलों में विचरने वाली किरणें प्रसिद्ध हैं वा जीवन प्रदान करने वाली हैं,
वत्।

ओं सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रंपातु।
तस्मै स्वाहा वाट्। इदं सुषुम्णाय, सूर्यरश्मये चन्द्रमसे, गन्धर्वाय इदन्नमम॥ ५॥
ओं सुषुम्णः सूर्य रश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यपसरोभेकुरायोनाम
ताभ्यः स्वाहा॥ इदं नक्षत्रेभ्योऽप्सरोभ्यो भेकुरिभ्यः इदन्नमम॥ ६॥

अर्थ—सुख देने वाला सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला चन्द्रमा, सूर्य की किरणों को धारण
ाला जिसके अश्विनी आदि नक्षत्र हैं, आकाश में जिसकी किरणें प्रसिद्ध प्रकाश प्रदान करती हैं।
वत्—

ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै
स्वाहा वाट्। इदमिषिराय विश्वव्यचसे वाताय गन्धर्वाय इदन्नमम॥ ७॥
ओं इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जोनाम
ताभ्यः स्वाहा॥ इदमद्भ्यो अप्सरोभ्य ऊर्जभ्यः—इदन्नमम॥ ८॥

अर्थ—जिसके द्वारा इच्छाएँ करते हैं, सारे विश्व में जिसकी व्याप्ती है—ऐसा वायु, गन्धर्वः—पृथिवी वा किरणों को धारण करने वाला, उसके जल वा प्राण, जलों वा अन्तरिक्ष में जल वा पदार्थ उत्पन्न करने वाले हैं।

ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातुतस्मै
स्वाहा वाट् ॥ इदं भुज्यवे सुपर्णाय यज्ञाय, गन्धर्वाय इदन्नमम ॥ ९ ॥
ओं भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस्तावा नाम।
ताभ्यः स्वाहा ॥ इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्यः स्तावाभ्यः इदन्नमम ॥ १० ॥

अर्थ—जिससे सुखों को भोगते हैं, पालना करने वाला, वाणी को धारण करने वाला यज्ञ है, जिसकी दक्षिणा स्तुति योग्य तथा प्राणों को प्राप्त होने वाली प्रसिद्ध है, शेषं पूर्ववत्।

ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं
पातु तस्मै स्वाहा वाट् ॥ इदं प्रजापतये विश्वकर्मणे, मनसे, गन्धर्वाय इदन्नमम ॥ ११ ॥
ओं प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो
नाम ताभ्यः स्वाहा ॥ इदमृक्सामेभ्योऽप्सरोभ्यः एष्टिभ्यः इदन्नमम ॥ १२ ॥

अर्थ—जो मनुष्य प्रजा का पति विश्वकर्मा सम्पूर्ण श्रेष्ठ पदार्थों को धारण करने वाला है, जिसका मन वाणी को धारण करने वाला है जिसके ऋक वा साम की ऋचाएं प्राणों में व्याप्त रहती हैं जिससे वह विद्वानों का सत्कार सत्संग तथा विद्या दान करता है। शेषं पूर्ववत्।

इन १२ मंत्रों से बाहर (राष्ट्रभृत्) आज्याहुति देनी तत्पश्चात् जया होम करना ॥

ओं चित्तं च स्वाहा ॥ इदं चित्ताय-इदन्न मम ॥१॥ ओं चित्तिश्च स्वाहा ॥ इदं चित्त्यै-इदन्न मम ॥२॥ ओं आकूतं च स्वाहा ॥ इदमाकूताय-इदन्न मम ॥३॥ ओं आकूतिश्च स्वाहा ॥ इदमाकूत्यै--इदन्न मम ॥४॥ ओं विज्ञातश्च स्वाहा ॥ इदं विज्ञाताय -इदन्न मम ॥५॥ ओं विज्ञातिश्च स्वाहा ॥ इदं विज्ञात्यै-इदन्न मम ॥६॥ ओं मनश्च स्वाहा ॥ इदं मनसे-इदन्न मम ॥७॥ ओं शक्वरीश्च स्वाहा ॥ इदं शक्वरीभ्यः-इदन्न मम ॥८॥ ओं दर्शश्च स्वाहा ॥ इदं दर्शाय-इदन्न मम ॥९॥ ओं पौर्णमासं च स्वाहा ॥ इदं पौर्णमासाय-इदन्न मम ॥१०॥ ओं बृहच्च स्वाहा ॥ इदं बृहते-इदन्न मम ॥११॥ ओं रथन्तरञ्च स्वाहा ॥ इदं रथन्तराय-इदन्न मम ॥१२॥

सप्त आहुतियां

ॐ [illegible] इषवो नभूव स्वाहा । इदं प्रजापतये जयायेन्द्राय इदं न मम । १३ ॥

॥ पार० कां० १ । कं० ८ ॥

अर्थ—भगवान् ने वीर के लिये जीत का उपदेश करने वाले मन्त्र प्रदान किये हैं। उन के उपदेश से वह उग्र तथा बलवान् हो जाता है। विरोधियों को हराने में उस योद्धा को सब प्रजाएं नमस्कार करती हैं। वह वीर प्रचंड तथा पूजनीय हो जाता है।

इन प्रत्येक मंत्रों से एक एक कर के जयाहोम की १३ (तेरह) आज्याहुतियां देनी। तत्पश्चात् अभ्यातन होम करना इस के मंत्र ये हैं।

अभ्यातन होम (शत्रुओं को शस्त्रों द्वारा जीतना)

ओं अग्निर्भूतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्राह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा । इदमग्नये भूतानामधिपतये इदं न मम ॥ १ ॥

अर्थ—ज्ञान स्वरूप भगवान् सब भूतों में उत्तम है वह मेरी रक्षा करता है। इस ब्रह्मतेज वा इस क्षत्र तेज में आगे होने वाली क्रिया में वा कन्या में इस शुभ कर्म में इस विद्वत् सत्कार में पालना करे।

ओं इन्द्रो ज्येष्ठानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याॐ स्वाहा । इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थ—आनन्दस्वरूप भगवान् सब बड़े पदार्थों का स्वामी है, शेष पूर्ववत्।

ओं यमः पृथिव्याऽधिपतिः स मावत्वस्मिन ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं यमाय पृथिव्या अधिपतये इदन्न मम ॥३॥

नियन्ता प्रभु पृथिवी का अधिपति है—पूर्ववत्।

ओं वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याॐ स्वाहा ॥ इदं वायवे अंतरिक्षस्याधिपतये इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थ—पवित्र करने वाला भगवान् अंतरिक्ष का स्वामी है।

ओं सूर्यो दिवोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायाम-स्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याॐ स्वाहा ॥ इदं सूर्याय दिवोऽधिपतये इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रकाशस्वरूप भगवान् द्युलोक का अधिपति है।

ओं चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याॐ स्वाहा ॥ इदं चंद्रमसे नक्षत्राणामधिपतये इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थ—आनन्द देने वाला भगवान् नक्षत्रों का अधिपति है। पूर्ववत्।

ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा। इदं बृहस्पतये ब्रह्मणोधिपतये इदं न मम ॥ ७ ॥

अर्थ—बड़ों का पति प्रभु वेद का रक्षक है।

ओं मित्रः सत्यानामधिपति सं मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं मित्राय सत्यानामधिपतये इदंन्न मम ॥ ८ ॥

ओं वरुणोऽपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं वरुणायापामधिपतये--इदन्नमम ॥ ९ ॥

अर्थ—उत्तम प्रभु जलों का स्वामी है।

ओं समुद्रः स्रोत्यानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं समुद्राय स्रोत्यानामधिपतये-इदन्नमम ॥ १० ॥

अर्थ—अगाध गुणसमुद्र परमेश्वर नदियों वा ज्ञान स्रोतों का स्वामी है।

ओं अन्न ॐसाम्राज्यनामधिपतिः तन्मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामा शिष्यस्यां पुरोधाया मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदमन्नाय साम्राज्यानामधिपतये--इदन्नमम ॥ ११ ॥

अर्थ—ज्ञानियों का पोषक परमात्मा साम्राज्यों का रक्षक है।

ओं सोम ओषधीनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं सोमाय, ओषधीनामधिपतये--इदन्नमम ॥ १२ ॥

अर्थ—शान्त प्रभु औषधियों का स्वामी है।

ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरो-धायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदे सवित्रे प्रसवानामधिपतये इदन्नमम ॥ १३ ॥

अर्थ—संसार का उत्पन्न करने वाला प्रभु उत्पन्न हुए पदार्थों का स्वामी है।

ओं रुद्रः पशूनामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं रुद्राय पशूनामधिपतये--इदन्नमम ॥ १४ ॥

अर्थ—दुष्टों को दण्ड देने वाला प्रभु पशुओं का स्वामी है।

ओं त्वष्ट्रा रूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या ॐ स्वाहा ॥ इदं त्वष्ट्रे रूपणामधिपतये इदन्न मम ॥ १५ ॥

अर्थ—सुन्दरतायुक्त पदार्थों का निर्माण करने वाला परमेश्वर रूपों का स्वामी है।

ओं विष्णु पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया-मस्मिन् कर्मण्यास्यां देवहूत्या॒ स्वाहा। इदं विष्णवे पर्वतानामधिपतये इदन्न—मम ॥ १६ ॥

अर्थ—व्यापक परमेश्वर पर्वतों का स्वामी है।

ओं मरुतो गणानामधिपतयस्ते मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधा-यामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या॒ स्वाहा। इदं मरुद्भ्यो गणानामधिपतिभ्यः इदन्न मम ॥१७॥

अर्थ—शूरवीर समूहों के रक्षक हैं वे मेरी रक्षा करें।

ओं पितरः पितामहाः परेऽवरे तत्तास्ततामहा इहमावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामा-शिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या॒ स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्य स्ततेभ्यस्ततामहेभ्यश्च इदन्न मम ॥ १८ ॥ पार० १। ५ ॥

अर्थ—पितर तथा पितामह, परे ऊंचे तथा नीचे, फैले हुए वा अधिक फैले हुए पारिवारिक जन मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार अभ्यातन होम की अठारह आज्याहुति दिये पीछे

आठ आज्याहुतिः—

ओं अग्निरैतु प्रथमो देवताना॒ सोऽस्यै प्रजामुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदय॒ राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं॒ स्त्री पौत्रमघन्नरोदात् स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थ—प्रभु मुझे प्राप्त हो, जो देवताओं में प्रधान है, वह इस की प्रजा को दीर्घजीवि करे, न्याय-कारी राजा भी ऐसा करे, जिससे यह स्त्री पुत्र सम्बन्धी दुःख को न देखे।

ओं इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्मैनयतु दीर्घमायुः। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिविबुध्यतामिय॒ स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न-मम ॥२॥ मं० ब्रा० १॥ १। २ ॥

अर्थ—गृहपति का हितैषी प्रभु इस कन्या की रक्षा करे, यह बंध्या न होकर जीवित पुत्रों की माता हो, पुत्रों के आनन्द का उपभोग करे।

ओं स्वस्ति नोऽग्ने दिवा* पृथिव्या विश्वानिधेह्ययथा यजत्र। यदस्यां मयि †।
दिवि जातं प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्र॒ स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम ॥ ३ ॥

---

* पारस्कर में "दिव आपृथिव्या" ऐसा पाठ है॥

† पारस्कर में "महि" ऐसा पाठ है॥

अर्थ—हे ज्ञानेश ! द्युलोक तथा पृथिवी लोक तक हमें सुख दीजिए, हमारे सम्पूर्ण कर्म जो भूल से विनष्ट हो गये हैं हे यज्ञ की रक्षा करने वाले, ठीक कीजिए। जो द्युलोक पृथिवी लोक और [illegible] हिंसा युक्त है, वह निश्चित्त रूप हम को प्रदान करो।

ओं सुगन्तु पंथां प्रदिशन्न एहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्न आयुः। अपैतु मृत्युरमृतं म आगमद्वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु स्वाहा॥ इदं वैवस्वताय इदन्नमम॥४॥

अर्थ—हे अमृत! सुन्दर मार्ग का उपदेश देते हुए हम को प्राप्त कीजिए, हमें जरा दोष रहित और प्रकाश युक्त आयु दीजिए, मृत्यु हट कर अमृत प्राप्त हो, आप का प्रकाश निर्भयता देवे।

ओं पर मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्स्वाहा॥ इदं मृत्यवे—इदन्नमम॥५॥

अर्थ—हे संहारक, जो हममें देवयान से भिन्न अर्थात् दुष्ट कर्म करता है, उसे दूर ले जा। हे देखने वाले और सुनने वाले आप से निवेदन करता हूं, कि हमारी प्रजा वा वीरों को दीर्घ आयु प्रदान कीजिए। पार० १।५॥

ओं द्यौस्ते पृष्ठं रक्षतु वायूरू अश्विनौ च। स्तनन्धयांस्ते पुत्रान्त्सविताभिरक्षत्वत्र वाससः परिधानाद् बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात्स्वाहा॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः। इदन्नमम॥६॥

अर्थ—हे कन्ये! सूर्य, वायु तथा उत्तम वैद्य तेरी रक्षा करें, दूध पीने वाले बच्चों की भगवान रक्षा करे। वस्त्र पहनने के अनन्तर अर्थात् विद्यालय में जाने के पश्चात् आचार्य तथा सब विद्वान रक्षा करें।

ओं मा ते गृहेषु निनिघोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु।
मा त्व रुदत्युर आविधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती
प्रजा सुमनस्यमाना स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्नमम॥७॥

अर्थ—तेरे घर में रात्रि को आर्तनाद न हो तथा रोती हुई स्त्रियां न आवें, तू रोती हुई अंगों को मत पीट अर्थात् स्यापा न कर। सधवा होकर पति के घर में रह, और सुन्दर प्रजा को देखती रह।

ओं अप्रजस्त्वं पौत्रमृत्यं पाप्मानमुत वा अघम्। शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाश स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्नमम॥८॥ मं० ब्रा० १।१।१—३॥

अर्थ—तेरे सन्तान न होने वा पुत्र मरने के पाप को, सिर की माला की तरह दूर करता हूं। द्वेषियों के बन्धन छुड़ाने की प्रतिज्ञा करता हूं।

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ आहुति करके आठ आज्याहुति दी जाएं—

ओं भूरग्नये स्वाहा।

[illegible] इसके पीछे वर सौभाग्य की वृद्धि देवे। ऐसे होने पर वर स्वयं से उठ पूर्वाभिमुख बैठी हुई कन्या के पीछे प्रदक्षिणाकृति खड़ा रहके अपने वामहस्त से वधू का दाहिना हाथ ऊपर करके पकड़ को उठाना और अपने दक्षिण हाथ से वधू के उठाए हुए दक्षिण हस्ताञ्जलि अंगुष्ठ सहित चौथी ग्रहण करके पढ़े—

पाणि ग्रहण के मन्त्र— गृभ्णामि त्वा दुर्गार्हपत्याय।

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ १ ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ३६ ॥

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ २ ॥
धर्मेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः शतम् ॥ ३ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्। तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव

हे वरानने! जैसे मैं (सौभागत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूँ तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को प्राप्त सुखपूर्वक (यासः) हो तथा हे वीर! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आप के हस्त को ग्रहण करती हूं आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये आप को मैं और मुझ को आप आज से पतिपत्नीभाव करके प्राप्त हुए हैं (भगः) सकल ऐश्वर्ययुक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति का कर्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्त्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुये विद्वान् लोग (गार्हपत्याय) गृहाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं आज से मैं आपके हस्ते और आप मेरे हाथ बिक चुके हैं कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे।

† हे प्रिये! (भगः) ऐश्वर्ययुक्त मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण करता हूँ तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत्) ग्रहण कर चुका हूं (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी—भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरा (गृहपतिः) गृहपति हूँ, आपे दोनों मिल के घर के कामों की सिद्धि करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उसको कभी न करें जिससे घर के सब काम सिद्ध उत्तम सन्तान ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे॥

हे अनघे! (बृहस्पतिः) सब जगत् को पालन करनेहारे परमात्मा ने जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है। (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पोष्या) पोषण करने योग्य पत्नी (अस्तु) हो, हे (प्रजावति) तू (मया पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद्ऋतु अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त (शं जीव) सुखपूर्वक जीवन कर। जैसे ही वधू भी वर से प्रतिज्ञा करावे। हे भद्रवीर! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हो मेरे लिये आपके बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी पालन करनेहारा सेव्य इष्टदेव कोई नहीं है न मैं आप से अन्य दूसरे किसी को चाहूंगी जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी की से प्रीति न करोगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीतिभाव से न वर्त्त करूंगी आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनंद से प्राण धारण कीजिये॥

परिधत्तं प्रजया + ॥ ४ ॥ इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु * ॥ ५ ॥ अहं विष्यामि सखि रूपमस्या वेदद्दत्स्यन्मनसा कुलायम् । न स्तेयमद्मि मनसादमुच्ये स्वय अन्थानो वरुणस्य पाशान् १ ॥ ६ ॥

अथर्व० कां० १४ । अनु १ । सू० २ । मं० ४१—४६ ॥

इन पाणिग्रहण के छः मन्त्रों को बोल के पश्चात् वर, वधू की हस्तांजलि पकड़ के उठावे और उस को साथ लेके, जो (कलश) कुण्ड की दक्षिण दिशा में प्रथम स्थापन किया था उसको महीं पुरोहित, जो कलश के पास बैठा था, वर वधू के साथ २ [उसी कलश को] ले चले, यज्ञकुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करके—

॥ ६ ॥ + हे शुभानने ! जैसे (बृहस्पतेः) इस परमात्मा की सृष्टि में और उसकी तथा (कवीनाम्) [illegible] (प्रशिषा) शिक्षा में दंपति होते हैं (त्वष्टा) जैसे बिजुली सब को व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये ([illegible]) सुंदर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम्) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधात्) सिद्ध करे जैसे (सवितः) सकल जगत् की उत्पत्ति करनेहारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस तुझ (नारीम्) मुझ नर की स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इस सब से (सूर्यमिव) सूर्य की किरणों के समान तुझ को वस्त्र और आभूषणादि से सुशोभित सदा रक्खूंगा तथा (ते) आप की मैं इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण करके (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनंदित रक्खूंगी ॥

* हे मेरे सम्बंधी लोगो ! जैसे (इंद्राग्नी) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अंतरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करनेहारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सब से बड़ा परमात्मा और (सोमः) चंद्रमा तथा सोमलतादि ओषधीगण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं वैसे (इमां नारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयंतु) बढ़ाया करो जैसे मैं इस स्त्री की प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस मेरे पति को सदा आनंद ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूंगी जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिल के गृहाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें ॥

१ हे कल्याणकोदे जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इस तेरे (रूपम्) रूप को (विष्यामि) प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूं वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त होके अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उदमुच्ये) छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाद्मि) भोग नहीं करता हूं (स्वयं) आप (अन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी (वरुणस्य) उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनरूप (पाशान्) बंधनों को दूर करता रहूं वैसे (इत्) ही वह वधू भी किया करे इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इस प्रकार आप से वर्त्ता करूंगी ।

[illegible] दक्षिणा करके मन्त्र पढ़े—

ओं अमोऽहमस्मि सा त्वꣳ सा त्वमस्यमोऽहम् । सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै । प्रजां प्रजनयावहै पुत्रान विंदावहै बहून । ते सन्तु जरदष्टयः संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम ॥ १७ ॥ पार० कां० १ । कं० ६ ॥

इन प्रतिज्ञा मन्त्रों से दोनों प्रतिज्ञा करके, पश्चात् वर, वधू के पीछे रह के वधू के दक्षिण ओर समीप में जा उत्तराभिमुख खड़ा रहके वधू की दक्षिणाञ्जलि अपनी दक्षिणांजलि से पकड़ के दोनों खड़े रहें, और वह पुरुष पुनः कुंड के दक्षिण में कलश लेके बैठे वैसे तत्पश्चात् वधू की माता अथवा भाई जो प्रथम धानल और ज्वार की धाणी सूप में रक्खी थी उसको बायें हाथ में ले के दहिने हाथ से वधू का दक्षिण पग उठवा के पत्थर की शिला पर चढ़वावे और उस समय वर—

प्रथम परिक्रमा (लाजा होम फेरे)

शिला रोहण के मंत्र—

ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वꣳ स्थिरा भव । अभितिष्ठ पृतन्यतोऽवबाधस्व पृतनायतः ॥१॥ पा० का० १ । कं० ७ ॥

अर्थ—हे देवी तुम इस शिला पर पैर रखो, शिला की तरह अपने नियमों पर अटल रहो, कलह कार्यों को शिला की नाईं दबा दो, सेना के द्वारा लड़ने वालों को भी दबा दो।

इस मन्त्र को बोले तत्पश्चात् वधू वर कुण्ड के समीप आके पूर्वाभिमुख दोनों खड़े रहें और यहां

---

* हे वधू जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करने वाला (अस्मि) होता हूं वैसे (सा) सो (त्वम) तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करनेहारी (असि) है जैसे (अहम्) मैं अपने पूर्ण प्रेम से तुमको (अमः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम) तू मुझको भी ग्रहण करती है (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं हे वधू तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है (त्वम) तू (पृथिवी) पृथिवी के समान गंभीर गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करनेहारी है और मैं (द्यौः) वर्षा करनेहारे सूर्य के समान हूँ वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें (सह) साथ मिल के (रेतः) वीर्य को (दधावहै) धारण करें (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजनयावहै) उत्पन्न करें (बहून) बहुत (पुत्रान) पुत्रों को (विंदावहै) प्राप्त होवें (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) अवस्था के अंत तक जीवनयुक्त (सन्तु) रहें (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) दूसरे को रुचिकर एक (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम) सौ (शरदः) शरदऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यंत एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यंत आनंद से (जीवेम) जीते रहें और (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यंत प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें।

वधू दक्षिण ओर रह के अपनी हस्ताञ्जलि को वर की हस्ताञ्जलि पर रक्खे, तत्पश्चात् [illegible] वर वधू के हाथों के नीचे धाणी का सूपड़ा पकड़ के खड़ा रहा हो वह धाणी का सूपड़ा भूमि पर धर देवता किसी के हाथ में देके जो वधू वर की एकत्र की हुई अर्थात् नीचे वर की और ऊपर वधू की हस्ताञ्जलि है उसमें प्रथम थोड़ा घृत सिंचन करके पश्चात् प्रथम सूप में से दहिने हाथ की अञ्जलि से दो बार ले के वर वधू की एकत्र की हुई अञ्जलि में धाणी डाले पश्चात् उस अञ्जलिस्थ धाणी पर थोड़ासा घी सिञ्चन करे पश्चात् वधू वर की हस्ताञ्जलि सहित अपनी हस्ताञ्जलि को आगे से नमा के—

(लाजा होम) के मंत्र—

ओं अर्यमणं देवं कन्या अग्निमयक्षत । स नो अर्यमा देवः
प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा ॥ इदमर्यम्णे अग्नयेइदन्न मम ॥१॥

अर्थ—कन्या न्यायकारी प्रकाशक भगवान की पूजा करती है, वह अर्यमा (न्यायकारी) देव मुझ दुःखों से छुड़ावे, पति से अलग न करे।

लाज होम का द्वितीय मंत्र—

ओं इयं नार्युप ब्रूते लाजानावपन्तिका । आयुष्मानस्तु मे
पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—यज्ञ में खीलें डाली हुई, यह नारी कहती है, मेरा पति दीर्घायु हो, मेरे पारिवारिक जन विज्ञान आदि में बढ़ें।

लाज होम का तीसरा मंत्र—

ओं इमाँल्लाजा नावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव । मम तुभ्यं च
संवननं तदग्निरनुमन्यतामिय ५ स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥३॥

अर्थ—इन खीलों को आग में छोड़ती हूं, भगवान आपकी वृद्धि करे, मेरा आपका प्रेम बना रहे, भगवान हमारी सहायता करें।

इन तीन मन्त्रों में एक २ मन्त्र से एक २ बार थोड़ी २ धाणी की आहुति तीन बार प्रज्वलित ईंधन पर देके कर—

हस्तांजलि ग्रहण का मंत्र—

ओं सरस्वति प्रदवम सुभगे वाजिनीवति । यान्त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायाअस्यग्रतः ।
यस्यांभूत ५ समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत् । तमद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ॥

पार० १।१७॥

अर्थ—हे ज्ञान वाली, अन्न वाली, सौभाग्यवती इस यज्ञ की रक्षा कर, इस संसार के उत्पन्न होने

[illegible] पूत उत्पन्न होवे वा रहते हैं, मैं आज उस गाथा को गाऊँगा जो स्त्रियों के लिए उत्तम यश है। इस मन्त्र में प्रकृति का दृष्टांत देकर स्त्री का महत्व प्रकट किया है।

इस मन्त्र को बोल के अपने दहिने हाथ से वधू की हस्तांजलि पकड़ के वर—

हस्तांजलि ग्रहण के पश्चात बोलने के मंत्र—

ओं तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतु ना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ ऋ० १०। ८५। ३८॥

अर्थ—तुम्हारी आज्ञा पालने करने के लिए इसे प्राप्त किया है आगे चलाया है—सूर्य की तरह कांति वाली को पति साथ ले चला है। पुनः मुझ पति के लिए प्रजा सहित हे भगवन्! आप प्रदान कीजिए।

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट।
कन्या उतत्वया वयं धारा उदन्या इवाति गाहेमहि द्विषः ॥२॥ मं० ब्रा० १।२।५॥

अर्थ—यह कन्या पितृ गृह से पति के घर को जाती है, पति सम्बन्धी दीक्षा को प्राप्त कर चुकी है। हे भगवन! इस कन्या द्वारा हम दोनों जल की धाराओं की तरह मिलकर द्वेषादि को नष्ट कर सकें।

इन मन्त्रों में को पढ़ यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर मुख करके थोड़ी देर दोनों खड़े रहैं, पत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार कलश सहित यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा कर पुनः दोबार इसी प्रकार अर्थात् सब मिल के ४ (चार) परिक्रमा करके अन्त में यज्ञकुण्ड के पश्चिम में (थोड़ा ठहरे रह के उक्त रीति से चार वार क्रिया पूरी हुए पश्चात् यज्ञकुण्ड से पश्चिम भाग में) पूर्वाभिमुख वधू वर खड़े रहें। पश्चात् वधू को मा अथवा भाई उस सूप को तिरछा करके उस में बाक़ी रही हुई धाणी को वधू की हस्ताञ्जलि में डाल देवे पश्चात—

ओं भगाय स्वाहा * । इदं भगाय-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के प्रज्वलित अग्नि पर वेदी में उस धाणी की एक आहुति देवे। पश्चात् वधू को दक्षिण भाग में रख के कुण्ड के पश्चिम पूर्वाभिमुख बैठ के—

ओं प्रजापतये स्वाहा † ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र को बोल के स्रुवा से एक घृत की आहुति देवे तत्पश्चात् एकान्त में जा के वधू के बन्धे हुए केशों को वर—

केश मोचन मन्त्रः—

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् येनत्वा बध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सहपत्या दधामि ॥ १ ॥

* पारस्कर के अनुसार यह आहुति वधू देती है। कां० १। कं० ७॥

† पारस्कर कां० १। कं० ७॥

अर्थ—मैं तुम्हें वरुण के बन्धन से छुड़ाता हूं, जिस से तुम को ऐश्वर्य, [illegible] सत्य के स्थान में तथा सुकृत के स्थान में क्लेश रहित तुझ को पति के साथ युक्त करता हूं।

प्रेतो मुंचामि नामतस्सुबद्धाममुतस्करं ।
यथेयमिन्द्र मिद्वः सुपुत्रा सुभगासती ॥ २ ॥ ऋ० १०। ८५ ॥

अर्थ—दुःखों से छुड़ाता हूं पुण्य वा सुखों से नहीं । इस पति के साथ सुबद्ध करता हूं। हे इन्द्र के समान पति तुम ऐसा व्यवहार करो जिससे यह सौभाग्यवती तथा सुन्दर प्रजा वाली होवे ॥

इन मन्त्रों को बोल के प्रथम वधू के केशों को छोड़—तत्पश्चात् सभामण्डप में आके सप्तपदी विधि का आरम्भ करे, इस समय वर के उपवस्त्र के साथ वधू के उत्तरीय वस्त्र की गांठ देनी इसे जोड़ा कहते हैं। वधू वर दोनों जने आसन पर से उठके वर अपने दक्षिण हाथ से वधू की दक्षिण हस्ताञ्जलि पकड़ के अग्नि कुण्ड के उत्तर भाग में जावें, तत्पश्चात् व अपना दक्षिण हाथ वधू के दक्षिण स्कन्धे पर रख के दोनों समीप २ उत्तराभिमुख खड़े रहें तत्पश्चात् वर—

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम

अर्थ—'वाम पांव से दक्षिण का उल्लंघन मत करो।' ऐसा बोल के वधू को उसका दक्षिण पग उठवा के चलने के लिए आज्ञा देनी और—

प्रथम बार चलना—

ओं इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा
नयतु पुत्रान् विंदावहै बहूंते संतु जरदष्टयः ॥ १ ॥

अर्थ—ज्ञान वा अन्न के लिए एक पांव चलो, मेरे अनुकूल व्रत वाली बनो, प्रभु तुम को मेरे साथ प्राप्त करावे। उस की कृपा से बहुत पुत्रों को प्राप्त करें, वे चिरंजीवी होवें।

वर अपने साथ वधू को लेकर ईशान दिशा में एक पग चले और चलावे । वधू पटली तक अपना बायां पांव रखे, जरा पीछे बायां—इसी को एक पग जानना ।

दूसरा पांव चलना—

ऊर्जे द्विपदी भव० ॥ बल के लिए दूसरा पांव चलो शेषं पूर्ववत् । इस मंत्र से दूसरा ।

तीसरा पांव चलना—

रायस्पोषाय त्रिपदी भव० ॥ धन की पुष्टि के लिए तीसरा पांव चलो । इस मंत्र से तीसरा ।

चौथा पांव चलना—

मयोभवाय चतुष्पदीभव० ॥ आनंद के लिए चौथा पांव चलो । इस मंत्र से चौथा ।

पांचवां पांव चलना—

प्रजाभ्यः पंचपदी भव० सुप्रजा के लिए पांचवां पांव चलो । इस मंत्र से पांचवां ।

छटा पांव चलना—

ऋतुभ्यः षट् पदी भव० ऋतु अनुकूल व्यवहार के लिए छठा पांव चलो । इस मंत्र से छठा पग ।

सातवां पांव चलना—

सखे सप्तपदी भव* सखे मित्रता के लिए सातवां पांव चलो। पार० कां० १। कं० ८॥

इस मंत्र से सातवां पगला चलना। इस रीति से इन सात मंत्रों से सात बार ईशान दिशा में चला के वधू वर दोनों गांठ बांधे हुए शुभासन पर बैठें। तत् पश्चात् प्रथम से जो जल के कलश को लेके यज्ञ कुण्ड की दक्षिणा की ओर में बैठाया था वह पुरुष उस पूर्व स्थापित जल कुंभ को लेके वधू वर के सन्मुख आवे और उस में से थोड़ा सा जल लेके वधू वर के मस्तक पर छिड़कावें और वर—

ओं आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥ ऋ० मण्ड० १० । सू० ९ । मं० १–३ ॥ ओं आपः शिवाः शिवतमाः शान्ततमास्तेकृण्वन्तु भेषजम् ॥ ४ ॥

इन चार मन्त्रों को बोले। तत्पश्चात् वधू वर वहां से उठ के—

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १ ॥

य० अ० ३६ । मं० २४ ॥

इस मन्त्र को पढ़ के सूर्य का अवलोकन करें। तत्पश्चात वर, वधू के दक्षिण स्कन्धे पर से अपना दक्षिण हाथ ले के उस से वधू का हृदय स्पर्श करके—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् † पार० कां० १। कं० ८॥

इस मन्त्र को बोले, और उसी प्रकार वधू भी अपने दक्षिण हाथ से वर के हृदय का स्पर्श करके इसी ऊपर लिखे हुए मन्त्र को बोले ॥

---

* भव के आगे पहला मन्त्र पूरा पढ़ें ॥

† हे वधू! (ते) तेरे (हृदयम्) अंतःकरण और आत्मा को (मम) मेरे (व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्रचित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाला परमात्मा (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मेरे लिये (नियुनक्तु) नियुक्त करे ॥

अब वधू वरको कहे हे प्रियवीर स्वामिन्! आपका हृदय आत्मा और अन्तःकरण मेरे प्रियाचरण कर्म में धारण करती हूं। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे आप एकाग्र हो के मेरी वाणी का—जो कुछ मैं आप से कहूं उसका—सेवन

तत्पश्चात् वर, वधू के मस्तक पर हाथ धरके:—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

ऋ० मण्ड० १० । सू० ८५ । मं० ३३ ॥

अर्थात् यह वधू मंगल युक्त है, सब कल्याण की दृष्टि से देखो, इस के लिए सौभाग्य की कामना करो अपने घरों को जाओ और कोई विपरीत कार्य मत करो।

इस मंत्र को बोल के कार्यार्थ आए हुए लोगों की ओर अवलोकन करवा और इस समय सब लोग आशीर्वाद का वाक्य—

सौभाग्यमस्तु शुभं भवतु

सौभाग्य होवे, शुभ हो।

इस वाक्य से आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वधू वर यज्ञकुण्ड के समीप पूर्ववत् बैठ के पूर्व लिखे प्रमाणे दोनों (ओं यदस्य कर्मणो०) इस स्विष्टकृत् मन्त्र से होमाहुति अर्थात् एक आज्याहुति और

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से एक २ से एक,२ आहुति करके ४ (चार) आज्याहुति देवें और इस प्रमाणे पूर्वविधि के पूरे हुए पश्चात् दोनों जने आराम अर्थात् विश्राम करें। इस रीति से थोड़ा सा विश्राम ले के उत्तरविधि करें। यह उत्तरविधि सब वधू के घर की ईशान दिशा में विशेष करके एक घर प्रथम बना हो वहां जाके करनी। तत्पश्चात् सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय वधू वर यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें और पृष्ठ २० में लि० अग्न्याधान (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से करें। यदि प्रथम ही सभामण्डप ईशान दिशा में हुआ और प्रथम अग्न्याधान किया हो तो अग्न्याधान न करें। (ओं अयन्त इध्म०) इत्यादि ४ मन्त्रों से समिदाधान करके जब अग्नि प्रदीप्त होवे तब पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ आश्वला० गृ०-अ० १ । कं० १० । सू० १३ ॥

इत्यादि ४ (चार) मन्त्रों से आघारावाज्यभागाहुति ४ चार) और

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥

इत्यादि ४ (चार) मन्त्रों से ४ चार) व्याहृति आहुति ये सब मिल के ८ (आठ) आज्याहुति देवें। तत्पश्चात् प्रधान होम निम्नलिखित मन्त्रों से करें:—

दादा किया कीजिये। क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने आप को मेरे आधीन किया है। जैसे मुझ को आप के आधीन किया है। अर्थात् इस प्रतिज्ञा के अनुकूल दोनों वर्ता करें, जिस से सर्वदा आनन्दित और कीर्तिमान् पतिव्रता और जीवत पुत्र सब प्रकार के व्यभिचार अप्रियभाषणादि को छोड़ के परस्पर प्रीतियुक्त रहें ॥

ओं लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वावरोकेषु * च यानि ते । तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि कल्पयामहं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै-इदन्न मम ॥१॥ ओं केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रदिते च यत् । तानि० ॥२॥ ओं शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत् । तानि० ॥३॥

ओं आरोकेषु दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत् । तानि० ॥४॥ ओं ऊवोरुदरे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते । तानि० ॥५॥ ओं यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तमाग्नेऽहम् पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमं स्वाहा ॥ इदं कन्यायै-इदन्न मम ॥६॥

मं० ब्रा० १ । ३ । १–६ ॥

अर्थ—हे देवि जो तुम्हारे रेखा की संधियों में तथा पलकों में नाभि आदि में जो कोई भी दोष है उसको दूर करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूं ॥ १ ॥ केशों में या देखने आदि में जो दोष ॥ २ ॥ स्वाभाव में, भाषण में, हँसने में ॥ ३ ॥ दांतों में, हाथ प्रांव में ॥ ४ ॥ संधान तथा उरु आदि प्रदेशों में ॥ ५ ॥ जो भी कोई किसी भी अंग में दोष है मैं उसको दोष नाशक पूर्णाहुति की तरह दूर करने का प्रण करता हूं ॥ ६ ॥

ये छः मन्त्र हैं इनमें से एक २ मन्त्र बोल छः आज्याहुति देनी । तत्पश्चात्

ओं भूरग्नये स्वाहा

इत्यादि ४ (चार) व्याहृति मन्त्रों से ४ (चार) आज्याहुति देके वधू वर वहां से मण्डप के बाहर उत्तर दिशा में जावें । तत्पश्चात् वर—

ध्रुव दर्शन—

ध्रुवं पश्य—ध्रुव देखो ।

ऐसा बोलके वधू को ध्रुव का तारा दिखलावे(१) और वधू वर से बोले कि मैं

पश्यामि ॥ ध्रुव के तारे को देखती हूं तत्पश्चात् वधू बोले

वधू मंत्र—

ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासं अमुष्यै* असौ । गो० प्र० २ सं ३ ॥

---

* सं० १९४१ की संस्कारविधि में "पक्ष्मावारोकेषु" पाठ है ॥

(१) हे वधू वा वर जैसे यह ध्रुव दृढ़ स्थिर है इसी प्रकार आप और मैं एक दूसरे के प्रियाचरणों में दृढ़ स्थिर रहें ॥

* (अमुष्यै) इस पद के स्थान में षष्ठीविभक्त्यन्त पति का नाम बोलना, जैसे—शिवशर्मा पति का नाम हो तो "शिवशर्मणः" ऐसा और (असौ) इस पद के स्थान में वधू अपने नाम को प्रथमाविभक्त्यन्त बोल के इस मंत्र वाक्य को पूरा बोले, जैसे "भूयासं शिवशर्मणस्तव सौभाग्यदहम्" इस प्रकार दो दो पद जोड़ के बोले ॥

[illegible]

अरुन्धतीं पश्य—अरुन्धती को देखो।

ऐसा कहने के पश्चात् वधू को अरुन्धती का आशा दिखलावे और वधू— [illegible] परमात्मा देखती हूं। ऐसा कहके—

ओं अरुन्धत्यसि† सदाहमस्मि (अमुष्यः असौ×)

जैसे यह तारा नियम में बन्धा हुआ है वैसे मैं भी पति के साथ नियमों से बन्धगई हूं।

मूल मन्त्र को बोल के (वर) वधू की ओर देख के वधू के मस्तक पर हाथ करके—

ओं ध्रुवा द्यौ ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेयम् * ॥ पा० १। ६। ६॥

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि। मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावती संजीव शरदः शतम् † पार० कां० १। कं० ८॥

---

† "अरुन्धत्यसि" इतना पाठ गोभिल में नहीं॥

(अमुष्य) इस पद के स्थान में पति का नाम षष्ठ्यंत और (असौ) इसके स्थान में वधू का प्रथमांत नाम जोड़ कर बोले "हे स्वामिन्! सौभाग्यदा (अहम्) मैं (अमुष्य) आप शिवशर्मा की अर्द्धाङ्गी (पतिकुले) आपके कुल में (ध्रुवा) निश्चल जैसे कि आप (ध्रुवम्) दृढ़ निश्चय वाले मेरे स्थिर पति (असि) हैं वैसे मैं भी आपकी स्थिर दृढ़ पत्नी (भूयासम्) होऊं॥

× गोभिल गृ० प्र० २। खं० ३। सू० १०॥

* हे वरानने! जैसे (द्यौः) सूर्य की कांति वा विद्युत् (ध्रुवा) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे (पृथिवी) भूमि अपने स्वरूप में (ध्रुवा) स्थिर जैसे (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) संसार प्रवाहस्वरूप में (ध्रुवम्) स्थिर है जैसे (इमे) ये प्रत्यक्ष (पर्वताः) पहाड़ (ध्रुवासः) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे (इयम्) यह तू मेरी (स्त्री) (पतिकुले) मेरे कुल में (ध्रुवा) सदा स्थिर रहे।

† हे स्वामिन्! जैसे आप मेरे समीप (ध्रुवम्) दृढ़ संकल्प करके स्थिर (असि) हैं या जैसे मैं (त्वा) आपको (ध्रुवम्) स्थिर दृढ़ (पश्यामि) देखती हूँ वैसे ही सदा के लिये मेरे साथ आप दृढ़ रहियेगा क्योंकि मेरे मन के अनुकूल (त्वा) आपको (बृहस्पतिः) परमात्मा (अदात्) समर्पित कर चुका है वैसे मुझ पत्नी के साथ उत्तम प्रजायुक्त होके (शतं शरदः) सौ

इन मन्त्रों को बोले। [illegible] वधू और वर [illegible] के [illegible] आगे [illegible] के समीप बैठें और—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ आचमन करके तीन २ आचमन दोनों करें। पश्चात् पृष्ठ १८ में लिखी हुई समिधाओं से यज्ञकुण्ड में अग्नि को प्रदीप्त करके पृष्ठ १६ में लिखे० घृत और स्थालीपाक अर्थात् भात को उसी समय बनावें। पृष्ठ २०-२१ में लिखे प्रमाणे "ओम् अयन्त इध्म०" इत्यादि चार मन्त्रों से समिधा होम दोनों जने करके पश्चात् पृष्ठ २२ में लिखे, प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति चार दोनों मिलके ८ (आठ) आज्याहुति वर वधू देवें। तत्पश्चात् जो ऊपर सिद्ध किया हुआ ओदन अर्थात् भात उसको एक पात्र में निकाल के उसके ऊपर स्रुवा से घृत सेवन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिलाकर दक्षिण हाथ से थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने ले के—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम। ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः—इदन्न मम। ओम् अनुमतये स्वाहा ॥ इदमनुमतये—इदन्न मम ॥

इन में से प्रत्येक मन्त्र से एक २ करके ४ (चार) स्थालीपाक अर्थात् भात की आहुति देनी। तत्पश्चात् पृष्ठ २८ में लिखे (ओं यदस्य कर्मणो०) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति देनी। तत्पश्चात् पृष्ठ २८ में लि० प्रमाणे व्याहृति आहुति ४ (चार) और पृष्ठ २६-३० में लिखे० अष्टाज्याहुति ८ (आठ) दोनों मिलाके १२ (बारह) आज्यहुति देनी। तत्पश्चात् शेष रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल के उस पर घृत सेचन और दक्षिण हाथ रख के:—

ओं अक्षपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते * ॥ १ ॥ ओं यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं

वर्ष पर्यन्त (सम्, जीव) जीविये तथा हे वरानने पत्नी (पोष्ये) धारण और पालन करने योग्य (मयि) मुझ पति के निकट (ध्रुवा) स्थिर (एधि) रह (मह्यम्) मुझ को अपनी (मनसा) के अनुकूल तुझे परमात्मा ने दिया है। तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (प्रजावती) बहुत उत्तम प्रजायुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त आनंदपूर्वक जीवन धारण कर। वधू वर ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि जिससे कभी उलटे विरोध में न चलें।

* हे वधू वर! जैसे अन्न के साथ प्राण, प्राण के साथ अन्न तथा अन्न और प्राण का अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध है वैसे (ते) तेरे (हृदयम्) हृदय (च) और (मनः) मन (च) और चित्त आदि को (सत्यग्रन्थिना) सत्यता की गाँठ से (बध्नामि) बाँधती वा बाँधता हूँ।

[illegible] ॥ ओं अयमारगस्य षड्विंशस्तेन बध्नामि त्वा असौ ॥ ३ ॥

मं० ब्रा० १ । ३ । ८–१० ॥

इन तीनों मन्त्रों को मन से जप के वर उस भात में से प्रथम थोड़ा सा भक्षण करावे जो उच्छिष्ट शेष भात रहे वह अपनी वधू के लिये खाने को देवे और जब वधू उस को खा चुके तब वधू वर यज्ञमण्डप में समृद्ध हुए शुभासन पर नियम प्रमाणे पूर्वाभिमुख बैठें और पृष्ठ २६-२७ में लि० प्रमाणे सामवेदोक्त महा-सामदेव्यगान करें। तत्पश्चात् लिखे प्रमाणे ईश्वर की स्तुति, प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्ति-प्रकरण कर्म करके क्षार लवण रहित मिष्ट दुग्ध घृतादि सहित भोजन करें। तत्पश्चात् पहले लिखे प्रमाणे पुरोहितादि सद्धर्मी और कार्यार्थ इकट्ठे हुए लोगों को सम्मानार्थ उत्तम भोजन कराना। तत्पश्चात् यथायोग्य पुरुषों का पुरुष और स्त्रियों का स्त्री आदर सत्कार करके विदा कर देवें। तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि में बिछौना करके तीन रात्रिपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रहकर शयन करें, और ऐसा भोजन करें कि स्वप्न में भी वीर्यपात न होवे। तत्पश्चात् चौथे दिवस विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार करें। यदि चौथे दिवस कोई अड़चन आवे तो अधिक दिन ब्रह्मचर्यव्रत में दृढ़ रह कर जिस दिन दोनों की इच्छा हो और पृष्ठ २६ में लिखे प्रमाणे गर्भाधान की रात्रि भी हो उस रात्रि में यथाविधि गर्भाधान करें। तत्पश्चात् दूसरे का तीसरे दिन प्रातःकाल वरपक्षवाले लोग वधू और वर को रथ में बैठा कर बड़े सम्मान से अपने घर में लावें और जो वधू अपने माता पिता के घर को छोड़ते समय आंख में अश्रु भर लावे तो—

रुदन निवारण मंत्र—

जीवं रुदन्ति विस्मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो स इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥ ऋ० मं० १० । सू० । ४० । मं० १० ॥

अर्थ—जो मनुष्य जीवों को रोने से हटाते हैं अर्थात् हंसाते हैं, गृहस्थ के इस लंबे मार्ग को प्राप्त करते हैं। जैसे इस देवी ने पितृकुल को उज्वल किया है। वैसे ही ये देवियें पति के लिए आनन्द प्रदान करती हैं।

इस मंत्र को वर बोले और रथ में बैठते समय वर अपने साथ दक्षिण बाजू वधू को बैठावे उस समय में वर—

---

† हे वर हे स्वामिन् वा हे पत्नी ! (यदेतत्) जो यह (तव) तेरा (हृदयम्) आत्मा वा अन्तःकरण है (तत) वह (मम) मेरा (हृदयम्) आत्मा अंतःकरण के तुल्य प्रिय (अस्तु) हो और (मम) मेरा (यदिदम्) जो यह (हृदयम्) आत्मा प्राण और मन है (तत) सो (तव) तेरे (हृदयम्) आत्मादि के तुल्य प्रिय (अस्तु) सदा रहे ॥

(असौ) हे यशोदे ! जो (प्राणस्य) प्राण का पोषण करने हारा (षड्विंशः) छब्बीसवां [illegible] (अयम्) अज है (तेन) उस से (त्वा) तुझ को (बध्नामि) दृढ़ प्रीति से बांधता वा बांधती हूं ॥ (ओम्)

रथ के चलाते समय के मंत्र—

पूषा त्वेतोनयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृह पत्नी यथा सो वशिनी त्वं विदथमावदासि ॥१॥

अर्थ—पोषक पति तुमको यहां से ले जाता है पकड़ कर घोड़े अथवा विद्युतादि तुमको रथ के द्वारा भली प्रकार ले जावेंगे। हे गृह देवि घर को चलो तुम अपने मधुर वचन वा व्यवहार से सब को वश में प्रसन्न करो॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥ मं० १० सू० ८५ मं० २६॥

अर्थ—हे प्रिये सुन्दर साधनों से बने हुए सुन्दर रूप वाले चमकीले रथ पर तू चढ़ तथा अनेक प्रकार के शुभगुणों से इस पति का मंगल साधन कर। इन दो मन्त्रों को बोल के रथ को चलावे यदि वधू को वहां से अपने घर लाने के समय नौका पर बैठना पड़े तो इस निम्नलिखित मंत्र को पूर्व बोल के नौका पर बैठे—

नौका पर चढ़ते समय का मंत्रः—

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।

और नाव से उतरते समय

अत्राजहाम येऽसन्नशेवाः शिवान वयमुत्तरेमाभि वाजान ॥ ऋ० १०। ५५। ८॥

अर्थ—यह पत्थरों वाली नदी है इस को पार करो, मित्र बन कर उठो तथा तेरे जो कल्याण नाशक भाव हैं, उन को यहीं छोड़ दो मंगलदायी भावों को वस्तुओं को लेकर चलो।

इस उत्तरार्द्ध-मन्त्र को बोल के नाव से उतरे पुनः इसी प्रकार मार्ग चलने में मार्गों का संयोग नदी व्याघ्र चोर-आदि से भय वा भयंकर स्थान ऊंचे नीचे खाड़ा वाली पृथिवी बड़े २ वृक्षों का झुंड वा श्मशान भूमि आवे तो—

भय निवारण का मंत्र—

माविदन परिपंथिनो य आसीदंति दंपती।
सुमेभिर्दुर्गमतीता मप द्रात्वरातयः ऋ० १०। ८५–३२॥

अर्थ—जो वर कन्या को दुःख देने वाले विरोधी हैं वे इन को न जाने या न प्राप्त होवें। दुष्ट लोग दूर भाग जावें, सुगम मार्गों से ये आनन्द से घर पहुंच जावें।

इस मन्त्र को बोले। तत्पश्चात् वधू वर जिस रथ में बैठके जाते हों उस रथ का कोई अंग टूट जाय अथवा किसी प्रकार का आकस्मात् उपद्रव होवे तो मार्ग में कोई अच्छा स्थान देख के निवास करना और साथ रक्खे हुए विवाहाग्नि को प्रगट करके उसमें सा० प्र० में लिखे प्रमाणे ४ चार (व्याहृति) आज्या-

हुति देनी। पश्चात् सा० प्रकरण में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करना। पश्चात् जब वधू वर का रथ वर के घर के आगे आगे आ पहुंचे तब कुलीन पुत्रवती सौभाग्यवती वा कोई ब्राह्मणी वा अपने कुल की स्त्री आगे सामने आकर वधू का हाथ पकड़ के वर के साथ रथ से नीचे उतारे और वर के साथ सभामण्डप में लेजावे सभामण्डप द्वार आते ही वर वहां कार्यार्थ आये हुए लोगों की ओर अवलोकन करके—

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं वि परेतन ॥ १ ॥

ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ३३॥

इस मन्त्र को बोलें और आये लोग—

ओं सौभाग्यमस्तु, ओं शुभं भवतु।

इस प्रकार आशीर्वाद देवें। तत्पश्चात् वरः—

वधू को सभामण्डप लेजाते समय का मंत्र—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं-सं सृजस्वाधा जिव्री वि दथमा वदाथः ॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० २७॥

अर्थ—इस घर की प्रजा अथवा रहने वालों से आपका प्रेम हो, इस घर में हर कृत्यों के लिए जागती रहो। इस पति से अत्यन्त प्रेम करो, इस पति के लिए मङ्गलकारक मीठे वचन बोलो।

इस मन्त्र को बोल के वधू को सभामण्डप में ले जावे तत्पश्चात् वधू वर पूर्व स्थापित यज्ञ कुण्ड के समीप जावें उस समय वर—

आसन पर बैठते समय बोलने का मंत्र—

इहगाव प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहोसहस्र दक्षिणोपिपूषा निषीदतु ॥

अ० २०। ११७॥

अर्थ—इस घर में गौएं हों, घोड़े हों, श्रेष्ठ प्रजाएं हों तथा सहस्रों दक्षिणा देता हुआ मैं पति इस घर में रहूं।

इस मन्त्र को बोल के यज्ञकुण्ड के पश्चिम भाग में पीठासन अथवा तृणासन पर वधू को अपने दक्षिण भाग में पूर्वाभिमुख बैठावे। तत्पश्चात् **ओं अमृतोपस्तरणमसि**

इत्यादि तीन मन्त्रों से एक २ से एक २ करके तीन २ आचमन करें। तत्पश्चात् पृ० १८ में लिखे प्रमाणे कुण्ड में यथाविधि समिधायचन अग्न्याधान करें। जब उसी कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित हो तब उस पर घृत सिद्ध करके पृ० २१ में लिखे प्रमाणे समिदाधान करके प्रदीप्त हुए अग्नि में पृष्ठ २२ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) अष्टाज्याहुति ८ (आठ) सब मिल के १६ (सोलह) आज्याहुति वधू वर करके प्रधान होम का प्रारम्भ निम्नलिखित मन्त्रों से करें।

ओं इह धृतिः स्वाहा ॥ इदमिह धृत्यै–इदन्न मम । ओं इह स्वधृतिस्वाहा ॥ इदमिह स्वधृत्यै–इदन्न मम । ओं इह रन्तिः स्वाहा ॥ इदमिह रन्त्यै–इदन्न मम । ओं इह रमस्व स्वाहा ॥ इदमिह रमाय–इदन्न मम । ओं मयि धृतिः स्वाहा ॥ इदं मयि धृत्यै–इदन्न मम ॥ ओं मयि स्वधृतिः स्वाहा ॥ इदं मयि स्वधृत्यै–इदन्न मम । ओं मयि रमः स्वाहा ॥ इदं मयि रमाय–इदन्न मम । ओं मयि रमस्व स्वाहा ॥ इदं मयि रमाय–इदन्न मम ॥ मं० ब्रा० १ । ६ । १ । ४ ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ करके ८ (आठ) आज्याहुति देके:—

ओं आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा । अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमाविश शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे * स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै–इइदन्न मम ॥ १ ॥ ओं अघोर-चक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चा । वीरसूर्देवृकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा † ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै–इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि + स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै–इदन्न मम ॥३॥

---

* हे वधू (अर्यमा) यायकारी दयालु (प्रजापतिः) परमात्मा कृपा करके (आजरसाय) जरावस्था पर्यंत जीने के लिये (नः) हमारी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को शुभगुण कर्म और स्वभाव से (आजनयतु) प्रसिद्ध करे (समनक्तु) उस से उत्तम सुख को प्राप्त करे और वे शुभगुणयुक्त (मङ्गलीः) स्त्री सब कुटुम्बियों को आनंद (अदुः) देवें उस में से एक तू हे वरानने (पतिलोकम) पति के घर वा सुख को (आविश) प्रवेश वा प्राप्त हो (नः) हमारे (द्विपदे) पिता आदि मनुष्यो के लिये (शम) सुखकारिणी और (चतुष्पदे) गौ आदि को (शम) सुखकर्त्री (भव) हो ॥

† इस मंत्र का अर्थ पहले लिख दिया गया है।

+ ईश्वर पुरुष और स्त्री को आज्ञा देता है कि हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे (इंद्र) परमैश्वर्ययुक्त इस वधू के स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमाम्) इस वधू को (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रयुक्त (सुभगाम्) सुंदर सौभाग्य भोग वाली (कृणु) कर (अस्याम्) इस वधू में (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ, धेहि) उत्पन्न कर अधिक नहीं और हे स्त्री ! तू भी अधिक कामना मत कर किन्तु दश पुत्र और (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को प्राप्त होकर सन्तोष (कृधि) कर यदि इससे आगे सन्तानोत्पत्ति का लोभ करोगे तो तुम्हारे दुष्ट अल्पायु निर्बुद्धि सन्तान होंगे और तुम भी अल्पायु रोगग्रस्त हो जाओगे इस लिए अधिक संतानोत्पत्ति न करना तथा (पतिमेकादशं, कृधि) इस पद का अर्थ नियोग में दूसरा होगा अर्थात् जैसे पुरुष को विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा परमात्मा ने की है वैसी ही आज्ञा स्त्री को भी है। कि दश पुत्र तक चाहे विवाहित पति से अथवा विधवा हुए पश्चात् नियोग से करे करावे वैसे ही एक स्त्री के लिये एक पति से एक बार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही बार विवाह करने की आज्ञा है जैसे विधवा हुए पश्चात् स्त्री नियोग से सन्तानोत्पत्ति करके पुत्रवती होवे वैसे पुरुष भी विगत स्त्री होवे तो नियोग से पुत्रवान् होवे ॥

ओं सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव । ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु * स्वाहा ॥ इदं सूर्यायै सावित्र्यै - न्न मम ॥ ४ ॥

ऋ० मं० १० । अ० ७ । सू० ८५ । मं० ४३-४६ ॥

इन ४ (चार) मन्त्रों से एक २ से एक २ करके ४ (चार) आज्याहुति दे के सा० प्र० में लिखे प्रमाणे स्विष्टकृत होमाहुति १ (एक) व्याहृति आज्याहुति ४ (चार) और प्राजापत्याहुति १ (एक) से सब मिल के ६ (छः) आज्याहुति देकर—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ † ॥ ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४७ ॥

इस मन्त्र को बोल के दोनों दधिप्राशन करें । तत्पश्चात—

अहं मो अभिवादयामि ‡ ॥

इस वाक्य को बोल के दोनों वधू वर, वर की माता पिता आदि वृद्धों को प्रीतिपूर्वक नमस्कार करें । पश्चात सुभूषित होकर शुभासन पर बैठ के सा० प्र० में लिखे प्रमाणे वामदेव्यगान करके उसी समय पृ० ४-५ में लिखे प्रमाण ईश्वरोपासना करनी । उस समय कार्यार्थ आये हुए सब स्त्री पुरुष ध्यानावस्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करें तथा वधू वर, पिता, आचार्य और पुरोहित आदि को कहें कि—

ओं स्वस्ति भवन्तो ब्रवन्तु ॥ आश्व० गृ० अ० १ । कं० ८ । सू० १५ ॥

आप लोग स्वस्तिवाचन करें । तत्पश्चात् पिता आचार्य पुरोहित जो विद्वान् हों अथवा उनके अभाव में यदि वधू वर विद्वान् वेदवित् हों तो वे ही दोनों पृष्ठ ६—८ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन का पाठ बड़े प्रेम से करें । पाठ हुए पश्चात् कार्यार्थ आए हुए स्त्री पुरुष सब—

ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ओं स्वस्ति ॥

---

* हे वरानने ! तू (श्वशुरे) मेरा पिता जो कि तेरा श्वशुर है उसमें प्रीति करके (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान चक्रवर्ती राजा की राणी के समान पक्षपात छोड़ के प्रवृत्त (भव) हो (श्वश्र्वाम्) मेरी माता जोकि तेरी सासु है उसमें प्रेमयुक्त हो के उसी की आज्ञा में (सम्राज्ञी) सम्यक् प्रकाशमान (भव) रहा कर (ननान्दरि) जो मेरी बहिन और तेरी ननन्द है उसमें भी (सम्राज्ञी) प्रीतियुक्त और (देवृषु) मेरे भाई जो तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं उनमें भी (सम्राज्ञी) प्रीति से प्रकाशमान (अधि भव) अधिकारयुक्त हो अर्थात् सबसे अविरोध पूर्वक प्रीति से वर्ता कर ॥

† इस मन्त्र का अर्थ भी पहले लिख आये हैं ।

‡ इससे उत्तम (नमस्ते) यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये नित्यप्रति स्त्री, पुरुष, पिता पुत्र अथवा गुरु शिष्य आदि के लिये है । प्रातः सायं अपूर्व समागम में जब २ मिलें तब २ इसी वाक्य से परस्पर वन्दन करें ।

इस वाक्य को बोलें। तत्पश्चात् कार्यकर्त्ता पिता, चाचा, भाई आदि पुरुषों को तथा माता, चाची, भगिनी आदि स्त्रियों को यथावत सत्कार करके विदा करें। तत्पश्चात यदि किसी विशेष कारण से श्वसुरगृह में गर्भाधान संस्कार न हो सके तो वधू वर क्षार आहार और विषय तृष्णा रहित व्रतस्थ होकर पृष्ठ २६—३० में लिखे प्रमाणे विवाह के चौथे दिवस में गर्भाधान संस्कार करें अथवा उस दिन ऋतुकाल न हो तो किसी दूसरे दिन गर्भस्थापन करें और जो वर दूसरे देश से विवाह के लिये आया हो तो वह जहां जिस स्थान में विवाह करने के लिये जाकर उतरा हो उस स्थान में गर्भाधान करे। पुनः अपने घर आ के पति, सासु, श्वसुर ननन्द, देवर देवरानी ज्येठ, जेठानी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा अर्थात सत्कार करें, सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्त्तें, और मधुरवाणी वस्त्र आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट वधू को रक्खें, तथा वधू सब को प्रसन्न रक्खे और वर उस वधू के साथ पत्नीव्रतादि सद्धर्म से वर्ते, तथा पत्नी भी पति के साथ पतिव्रतादि सद्धर्म चाल चलन से सदा पति की आज्ञा में तत्पर और उत्सुक रहे, तथा वर भी स्त्री की सेवा, प्रसन्नता में तत्पर रहे।

इति विवाहसंस्कारविधिः समाप्तः॥

विवाह संस्कार महिमा

विवाह संस्कार में प्रधानतया निम्नलिखित विधियां आती हैं—

(क) वधू वर स्नान विधि।
(ख) मधुपर्क विधि।
(ग) गोदान विधि।
(घ) कन्यादान विधि।
(ङ) प्रतिज्ञा विधि।
(च) राष्ट्रभृत जयाहोम तथा अभ्यातन विधि।
(छ) पाणिग्रहण।
(ज) लाजा होम।
(झ) सप्तपदी।
(ञ) ध्रुवदर्शन।

इन्हीं विधियों का वर्णन विस्तार से संस्कार विधि में किया गया है। प्रायः आर्य नरनारी इन विधियों तथा इनकी व्याख्या से परिचित हैं तथापि हम संक्षेप से इन विधियों पर प्रकाश डालते हैं।

(१) प्रथम स्नान विधि है। इस में काम वेद० इत्यादि तीन मन्त्र आते हैं जो महत्व के मन्त्र हैं। संस्कार चन्द्रिका में इन मन्त्रों का बहुत घृणित अर्थ किया है जो त्याज्य है। हमने इनका वास्तविक अर्थ कर

दिया है। पहले मन्त्र में "काम" शब्द से वधू वर की वेदानुमोदित शुभ इच्छा का वर्णन है। इसमें यह बतलाया गया है कि जिस प्रबल शुभेच्छा से प्रेरित होकर वर वधू विवाह में आबद्ध होते हैं वह तपस्या ब्रह्मचर्य तथा विद्याबल से निर्माण की हुई है। वह इस कन्या वा वर के धर्म मार्ग में किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं डाल सकेगी। इमं ते उपस्थं० इस मन्त्र में उपस्थ शब्द आया है जिसका चन्द्रिकाकार ने अश्लील अर्थ किया है वास्तव में यहां उपस्थ शब्द के अर्थ स्त्री की गोद के हैं। जैसे गीता में लिखा है—रथोपस्थमुपाविशत्—अर्थात् अर्जुन रथ की उपस्थ अर्थात् गोद में बैठा। यहां ऋषियों ने कन्या को उपदेश दिया है कि तुम्हारी गोद को मधु से संयुक्त करता हूं। मधु के अर्थ अत्यन्त प्रीति तथा प्रेम के हैं। जब तक देवी में अत्यन्त प्रीति न हो तब तक वह अपनी सन्तान की पालना नहीं कर सकती। अग्नि क्रव्यादं० इस मन्त्र में स्त्री की गोद को मांस भक्षक अग्नि की उपमा दी गई है जैसे मांसभक्षक अग्नि सब पदार्थ खा जाती है इसी प्रकार स्त्री सन्तानोत्पत्ति वा पालन के सब क्लेशों को गोद के प्रेम के कारण भोगती है। बालक का पोषण वा उत्पत्ति स्त्री के मांस आदि से ही होता है और बालक दूध पीता है तो स्त्री को अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं।

(२) दूसरी मधुपर्क विधि है। इस में मधु की ही प्रधानता है। वेद में आता है।

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणं,
वाचावदामि मधुमत्भूयासं मधुसंदृशः ॥

मेरा व्यवहार मधुरता से युक्त हो, मेरा आश्रय मधुरता से युक्त हो। मैं वाणी से मीठे वचन बोलूँ और मैं संसार में मधु बन कर रहूँ।

जब तक गृहस्थ में आने वाला मधुर व्यवहार नहीं सीखेगा तब तक उसे कृतकार्यता नहीं हो सकती। इस लिए मधुपर्क में मधु दिया जाता है और वह प्रार्थना भी करता है कि मेरे लिए वायु, समुद्र, नदियां जल आदि मीठे हों अर्थात् चारों तरफ माधुर्य वा प्रेम का ही साम्राज्य विराजमान हो। दूसरी बात यह है कि मधुमक्षिकाएं उत्कृष्ट उद्योग द्वारा परिश्रम के साथ एक एक पुष्प में से बूंद २ मधु लाकर मधु संग्रह करती हैं। इसी प्रकार वर वा कन्या को भी अनेक स्थानों वा अनेक साधनों के द्वारा अपने जीवनोपयोगी साधनों का संग्रह करना चाहिये। तभी गृहस्थाश्रम चल सकेगा। तीसरी बात सब मिष्टान्नों में मधु का मीठा ही एक ऐसा मीठा है जो विकार युक्त रक्त को शुद्ध कर देता है अन्य सब मीठे रक्त को विकृत करने वाले हैं। अतः मधुपर्क में मधु का ही प्रयोग किया जाता है दूसरे मीठों का नहीं।

चारों दिशाओं में छींटे इस लिए दिए जाते हैं कि मधु जैसी चीज का सर्वत्र विस्तार हो और रुद्र, वसु तथा आदित्य ब्रह्मचारी भी इस के अधिकारी हैं।

(३) तीसरी गोदान विधि है। गौ के महत्व को कौन नहीं जानता। प्रत्येक आर्य गौ की जा करता है। एक वह वैदिक समय था कि विवाह करने वाले को विवाह की विधि के अनुसार अवश्यमेव घर में गौ रखनी पड़ती थी। परिणाम यह था कि भारत में दूध की नदियां बहती थीं और सारी आर्य जाती हृष्ट

पुष्ट तथा बुद्धि सम्पन्न थी। आज दूध दही घी और मक्खन के स्थान में बनावटी चीज़ें मिलती हैं और इसी कारण प्रतिदिन भारतीयों के स्वास्थ का नाश होता जा रहा है। यदि यही अवस्था रही तो एक दिन सारी जाति दुःख सागर में डूब जायगी। यदि यह विधि लोगों के आचरण में आ जावे तो अनायास ही भारत में गौ रक्षा हो सकती है।

(४) चौथी कन्यादान विधि है। इस से बढ़ कर माता पिता का त्याग हो सकता है कि प्राणों से प्यारी कन्या को पाल पोस कर, शिक्षिता कर के सदा के लिए दूसरे कुल को अर्पण कर देते हैं। यह निष्काम कर्म का महान् उदाहरण है। आज कन्यादान के महत्व को न समझ कर ही लोग कन्या विक्रय करते हैं या बालक विक्रय करते हैं—इन दोनों के द्वारा ही सारी जाति की दुर्गति हो रही है और बाल विक्रय के कारण अनेक कन्याएं आत्महत्याएं कर के मर रही हैं अथवा वैधव्य को सङ्कटमय जीवन को व्यतीत कर रही हैं।

(५) पांचवें तीन विशेष होम हैं। पहला राष्ट्रभृत होम है। इस के अर्थ यह हैं कि इस होम के द्वारा या इन मन्त्रों में राष्ट्र की पालना वा राष्ट्र के धारण करने का वर्णन है। इन मन्त्रों में अग्नि, सूर्य चंद्रमा, वायु यज्ञ तथा राष्ट्रपति का वर्णन आता है। इन्हीं से बने हुए अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से राष्ट्र का पालन पोषण वा शत्रु से रक्षा हम कर सकते हैं।

(६) छठी पाणिग्रहण विधि है। इस में ६ मन्त्र आते हैं। पहले मन्त्र में वर इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि मैं न्यायकारी भगवान् वा सम्पूर्ण विद्वानों को साक्षी बना कर तुम्हारे हाथ को ग्रहण करता हूं कि तुम्हें प्रत्येक प्रकार के सुख से संयुक्त करूंगा। दूसरे मन्त्र में अपने गुणों का वर्णन करते हुए वर कहता है कि मैं ऐश्वर्यशाली हूं, बलवान् हूं, धर्मात्मा हूं। इन्हीं गुणों के द्वारा सौभाग्य की वृद्धि हो सकती है। तीसरे मन्त्र में यह प्रतिज्ञा करता है कि मेरे लिए संसार में यह देवी ही पोष्या है, इसी में मेरा स्त्री भाव है अन्य देवियों को मैं मातृ तुल्य कन्या व भगिनी तुल्य जानूंगा। आज इस रहस्य को न समझ कर दुराचार में ग्रस्त हो कर लोग अनेक विवाह करते हैं और निरपराधिनी देवियों को दुःखसागर में डुबा रहे हैं। चौथे मन्त्र में इस बात का वर्णन आता है कि मैं तुम्हें बढ़िया से बढ़िया वस्त्रों से सुशोभित करूंगा। मनुस्मृति में लिखा है कि—

तस्माद्देता सदा पूज्या भूषणाच्छादनासनै।

भूषण और वस्त्रों द्वारा देवियों की सदा पूजा करनी चाहिये। पांचवें मन्त्र में यह बतलाया है कि मैं तेरी तथा तेरी प्रजा की अग्नि वायु जल औषधि सद्वैद्य आदि से सदा रक्षा करता रहूंगा। यही साधन स्वास्थ्य के लिए सर्वथा उपयोगी हैं। छठे मन्त्र में यह बात कही है कि मैं कुल की वृद्धि की के लिये तुम से छिपा कर कोई कार्य नहीं करूंगा। भोजन भी अकेला नहीं खाऊंगा। जो भी कार्य करूंगा वह तुम को विज्ञ बना कर वा तुम्हारी सम्मति से करूंगा।

(७) सातवीं लाजा होम विधि है। जिस में प्रथम क्रिया शिलारोहण की है। वर कन्या को शिला पर पांव रखवा कर कहता है कि इस शिला को पांव से दबाओ और चट्टान की तरह अपने नियम पालन में अटल रहो। जो कलहकारी कलह द्वारा वा अपनी सेना द्वारा अत्याचार करता है उस को ऐसे ही

दबा दो जैसे पांव के नीचे शिला दबाती हो। दूसरी क्रिया लाजा होम की है। प्रश्न हो सकता है कि लाजा होम के अतिरिक्त हवन क्यों किया जाता है। इस के कई कारण हैं। पहला कारण यह है कि धान की पनीरी एक स्थान में इकट्ठी बोयी जाती है और फिर उखाड़ कर दूसरे स्थान में लगाते हैं। तब वह अधिक बलशाली पैदा होता है। ऐसे ही कन्या जिस कुल में उत्पन्न होती है उस से दूसरे कुल में जा कर ही वह अधिक सौभाग्यवती होती है। दूसरा उद्देश्य यह है कि कन्या का भ्राता अपनी बहन के हाथ में मुट्ठीभर खीलें डालता है और वह प्रसन्न हो कर पति के हाथ में डालती है और पति सहर्ष ग्रहण करता है। कन्या कहती है मेरे पति की दीर्घ आयु हो, मेरे पारिवारिक जन सदा वृद्धि को प्राप्त होते रहें। कितना सुन्दर उपदेश है। मुट्ठीभर खीलों वाला भी अपनी कन्या का विवाह कर सकता है। आजकल दहेज के लोभियों को इसबात पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(८) आठवीं विधि सप्तपदी है। इस विधि में सात कामों के लिए कन्या वर दोनों मिलकर सात कदम चलते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों मिल कर इन कार्यों को सिद्ध करेंगे। प्रथम अन्न वा ज्ञान के उपार्जन की प्रतिज्ञा है। अन्न के बिना संसार में कोई व्यवहार नहीं चलता किन्तु अन्न के होने पर भी यदि मनुष्य दुर्बल है अन्न का पाचन नहीं कर सकता तो वह अन्न किस काम का इस लिए दूसरे मन्त्र में बल के लिए प्रतिज्ञा है। बल के होने पर भी यदि मनुष्य अपने अन्नादि का दुरुपयोग करे, तो अन्नादि लाभ के स्थान में हानि करते हैं। अतः तीसरे मन्त्र में अन्न धन की रक्षा की प्रतिज्ञा है। अन्न धनादि की विद्यमानता में भी यदि मनुष्य कंजूस हो तो वे धन आदि उस मनुष्य तथा देश और जाति को कुछ लाभ न पहुँचा सकेंगे। धनादि सब पदार्थ विद्यमान हों तथापि सन्तान के अभाव में अनेक स्त्री पुरुष दुखी रहते हैं इस लिये पांचवें मन्त्र में सन्तान को सुशिक्षित बनाने की प्रतिज्ञा है। घर में सन्तान भी हो किन्तु यदि ऋतु अनुकूल सुन्दर भोजन बना कर उन्हें नहीं दे सकते तो वे पुष्टि को प्राप्त नहीं हो सकते। इस लिए छठे मन्त्र में ऋतु अनुकूल आचरण की शिक्षा है। अन्न बलपोषण धनव्यय, प्रजा, ऋतु अनुकूल आचरण सब कुछ है किन्तु प्रेम नहीं है तो भी परस्पर सहयोग से कोई कार्य नहीं हो सकता इस लिए सातवें मन्त्र में परस्पर प्रीति तथा सहानुभूति के लिए सख्य भाव की प्रतिज्ञा है।

(९) नौवीं ध्रुव दर्शन विधि है। जिसका सार यह है कि जैसे सूर्य चन्द्र ध्रुव तारे आदि अपने नियमों पर अटल दृढ़ वा स्थिर है वैसे ही हम भी अपने कार्यों पर अटल दृढ़ और स्थिर रहें। दृढ़ता के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। यह हम ने अति संक्षिप्त तथा सारगर्भित, विवाह के लाभ लिखे हैं। आशा है इन आधारों पर पाठक विस्तार स्वयं कर लेंगे।

शंका—लाजा होम में कन्या आगे होनी चाहिये वा वर। इस में क्या कोई प्रमाण है?

समाधान—मेरे विचार में चारों परिक्रमाओं में कन्या आगे होनी चाहिये। प्रथम प्रमाण वेद का है। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं—तुभ्यमग्रेपर्यवहन्, कन्या को आगे चलाते हैं। दूसरा प्रमाण गोभिल गृह्य सूत्र का है प्र० २, खण्ड २, सूत्र पांच में लिखा है—पतिर्यथेतंपरिव्रज्य प्रदक्षिणामग्निंपरिणयति मन्त्रवान् ब्राह्मणः। इस पर टीका करते हुए सत्यव्रत सामश्रमी लिखते हैं अर्थात् कन्या को आगे लेकर अग्नि की परि-

क्रमा करते हैं। इन दो प्रमाणों से सिद्ध है कि लाजा होम में कन्या को आगे रखना चाहिये।

सब भाष्यकार गृह्य सूत्रों के यही मानते हैं कि कन्या को आगे चलाना चाहिये। कन्या कि हेतु के लिए वा सामान के लिए भी आगे चलाना उचित है।

शंका—परिक्रमा कितनी बार करनी चाहिये और लाजा होमादि कितनी परिक्रमाओंमें होना चाहिये?

समाधान—आश्वलायन आदि गृह्य सूत्र तथा पौराणिक विवाह पद्धति तक में भी चार ही परिक्रमाएं लिखी हैं। चारों परिक्रमाएं शिला रोहण, लाजा होम, पाणि ग्रहण आदि मन्त्रों सहित होनी चाहिए॥

शंका—स्वामी जी ने देवृकामा शब्द का अर्थ नियोगपरक किया है जो विवाह में अनुचित है॥

समाधान—**इमंत्वमिन्द्र मिढ्वः**—इस मन्त्र के अर्थ में स्वामी जी ने विवाह प्रकरण में विवाहपरक अर्थ करते हुए लिखा है—इस मन्त्र का नियोग प्रकरण में दूसरा अर्थ होगा। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामी जी विवाह प्रकरण में दूसरा अर्थ मानते हैं तथा नियोग में दूसरा।

शंका—संस्कार वा यज्ञों में पत्नी को पति के किस ओर बैठना चाहिये?

समाधान—श्री स्वामी जी ने विवाह संस्कार में पत्नी को पति के चार वार दक्षिण में बैठने को लिखा है और गर्भाधान, पुंसवन वा नामकरण में वाम भाग में बैठना लिखा है। इस से सिद्ध होता है कि स्वामी जी के मत से विवाह संस्कार में पत्नी को दक्षिण में और उस के अतिरिक्त सर्वत्र वाम भाग में बिठाना चाहिए।

अथ गृहाश्रमसंस्कारविधिं वक्ष्यामः

गृहाश्रम संस्कार उस को कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुखप्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन मन धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति करनी॥

अत्र प्रमाणानि—सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्॥ ११॥ इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥ २॥ ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ६, ४२॥

अर्थः—(सोमः) सुकुमार शुभगुणयुक्त (वधूयुः) वधू की कामना करने हारा पति तथा वधू पति की कामना करने हारी (अश्विना) दोनों ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त (अभवत्) होवें और (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (आस्ताम्) होवें ऐसी (यत्) जो (सूर्याम्) सूर्य की किरणवत् सौंदर्य गुणयुक्त (पत्ये) पति के लिये (मनसा) मन से (शंसन्तीम्) गुण कीर्त्तन करने वाली वधू है उसको पुरुष और इसी प्रकार के पुरुष को स्त्री सकल जगत का उत्पादक परमात्मा देता है अर्थात् बड़े भाग्य से दोनों स्त्री पुरुषों का जो कि तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों, जोड़ा मिलता है॥ १॥ हे स्त्री और पुरुष! मैं परमेश्वर

आज्ञा देता हूं कि जो तुम्हारे लिये पूर्व विवाह में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिस को तुम दोनों ने स्वीकार किया है इसी में तत्पर रहो। इस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ ऋतुगामी होके वीर्य का अधिक नाश न करके सम्पूर्ण आयु जो १०० वर्षों से कम नहीं है उसको प्राप्त होओ। पूर्वोक्त धर्म रीति से पुत्रों और नातियों के साथ क्रीड़ा करते हुए उत्तम गृह वाले आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो॥ २॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः। स्योना श्वश्रूभ्य गृहान् विशेमान्॥ ३। स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्यानो पुष्टायैषां भव॥ ४॥ या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन॥ ५॥ आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै। इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि॥ ६॥ अथर्व० कां० १४। सू० २। मं० २६। २७। २९। ३१॥

अर्थ—हे वरानने! तू (सुमङ्गली) अच्छे मङ्गलाचरण करने तथा (प्रतरणी) दोष और शोकादि से पृथक रहनेहारी (गृहाणाम्) गृहकार्यों में चतुर और तत्पर रह कर (सुशेवा) उत्तम सुखयुक्त होके (पत्ये) पति (श्वसुराय) श्वशुर और (श्वश्रूभ्यै) सासु के लिये (शम्भूः) सुखकर्त्री और (स्योना) स्वयं प्रसन्न हुई (इमान्) इन (गृहान्) घरों में सुखपूर्वक (प्रविश) प्रवेश कर॥ ३॥ हे वधू! तू (श्वशुरेभ्यः) श्वशुरादि के लिये (स्योना) सुखदाता (पत्ये) पति के लिये (स्योना) सुखदाता और (गृहभ्यः) गृहस्थ सम्बन्धियों के लिये (स्योना) सुखदायक (भव) हो और (अस्यै) इस (सर्वस्यै) सब (विशे) प्रजा के अर्थ (स्योना) सुखप्रद और (एषाम्) इनके (पुष्टाय) पोषण के अर्थ तत्पर (भव) हो॥ ४॥ (याः) जो (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाली अर्थात् दुष्टात्मा (युवतयः) जवान स्त्रियां (च) और (याः) जो (इह) इस स्थान में (जरतीः) बुड्ढी वृद्ध दुष्ट स्त्रियां हों वे (अपि) भी (अस्यै) इस वधू को (नु) शीघ्र (वर्चः) तेज (सं, अत्त) देवें (अथ) इसके पश्चात् (अस्तम्) अपने २ घर को (विपरेतन) चली जावें और फिर फिर इसके पास कभी न आवें॥ ५॥ हे वरानने! तू (सुमनस्यमाना) प्रसन्नचित्त होकर (तल्पम्) पर्यङ्क पर (आरोह) चढ़ के शयन कर और (इह) इस गृहाश्रम में स्थिर रहकर (अस्मै) इस (पत्ये) पति के लिये (प्रजां, जनय) प्रजा को उत्पन्न कर (सुबुधा) सुन्दर ज्ञानी (बुध्यमाना) उत्तम शिक्षा को प्राप्त (इन्द्राणीव) सूर्य की कांति के समान तू (उषसः) उषाकाल के (अग्रा) पहिली (ज्योतिः) ज्योति के तुल्य (प्रतिजागरासि) प्रत्यक्ष सब कामों में जागती रह॥ ६॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः। सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह॥ ७॥ सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः। मय इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम्॥ ८॥ तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति। या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः॥ ९॥ अथर्व० कां० १४। सू० २। मं० ३२। ३५। ३८॥

अर्थ—हे सौभाग्यप्रदे ! (नारि) तू जैसे (इह) इस गृहाश्रम में (त्वाम्) आपको (विश्वाः) विद्वान् लोग (पत्नीः) उत्तम स्त्रियों को (न्यपद्यन्त) प्राप्त होते हैं और (तनूभिः) शरीरों से (तनूः) शरीरों को (समस्पृशन्त) स्पर्श करते हैं वैसे (विश्वरूपा) विविध सुन्दररूप को धारण करने हारी (महित्वा) सत्कार को प्राप्त होके (सूर्येव) सूर्य की कांति के समान (पत्या) अपने स्वामी के साथ मिलके (प्रजावती) प्रजा को प्राप्त होने हारी (संभव) अच्छे प्रकार हो ॥ ७ ॥ हे स्त्री पुरुषो ! तुम (पितरौ) बालकों के जनक (ऋत्वियै) ऋतु समय में सन्तानों को (संसृजेथाम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो (मघोनः) जननी (च) और (पिता) जनक दोनों (रेतसः) वीर्य को मिलाकर गर्भाधान करने हारे (भवाथः) हूजिये । हे पुरुष ! (एनाम्) इस (योषाम्) अपनी स्त्री को (मर्य, इव) प्राप्त होने वाले पति के समान (अधि, रोहय) सन्तानों से बढ़ा और दोनों (इह) इस गृहाश्रम में मिल के (प्रजाम्) प्रजा को (कृणवाथाम्) उत्पन्न करो (पुष्यतम्) पालन पोषण करो और पुरुषार्थ से (रयिम्) धन को प्राप्त होओ ॥८॥ हे (पूषन्) वृद्धिकारक पुरुष ! (यस्याम्) जिसमें (मनुष्याः) मनुष्य लोग (बीजम्) वीर्य को (वपन्ति) बोते हैं या जो (नः) हमारी (उशती) कामना करती हुई (ऊरू) ऊरू को सुन्दरता से (विश्रयाति) विशेषकर आश्रय करती है (यस्याम्) जिसमें (उशन्तः) सन्तानों की कामना करते हुए हम (शेपः) उपस्थेन्द्रिय का (प्रहरेम) प्रहरण करते हैं (ताम्) उस (शिवतमाम्) अतिशय कल्याण करने हारी स्त्री को सन्तानोत्पत्ति के लिये (एरयस्व) प्रेम से प्रेरणा कर ॥ ९ ॥ हसामुदौ

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ । सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवा-वुषसो विभातीः ॥ १० ॥ इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमा-युर्व्यश्नुताम् ॥ ११ ॥ जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः । अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाज-सातये ॥ १२ ॥ अ० कां० १४ । सू० २ । मं० ४३ । ६४ । ७२ ॥

अर्थ—हे स्त्री और पुरुष ! जैसे सूर्य (विभातीः) सुन्दर प्रकाशयुक्त (उषसः) प्रभात वेला को प्राप्त होता है वैसे (स्योनात्) सुख से (योनेः) घर के मध्य में (अधि, बुध्यमानौ) सन्तानोत्पत्ति आदि की क्रिया को अच्छे प्रकार जानने हारे सदा (हसामुदौ) हास्य और आनन्दयुक्त (महसा) बड़े प्रेम से (मोदमानौ) अत्यन्त प्रसन्न हुए (सुगू) उत्तम चाल चलन से धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छे प्रकार चलने हारे (सुपुत्रौ) उत्तम पुत्र वाले (सुगृहौ) श्रेष्ठ गृहादि सामग्री युक्त (जीवौ) उत्तम प्रकार जीवों को धारण करते हुए (तराथः) गृहाश्रम के व्यवहारों के पार होओ ॥ १० ॥ हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् राजन् ! आप (इह) इस संसार में (इमौ) इन स्त्री पुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था दीजिये कि जिससे कोई स्त्री पुरुष वेदारम्भ में लिखे प्रमाण से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सके, वैसे (संनुद) सूब की प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिये जिससे ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा को पाके (दम्पती) जाया और पति (चक्रवाकेव) चकवा चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमबद्ध रहें और गर्भाधान-संस्कारोक्तविधि से

(प्रजया) उन्नत हुई प्रजा से (एनौ) वे दोनों (स्वस्तकौ) सुखयुक्त हो के (विश्वम्) सम्पूर्ण १०० वर्ष पर्यन्त (आयुः) आयु को (व्यश्नुताम्) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥ हे मनुष्यो ! जैसे (सुदानवः) विद्यादि उत्तम गुणों के दान करने हारे (अग्रवः) उत्तम स्त्री पुरुष (जनियन्ति) पुत्रोत्पत्ति करते और (पुत्रियन्ति) पुत्र की कामना करते हैं वैसे (नौ) हमारे भी सन्तान उत्तम होवें तथा (अरिष्टासू) बल प्राण का नाश न करने हारे होकर (बृहते) बड़े (वाजसातये) परोपकार के अर्थ विज्ञान और अन्न आदि के दान के लिये (संयत्तेहि) कटिबद्ध सदा रहें जिससे हमारे सन्तान भी उत्तम होवें ॥ १२ ॥

इमं बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ १३ ॥ अथर्व० कां० १४ । सू० २ । मं० ७५ ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः । अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१४॥

अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० १ ॥

अर्थः—हे पत्नी ! तू (शतशारदाय) शतवर्ष पर्यन्त (दीर्घायुत्वाय) दीर्घकाल जीने के लिये (सुबुधा) उत्तम बुद्धियुक्त (बुध्यमाना) सज्ञान होकर (गृहान्) मेरे घरों को (गच्छ) प्राप्त हो और (गृहपत्नी) मुझ घर के स्वामी की स्त्री (यथा) जैसे (ते) तेरा (दीर्घम्) दीर्घकालपर्यन्त (आयुः) जीवन (असः) होवे वैसे (प्रबुध्यस्व) प्रकृष्टज्ञान और उत्तम व्यवहार को यथावत् जान इस अपनी आशा (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति और सम्पूर्ण ऐश्वर्य को देनेहारा परमात्मा (कृणोतु) अपनी कृपा से सदा सिद्ध करे जिससे तू और मैं सदा उन्नतिशील होकर आनन्द में रहें ॥ १३ ॥ हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर तुमको जैसी आज्ञा देता हूं वैसा ही (वर्त्तमान) करो जिससे तुमको अक्षय सुख हो अर्थात् (वः) तुम्हारा (सुहृदयम्) जैसी अपने लिये सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो वैसे माता पिता सन्तान स्त्री पुरुष भृत्य मित्र पड़ोसी और अन्य सब से समान हृदय रहो (सांमनस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अविद्वेषम्) वैर विरोधादि रहित व्यवहार को तुम्हारे लिये (कृणोमि) स्थिर करता हूं तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय (वत्सं, जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्यभाव से जैसे बर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे से (अभि, हर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः । जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान् ॥ १५ ॥ मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा । सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ १६ ॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० २ । ३ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! जैसे तुम्हारा (पुत्रः) पुत्र (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) प्रीतियुक्त मन वाला (अनुव्रतः) अनुकूल आचरणयुक्त (पितुः) और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला (भवतु) होवे वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्त्ता करो जैसे (जाया) स्त्री (पत्ये) पति की प्रसन्नता के लिये (मधुमतीम्) माधुर्यगुणयुक्त (वाचम्) वाणी को (वदतु) कहे वैसे पति भी (शान्तिवान्) शान्त

होकर अपनी प्रकृति से सदा मधुर भाषण किया करे ॥१५॥ हे गृहस्थो ! तुम्हारे में (भ्राता) भाई (भ्रातरम्) भाई के साथ (मा, द्विक्षन्) द्वेष कभी न करे (उत) और (स्वसा) बहिन (स्वसारम्) बहिन से द्वेष कभी (मा) न करे तथा बहिन भाई भी परस्पर द्वेष मत करो किन्तु (सम्यञ्चः) सम्यक् प्रेमादि गुणों से युक्त (सव्रताः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (भूत्वा) होकर (भद्रया) मङ्गलकारक रीति से एक दूसरे के साथ (वाचम्) सुखदायक वाणी को (वदत) बोला करो ॥१६॥

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः । तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥१७॥

अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० ४ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर (येन) जिस प्रकार के व्यवहार से (देवाः) विद्वान् लोग (मिथः) परस्पर (न, वियन्ति) पृथक्भाव वाले नहीं होते (च) और (नो, विद्विषते) परस्पर में द्वेष कभी करते । (तत्) वही कर्म (वः) तुम्हारे (गृहे) घर में (कृण्मः) निश्चित करता हूं (पुरुषेभ्यः) पुरुषों को (संज्ञानम्) अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्त कर बड़े (ब्रह्म) धनैश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ १७ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥१८॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० ५ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम (जायस्वन्तः) उत्तम विद्यादिगुणयुक्त (चित्तिनः) विद्वान् सज्ञान (सधुराः) धुरन्धर होकर (चरन्तः) विचरते और (संराधयन्तः) परस्पर मिल के धन धान्य राज्य समृद्धि को प्राप्त होते हुए (मा, वियौष्ट) विरोधी वा पृथक् २ भाव मत करो (अन्यः) एक (अन्यस्मै) दूसरे के लिये (वल्गु) सत्य मधुर भाषण (वदन्तः) कहते हुए एक दूसरे को (एत) प्राप्त होओ इसलिये (सध्रीचीनान्) समान लाभाऽलाभ से एक दूसरे के सहायक (संमनसः) ऐकमत्य वाले (वः) तुम को (कृणोमि) करता हूं अर्थात् मैं ईश्वर तुम को जो आज्ञा देता हूं इसको आलस्य छोड़ कर किया करो ॥ १८ ॥

समानी प्रपा सहवोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥१९॥ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥२०॥ अथर्व० कां० ३ । सू० ३० । मं० ६, ७ ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! मुझ ईश्वर की आज्ञा से तुम्हारा (प्रपा) जलपान स्नानादि का स्थान आदि व्यवहार (समानी) एकसा हो (वः) तुम्हारा (अन्नभागः) खान पान (सह) साथ हुआ करो (वः) तुम्हारे (समाने) एक से (योक्त्रे) अश्वादि यान के जोते (सह) संगी हों और तुमको मैं धर्म्मादि व्यवहार में भी एकीभूत करके (युनज्मि) नियुक्त करता हूं जैसे (आराः) चक्र के आरे (नाभिम्) चारों ओर से (नाभिमिव) बीच की नालरूप काष्ठ में लगे रहते हैं अथवा जैसे ऋत्विज् लोग और यजमान

(इव) जैसे विद्वान् लोग (अमितम्) अधिक आदि के सेवन से जगत् का उपकार करते हैं वैसे (सम्यञ्चः) सम्यक् प्राप्त होने तथा मिल के (धर्मयुक्त कर्मों को सम्पादन) तथा एक दूसरे का हित सिद्ध किया करो ॥१९॥ हे गृहाश्रमी महाशयो ! मैं ईश्वर (वः) तुमको (सञ्चीनान्) सह वर्त्तमान (संमनसः) परस्पर के लिये हितैषी (सधुरीन्) एक ही धर्मकृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाले (सर्वान्) सब को (संवननेन) धर्मकृत्य के सेवन के साथ एक दूसरे के उपकार में नियुक्त (कृणोमि) करता हूं तुम (देवा, इव) विद्वानों के समान (अमृतम्) व्यवहारिक वा पारमार्थिक सुख की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (सायंप्रातः) सन्ध्या और प्रातःकाल अर्थात् सब समय में एक दूसरे से प्रेमपूर्वक मिला करो ऐसे करते हुए (वः) तुम्हारा (सौमनसः) मन का आनन्दयुक्त शुद्ध स्वभाव (अस्तु) सदा बना रहे ॥ २० ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिताः ॥२१॥ सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृताः ॥२२॥ स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥२३॥

अथर्व० कां० १२ । अनु० ५ । सू० ५ । मं० १—३ ॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो ! मैं ईश्वर तुमको आज्ञा देता हूं कि तुम सब गृहस्थ मनुष्य लोग (श्रमेण) परिश्रम तथा (तपसा) प्राणायाम से (सृष्टाः) संयुक्त (ब्रह्मणा) वेदविद्या परमात्मा और धनादि से (वित्ते) भोगने योग्य धनादि के प्रयत्न में और (ऋते) यथार्थ पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म में (श्रिताः) चलनेहारे सदा बने रहो ॥ २१ ॥ (सत्येन) सत्यभाषणादि कर्मों से (आवृताः) चारों ओर से युक्त (श्रिया) शोभायुक्त लक्ष्मी से (प्रावृताः) युक्त (यशसा) कीर्ति और धन से (परीवृताः) सब ओर से संयुक्त रहा करो ॥ २२ ॥ (स्वधया) अपने ही अन्नादि पदार्थ के धारण से (परिहिताः) सब के हितकारी (श्रद्धया) सत्य धारण में श्रद्धा से (पर्यूढा) सब ओर से सब को सत्याचरण प्राप्त करानेहारे (दीक्षया) नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य, सत्यभाषणादि व्रत धारण से (गुप्ताः) सुरक्षितः (यज्ञे) विद्वानों के सत्कार, शिल्पविद्या और शुभ गुणों के दान में (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ करो और इन्हीं कर्मों से (निधनम लोकः) इस मनुष्यलोक को प्राप्त होके मृत्युपर्यन्त सदा आनन्द में रहो ॥ २३ ॥

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ २४ ॥

अथर्व० कां० १२ अनु० ५ । सू० ५ मं० ७ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (ओजः) पराक्रम (च) और इस की सामग्री (तेजः) तेजस्विता (च) और इस की सामग्री (सहः) स्तुति निन्दा हानिलाभ तथा शोकादि का सहन (च) और इस के साधन (बलम्) बल और इस के साधन (वाक्, च) सत्य प्रिय वाणी और इस के अनुकूल व्यवहार (इन्द्रियम्) शान्त धर्मयुक्त अन्तःकरण और शुद्धात्मा तथा जितेन्द्रियता (श्रीः) लक्ष्मी सम्पत्ति और इसकी प्राप्ति का धर्मयुक्त उद्योग (धर्मः) पक्षपात रहित न्यायाचरण वेदोक्त धर्म और जो इस के साधन कहा गया है उस को तुम प्राप्त हो के इन्हीं में सदा वर्त्ता करो ॥ २४ ॥

क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २५ ॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ २६ ॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं च इष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ २७ ॥

अथर्व० कां० १२ । अनु० ५ । सू० ५ । मं० ८ । ६ । १० ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यों ! तुम को योग्य है कि (ब्रह्म, च) पूर्ण विद्यादि शुभ गुण युक्त मनुष्य और सब के उपकारक शमदमादि गुणयुक्त ब्रह्मकुल (क्षत्रञ्च) विद्यादि उत्तम गुणयुक्त तथा विनय और शौर्यादि गुणों से युक्त क्षत्रियकुल (राष्ट्रञ्च) राज्य और उस का न्याय से पालन (विशश्च) उत्तम प्रजा और उस की उन्नति (त्विषिश्च) सद्विद्यादि से तेज आरोग्य शरीर और आत्मा के बल से प्रकाशमान और इस की उन्नति से (यशश्च) कीर्तियुक्त तथा इस के साधनों को प्राप्त हुआ करो (वर्चश्च) पढ़ी हुई विद्या का विचार और उसका नित्य पढ़ना (द्रविणञ्च) द्रव्योपार्जन उस की रक्षा और धर्मयुक्त परोपकार में व्यय करने आदि कर्मों को सदा किया करो ॥ २५ ॥ हे स्त्री पुरुषो तुम अपना (आयुः) जीवन बढ़ाओ (च) और सब जीवन में धर्मयुक्त उत्तम कर्म ही करो (रूपञ्च) विषयासक्ति कुपथ्य रोग और अधर्माचरण को छोड़ के अपने स्वरूप को अच्छा रक्खो और वस्त्राभूषण भी धारण किया करो (नाम, च) नामकरण संस्कार प्रकरण में लिखे प्रमाणे शास्त्रोक्त संज्ञा धारण और उसके नियमों को भी (तथा) (कीर्तिश्च) सत्याचरण से प्रशंसा का धारण करो और गुणों में दोषारोपणरूप निन्दा को छोड़ दो (प्राणश्च) चिरकालपर्यन्त जीवन का धारण और उस के युक्ताहार विहारादि साधन (अपानश्च) सब दुःख दूर करने का उपाय और उस की सामग्री (चक्षुश्च) प्रत्यक्ष और अनुमान, उपमान (श्रोत्रञ्च) शब्द प्रमाण और उस की सामग्री को धारण किया करो ॥ २६ ॥ हे गृहस्थ लोगो ! (पयश्च) उत्तम जल दूध और इस का शोधन और युक्ति से सेवन (रसश्च) घृत दूध मधु आदि और इस का युक्ति से आहार विहार (अन्नञ्च) उत्तम चावल आदि अन्न और उस के उत्तम संस्कार किये (अन्नाद्यञ्च) खाने के योग्य पदार्थ और उस के साथ उत्तम दाल शाक कढ़ी आदि (ऋतञ्च) सत्य मानना और सत्य मनवाना (सत्यञ्च) सत्य बोलना और बुलवाना (इष्टञ्च) यज्ञ करना और कराना (पूर्त्तञ्च) यज्ञ की सामग्री पूरी करना तथा जलाशय और आराम वाटिका आदि का बनाना और बनवाना (प्रजा, च) प्रजा की उत्पत्ति, पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी (पशवश्च) गाय आदि पशुओं का पालन और उन्नति सदा करनी तथा करानी चाहिये ॥ २७ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

य० अ० ४० । मं० २ ॥

अर्थः—मैं परमात्मा सब मनुष्यों के लिये आज्ञा देता हूं कि प्रत्येक मनुष्य (इह) इस संसार में शरीर से समर्थ हो के (कर्माणि (सत्कर्मों को (कुर्वन्नेव) करता ही करता (शतं, समाः) १०० (सौ) वर्ष पर्यन्त (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे, आलसी और प्रमादी कभी न होवे । (एवम्) इस प्रकार

उत्तम कर्म करने हुए (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्य में (इतः) इस हेतु से (अन्यथा) उलटा स्वरूप (कर्म) दुःखदकर्म (न लिप्यते) लिप्यमान कभी नहीं होता, और तुम पापरूप कर्म में लिप्त कभी मत होओ, इस उत्तम कर्म से कुछ भी दुःख (नास्ति) नहीं होता। इसलिये तुम स्त्री पुरुष सदा पुरुषार्थी होकर उत्तम कर्मों से अपनी और दूसरों की सदा उन्नति किया करो ॥१॥ पुनः स्त्री पुरुष सदा निम्नलिखित मन्त्रों के अनुकूल इच्छा और आचरण किया करें। वे मन्त्र ये हैं—

भूर्भुवः स्वः। सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥२॥ गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥३॥ य० अ० ३। मं० ३७। ४१ ॥

अर्थ—हे स्त्री वा पुरुष! मैं तेरे वा अपने के सम्बन्ध से (भूर्भुवः स्वः) शारीरिक, वाचिक और मानस अर्थात् त्रिविध सुख से युक्त हो के (प्रजाभिः) मनुष्यादि उत्तम प्रजाओं के साथ (सुप्रजाः) उत्तम प्रजायुक्त (स्याम) होऊं। (वीरैः) उत्तम पुत्र बन्धु सम्बन्धी और भृत्यों से [सह वर्त्तमान] (सुवीरः) उत्तम वीरों [से] सहित होऊं। (पोषैः) उत्तम पुष्टिकारक व्यवहारों से (सुपोषः) उत्तम पुष्टियुक्त होऊं। हे (नर्य) मनुष्यों में सज्जन वीर स्वामिन्! (मे) मेरी (प्रजाम्) प्रजा की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (शंस्य) प्रशंसा करने योग्य स्वामिन् आप (मे) मेरे (पशून्) पशुओं की (पाहि) रक्षा कीजिये। हे (अथर्य) अहिंसक दयालो स्वामिन्! (मे) मेरे (पितुम्) अन्न आदि की (पाहि) रक्षा कीजिये। वैसे हे नारी! प्रशंसनीय गुणयुक्त तू मेरी प्रजा मेरे पशु और मेरे अन्न की सदा रक्षा किया कर ॥२॥ हे (गृहाः) गृहस्थ लोगों! तुम विधिपूर्वक गृहाश्रम में प्रवेश करने से (मा, बिभीत) मत डरो (मा, वेपध्वम्) मत कम्पायमान होओ, (ऊर्ज्जम्) अन्न पराक्रम तथा विद्यादि शुभ गुण से युक्त होकर गृहाश्रम को (बिभ्रतः) धारण करते हुए तुम लोगों को हम सत्योपदेशक विद्वान् लोग (एमसि) प्राप्त होते और सत्योपदेश करते हैं और अन्नपानाच्छादन स्थान से तुम्हीं हमारा निर्वाह करते हो, इस लिये तुम्हारा गृहाश्रम व्यवहार में निवास सर्वोत्कृष्ट है। हे वरानने! जैसे मैं तेरा पति (मनसा) अन्त करण से (मोदमानः) आनन्दित (सुमनाः) प्रसन्नमन (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त तुझ को, और हे मेरे पूजनीयतम पिता आदि लोगों! (वः) तुम्हारे लिये (ऊर्ज्जम्) पराक्रम तथा अन्नादि ऐश्वर्य (बिभ्रत्) धारण करता हुआ तुम (गृहान्) गृहस्थों को (आ, एमि) सब प्रकार से प्राप्त होता हूं, उसी प्रकार तुम लोग भी मुझ से प्रसन्न हो के वर्त्ता करो ॥ ३ ॥

येषामद्ध्ये ति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४॥ उपहूताः इह गावऽउपहूताऽअजावयः। अथो अन्नस्य कीलालऽउपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ॥५॥ यजु० अध्याय ३। मं० ४२। ४३॥

[illegible] (वसन्त) [illegible] (पुरुषः) [illegible] (ऋतुभिः) [illegible] (इन्द्रियम्) [illegible] (शुक्रम्) [illegible] (पयः) [illegible] (सोमः) [illegible] (परिस्रुता) [illegible] (आपः) [illegible] (अशीमहि) [illegible] (गमेमहि) [illegible] (मनसः) [illegible] (सधस्थम्) [illegible] (अगन्म) [illegible] (यत्र) [illegible] (सुकृतः) [illegible] (यत्र) [illegible] (तृतीयम्) [illegible] (दिवम्) [illegible] (जनयन्त) [illegible] (देवाः) [illegible] (सप्त) [illegible] (ऋषयः) [illegible] (तनन्वे) [illegible] (तपसे) [illegible] (ये) [illegible] (निषेदुः) [illegible] (विरूपे) [illegible] (सप्तरात्रे) [illegible] (सप्तहोतारः) [illegible] (आसन्) [illegible] (परोक्षाः) [illegible] (विदुः) [illegible] (ताः) [illegible] (इमे) [illegible] (तपोजाः) [illegible] (ऋषयः) [illegible] (सप्त) [illegible] (ये) [illegible] (निषेदुः) [illegible] (इमाः) [illegible] (ताः) [illegible] (वाचः) [illegible] (अभिपद्य) [illegible] (धीराः) [illegible] (प्रजावतीः) [illegible] (पशुमतीः) [illegible] (दुहानाः) [illegible] (सप्तवाणीः) [illegible] (असृजन्त) [illegible] (धीराः) [illegible] (सप्त) [illegible] (छन्दांसि) [illegible] (मित्रः) [illegible] (वरुणः) [illegible] (जुषन्त) [illegible] (सप्त) [illegible] (होत्राः) [illegible] (ऋतवः) [illegible] (वसन्तः) [illegible] (ग्रीष्मः) [illegible] (वर्षाः) [illegible] (शरत्) [illegible] (हेमन्तः) [illegible] (शिशिरः) [illegible] (सप्त) [illegible] (ऋतूनाम्) [illegible] (हरसा) [illegible] (संविदानाः) [illegible] (सप्त) [illegible] (प्रशिषः) [illegible] (ऋतूनाम्) [illegible] (हरामहे) प्रशंसा करते और प्रीति से समीप बुलाते हैं, (ते) वे [illegible] (नः) हम को जानने वाले (नः) हम लोगों को (जानन्तु) सुहृद् जानें, वैसे तुम [illegible] हम संन्यासी लोग आपस में मिल के पुरुषार्थ से व्यवहार और परमार्थ की उन्नति सदा किया करें ॥ ३ ॥

(गृहेषु) (नः) अपने (गृहेषु) घरों में जिस प्रकार (गावः) गौ आदि उत्तम पशु (उपहूताः) समीप होते तथा (अजावयः) बकरी भेड़ आदि दूध देने वाले पशु (उपहूताः) समीपस्थ हों (अथो) इसके अनन्तर (अन्नस्य) अन्नादि पदार्थों के मध्य में उत्तम (कीलालः) अन्नादि पदार्थ (उपहूतः) प्राप्त होवें हम लोग वैसा यत्न किया करें। हे गृहस्थो ! मैं उपदेशक वा राजा (इह) इस गृहाश्रम में (वः) तुम्हारे (क्षेमाय) कल्याण (शान्त्यै) निरुपद्रवता करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूं । मैं और तुम लोग प्रीति से मिल के (शिवम्) कल्याण (शग्मम्) व्यावहारिक सुख और (शंयोः, शंयोः) पारमार्थिक सुख को प्राप्त हों औ अन्य सब लोगों को सदा सुख दिया करें ॥ ५ ॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च । यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् । अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ६०, ६२ ॥

अर्थः—हे गृहस्थो ! जिस कुल में भार्या से प्रसन्न पति और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है ॥ १ ॥ यदि स्त्री पुरुष पर रुचि न रक्खे वा पुरुष को प्रहर्षित न करे तो अप्रसन्नता से पुरुष के शरीर में वीर्योत्पत्ति कभी न हो के सन्तान नहीं होते और यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं ॥ २ ॥

स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् । तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ६२ ॥

अर्थः—और जो पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता तो उस स्त्री में अप्रसन्न रहने से सब कुल [illegible] सम्पन्न शोभायुक्त रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है तब सब कुल आनन्दरूप दीखता है ॥ ३ ॥

[illegible] पितृभ्रातृपतीनां [illegible] पतिभिर्देवरैस्तथा । पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ २ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ३ ॥
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ४ ॥
मनु० अ० ३ । श्लो० ५५-५८ ॥

[illegible] पिता भ्राता पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन, पुत्री, पौत्री आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से सत्कार करें और इनको प्रसन्न रक्खें ॥ ५ ॥ जिस कुल में स्त्री लोग शोकातुर रहती हैं वह कुल शीघ्र नाश को प्राप्त हो जाता है और जिस कुल में स्त्री जन पुरुषों के उत्तमाचरणों से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ६ ॥ जिस कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्री लोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतों को एक बार नाश कर देवें वैसे चारों ओर से नष्टभ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ८ ॥

मनु० अ० ३ । श्लो० ५९ ॥

अर्थः—इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले पुरुषों को योग्य है कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान, पान आदि से सदा पूजा अर्थात् सत्कारयुक्त प्रसन्न रक्खें ॥ ८ ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया । सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ९ ॥

मनु० अ० ५ । श्लो० १५० ॥

अर्थः—स्त्री को योग्य है कि सदा आनन्दित होके चतुरता से गृहकार्यों में वर्तमान रहे, तथा अन्नादि के उत्तम संस्कार; पात्र वस्त्र गृह आदि के संस्कार, और घर के भोजनादि में जितना नित्य धन आदि लगे उसके यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे ॥ ९ ॥

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः । उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥ १० ॥

मनु० अ० ९ । श्लो० २४ ॥

अर्थः—यदि स्त्रियां दुष्टाचारयुक्त भी हों तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियां अपने २ पतियों के शुभ गुणों से उत्कृष्ट हो गयी होती हैं, और होंगी भी, इस लिये यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियां श्रेष्ठ और दुष्ट हों तो दुष्ट हो जाती हैं, इससे प्रथम मनुष्यों को उत्तम हो के अपनी स्त्रियों को उत्तम करना चाहिये ॥ १० ॥

[illegible] महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः । स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ ११ ॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥ १२ ॥

[illegible] शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दारायत्तं तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥ १३ ॥

[illegible] तस्मादेताः सदा रक्ष्या प्रयत्नतः । तथा गृहाश्रमस्यैता मूलं [illegible] ॥ १४ ॥

मनु० अ० ९ । श्लो० [illegible]

[illegible] —हे पुरुषो! [illegible] के लिये [illegible] करनेहारी, पूजने के योग्य, पूजा के योग्य, पूजा [illegible] करनेहारी, घरों को शोभा देनेवाली स्त्रियां हैं वे श्री अर्थात् लक्ष्मी स्वरूप होती हैं, [illegible] स्त्रियों में कुछ भेद नहीं है ॥ १३ ॥ हे पुरुषो! अपत्यों की उत्पत्ति, [illegible] करने वाले लोकव्यवहार की नित्यप्रति जो कि गृहाश्रम का कार्य होता है उसका निर्वाह करने वाली [illegible] स्त्री है ॥ १४ ॥ सन्तानोत्पत्ति, धर्मकार्य उत्तम सेवा और रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है वह [illegible] स्त्री के आधीन होता है ॥ १५ ॥ जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्तमान सिद्ध होता है वैसे ही गृहस्थ के आश्रम से ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह [illegible] आश्रम से होता है ॥ १६ ॥

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् । गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ १५ ॥
सः संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता । सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ १६ ॥
सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः । गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि ॥ १७ ॥

मनु० ॥ ६ । ८९ ॥

अर्थः—जिससे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीन आश्रमियों को अन्न वस्त्रादि दान से नित्य प्रति गृहस्थ धारण पोषण करता है इस लिये व्यवहार में गृहाश्रम सब से बड़ा है ॥ १५ ॥ हे स्त्री पुरुषो! जो तुम अक्षय * मुक्ति सुख और इस संसार के सुख की इच्छा रखते हो तो जो दुर्बलेन्द्रिय और निर्बुद्धि पुरुषों के धारण करने योग्य नहीं है उस गृहाश्रम को नित्य प्रयत्न से धारण करो ॥ १६ ॥ वेद और स्मृति के प्रमाण से सब आश्रमों के बीच में गृहाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि यही आश्रम ब्रह्मचारी आदि तीनों आश्रमों का धारण और पालन करता है ॥ १७ ॥

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १८ ॥

मनु० अ० ६ । श्लो० ९० ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः । तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ १९ ॥
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्योपासनाम् । उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ २० ॥
पाषण्डिनो विकर्मस्थान् बैडालव्रतिकान् शठान् । हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ २१ ॥

मनु० अ० ४ । श्लो० ३० ॥

अर्थ—हे मनुष्यो! जैसे सब बड़े २ मद और नदी सागर में जाकर स्थिर होते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ के आश्रय से स्थिर होते हैं ॥ १८ ॥ जो गृहस्थ हो के पराये घर में [illegible] की इच्छा

* अक्षय का मात्र है कि जितने समय मुक्ति का है । उतने समय में दुःख का संयोग, जैसा विषयेन्द्रिय सुख में होता है वैसा नहीं होता ।

[illegible] अन्नादि का मूल्य करना अतिथियों का काम है, गृहस्थों का नहीं। [illegible] के लिये अतिथि आवें तब आसन, विश्राम, शय्या, पादप्रक्षालन और [illegible] सत्कार जैसे का जैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम, मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे वैसा [illegible] किन्तु जो भाण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक, ईश्वर वेद, और धर्म को न माने, अधर्मी [illegible] हत्यारे, हिंसक, शठ, मिथ्याभिमानी, कुतर्की और वकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने वाले बगुले के समान, अतिथिवेषधारी बन के आवें उनका वचन मात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे ॥२१॥

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः। दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥२२॥
न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन। अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेदाद्यानजीविकाम् ॥२३॥
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा। शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥२४॥
प्रित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ। धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविकुष्टमेव च ॥२५॥

मनु० अ० ४। श्लो० १५७। १७६॥

अर्थ—दश हत्या के समान चक्र अर्थात् कुम्हार (तथा) गाड़ी से जीविका करने हारे, दश चक्र के समान ध्वज अर्थात् धोबी (तथा) मद्य को निकाल कर बेचने हारे, दशध्वज के समान वेश अर्थात् वेश्या, भड़ुवा, भांड, दूसरे की नकल अर्थात पाषाणमूर्तियों के पूजक (पुजारी) आदि। और दशवेश के समान जो अन्यायकारी राजा होता है उनके अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी भी न करें ॥२२॥ गृहस्थ जीविका के लिये भी कभी शास्त्र विरुद्ध लोकाचार का वर्त्ताव न वर्त्ते, किन्तु जिस में किसी प्रकार की कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो उस वेदोक्तधर्म सम्बन्धी जीविका को करे ॥२३॥ किन्तु सत्य धर्म, आर्य अर्थात् आप्त पुरुषों के व्यवहार और शौच पवित्रता ही में सदा गृहस्थ लोग प्रवृत्त रहें और सत्यवाणी, भोजनादि के लोभ रहित हस्तपादादि की कुचेष्टा छोड़ कर धर्म से शिष्यों और सन्तानों को उत्तम शिक्षा सदा किया करें ॥२४॥ यदि बहुतसा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती हो तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवें और वेदविरुद्ध धर्माभास जिस के करने से उत्तर काल में दुःख और संसार की उन्नति का नाश हो वैसा नाममात्र धर्म और कर्म कभी न किया करें ॥२५॥

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्। योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥२६॥
अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥२७॥
दशापरा वा पूर्वां वर्णं पुरुषनेत्। पुनाति वापि सप्तमा तं धर्मं न विलोपयेत् ॥२८॥

मनु० अ० [illegible]

[illegible] मनु० अ० ७ । श्लो० २७ ।

[illegible] मनु० अ० ७ । श्लो० २८ ।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥२६॥

मनु० अ० ५ । श्लो० १०९ ।

भावार्थ—जो धर्म ही से पदार्थों का संचय करना है वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता है, जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता वही पवित्र है, किन्तु जल मृत्तिकादि से जो पवित्रता होती है वह धर्म के सदृश उत्तम नहीं है ॥२६॥ विद्वान् लोग क्षमा से, दुष्टकर्मकारी संसर्ग और विद्यादि शुभगुणों के दान से, गुप्त पाप करने हारे विचार से त्याग कर, और ब्रह्मचर्य तथा सत्यभाषणादि से वेदादि उत्तम विद्वान् शुद्ध होते हैं ॥२७॥ किन्तु जल से ऊपर के अङ्ग पवित्र होते हैं, आत्मा और मन नहीं, मन को सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध और जीवात्मा विद्या योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञान से ही शुद्ध होती है, जल मृत्तिकादि से नहीं ॥२८॥ गृहस्थ लोग छोटों बड़ों का राजकार्यों के सिद्ध करने में कम से कम १० अर्थात् ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ, हैतुक (नैयायिक), तर्ककर्त्ता (मीमांसा शास्त्रज्ञ), नैरुक्त (निरुक्तशास्त्रज्ञ), धर्माध्यापक, ब्रह्मचारी, स्नातक और वानप्रस्थ विद्वानों अथवा इनसे न्यूनता करे तो तीन वेदवित् (ऋग्वेदज्ञ, यजुर्वेदज्ञ और सामवेदज्ञ) विद्वानों की सभा से कर्त्तव्याकर्त्तव्य धर्म और अधर्म का जैसा निश्चय हो वैसा ही आचरण किया करे ॥२९॥ और जैसा विद्वान् लोग दण्ड ही को धर्म जानते हैं वैसा सब लोग जानें, क्योंकि दण्ड ही प्रजा का शासन अर्थात् नियम में रखने वाला, दण्ड ही सब का सब ओर से रक्षक और दण्ड ही सोते हुओं में जागता है, चौरादि दुष्ट भी दण्ड ही के भय से पाप कर्म नहीं कर सकते ॥३०॥ उस दण्ड को अच्छे प्रकार चलाने हारे उस राजा को कहते हैं कि जो सत्यवादी विचार ही करके कार्य का कर्त्ता बुद्धिमान्, विद्वान्, धर्म, काम और अर्थ का यथावत् जानने हारा हो ॥३१॥

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना । न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥३२॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा । प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥३३॥

मनु० अ० ७ । श्लो० ३० । ३१ ॥

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥३४॥

मनु० अ० । ८ । श्लो० १२८ ॥

अर्थ—जो राजा उत्तम सहाय रहित मूढ़ लोभी, जिस ने ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों से विद्या और बुद्धि की उन्नति नहीं की विषयों में फंसा हुआ है उस से वह दण्ड कभी न्याय पूर्वक नहीं चल सकता ॥३२॥ इससे जो आप्त, सत्पुरुषों का संगी, राजनीति शास्त्र के अनुकूल चलने हारा, धार्मिक पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् राजा हो वही इस दण्ड की धारण करके चला सकता है ॥३३॥ जो राजा अन्यायकारियों को

पश्चात् नरक अर्थात् महादुःख को पाता है ॥३४॥

मृगया दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥३६॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥३६॥
व्यसनस्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः । तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥३७॥
मनु० अ० ७। श्लो० ४७—५६ ॥

अर्थ—मृगया अर्थात् शिकार खेलना, द्यूत और प्रसङ्गता के लिये भी चौपड़ आदि खेलना, दिन में सोना, इसी प्रकार मिथ्याप्रलाप करना, स्त्रियों के साथ सदा अधिक विषय में मोहित होना, मद्यपानादि नशों का करना, गाना, बजाना, नाचना व इनका देखना और वृथा इधर उधर घूमते फिरना ये दश दुर्गुण कामज होते हैं ॥३५॥ और चुगली खाना, विना विचारे काम कर बैठना, जिस किसी से वृथा और बाधना, दूसरे की स्तुति सुनकर बढ़ती देख के हृदय में जला करना, दूसरों के गुणों में दोष और दोषों में गुण स्थापन करना, बुरे कामों में धन का लगाना, क्रूर वाणी और विना विचारे पक्षपात से किसी को करड़ा दण्ड देना ये आठ दोष क्रोधी पुरुष में उत्पन्न होते हैं। ये १८ (अठारह) दुर्गुण हैं इनको राजा अवश्य छोड़ देवे ॥ ३६ ॥ और जो इन कामज और क्रोधज १८ (अठारह) दोषों के मूल जिस लोभ को सब विद्वान् लोग जानते हैं उसको प्रयत्न से राजा जीते, क्योंकि लोभ ही से पूर्वोक्त १८ (अठारह) और अन्य दोष भी बहुत से होते हैं, इस लिये हे गृहस्थ लोगो ! चाहे वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र क्यों न हो परन्तु ऐसे दोष वाले मनुष्य को राजा कभी न करना, यदि भूल से हुआ हो तो उसको राज्य से च्युत करके किसी योग्य पुरुष को जो कि राजा के कुल का हो राज्याधिकारी करना, तभी प्रजा में आनन्द मङ्गल सदा बढ़ता रहेगा ॥ ३७ ॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ८ ॥ मनु० अ० १२। श्लो० १०० ॥
मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् ।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥३९॥ मनु० अ० ७। श्लो० ५४ ॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान् सुपरीक्षितान् ॥४०॥ मनु० अ० ७। श्लो० ६० ॥

अर्थ—जो वेदशास्त्रवित् धर्मात्मा जितेन्द्रिय न्यायकारी और आत्मा के बल से युक्त पुरुष होवे उसी को सेना, राज्य, दण्डनीति और प्रधानपद का अधिकार देना अन्य दुष्टाशयों को नहीं ॥ ३८ ॥ और उसके राज्य में उत्पन्न, शास्त्रों के जानकार, शूरवीर, जिनका विचार निष्फल न होवे, कुलीन, सच्चे, जितेन्द्रिय हों उन सात वा आठ पुरुषों को सभाध्यक्ष मुकाम परीक्षा करके मन्त्री करे और उन

[illegible] जो हो उसको सब मित्रो के कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मों का विचार किया करे । [illegible] और [illegible] राज्य और सेना के अधिकारी जितने पुरुषों से राजकार्य सिद्ध हो सके उतने ही [illegible] निपुण स्थिरबुद्धि पुरुषों को राज्यसामग्री के वर्धक नियत करे ॥ ४० ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ४१ ॥ मनु० अ० ७ । श्लो० ६३ ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ ४२ ॥ मनु० अ० ७ । श्लो० १०१ ॥

अर्थ—तथा जो सब शास्त्र में निपुण, नेत्रादि के संकेत स्वरूप तथा चेष्टा से हृदय की [illegible] जाननेहारा, शुद्ध बड़ा स्मृतिमान्, देश काल जाननेहारा, सुन्दर जिसका स्वरूप, बड़ा वक्ता और [illegible] में मुख्य हो उसको मुख्य दूत और स्वराज्य और परराज्य के समाचार देनेहारे अन्य दूतों को भी नियत करे ॥ ४१ ॥ तथा राजादि राजपुरुष अलब्ध राज्य की इच्छा दण्ड से, और प्राप्त राज्य की रक्षा [illegible] से, [illegible] और धन को व्यापार और व्याज से बढ़ा और सुपात्रों के द्वारा सत्यविद्या और [illegible] के प्रचार [illegible] उत्तम व्यवहारों में बढ़े हुए धन आदि पदार्थों का व्यय करके सब की उन्नति सदा किया करें ॥ ४२ ॥

विधि :—सदा स्त्री पुरुष १० (दश) बजे शयन और रात्रि के पहिले प्रहर वा ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म अर्थ का विचार किया करें, और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो, तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें, किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहार विहार औषध सेवन सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिये ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना भी किया करें कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके, इस के लिये निम्न-लिखित मन्त्र हैं :—

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम * ॥ १ ॥ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।

---

* हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात वेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः) (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः) (भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे (प्रातः) (सोमम्) [illegible] अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक [illegible] को (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं वैसे प्रातः समय तुम लोग भी किया करो ॥ १ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगभक्तीति ॥१॥ भग प्रणेर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥२॥ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥३॥ भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥४॥ ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० १—४ ॥

* (प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्ता) विशेष करके धारण करनेहारा (आध्रः) सब ओर से धारणकर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जाननेहारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी विनाशदाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षीति) इस प्रकार सेवता करता हूँ और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सब को (आह) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का उत्पन्न करने और धारण करनेहारा हूँ इस मेरी उपासना विद्या और मेरी आज्ञा में चला करो इस से (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥१॥

* हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सब के उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देनेहारे (भग) सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर (नः) हमको (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिये और उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिये, हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिये (प्रजनय) प्रगट कीजिये, हे (भग) आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्यवाले (प्र, स्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥२॥

* हे भगवन् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देनेहारे (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें ॥३॥

* हे (भग) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर ! जिससे (तम) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद ! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे २ सत्य कर्मों में बढ़ानेहारे (भव) हूजिये और जिससे (भगवन्) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता के होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिये (देव) उसी देव से (देवाः वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः सकलैश्वर्यसम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन मन धन से (स्याम) होवें ॥४॥

इस प्रकार परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करना। तत्पश्चात् शौच, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके पश्चात् एक कोश वा डेढ़ कोश एकान्त जङ्गल में जा के योगाभ्यास की रीति से परमेश्वर की उपासना करे। सूर्योदय पर्यन्त अथवा घड़ी आध घड़ी दिन चढ़े तक घर में आके सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म नीचे लिखे प्रमाणे यथाविधि उचित समय में किया करें। इन नित्य करने के योग्य कर्मों में लिखे हुए मन्त्रों का अर्थ और प्रमाण पञ्चमहायज्ञविधि में देख लेवें। प्रथम शरीरशुद्धि अर्थात् स्नान पर्यन्त कर्म करके सन्ध्योपासन का आरम्भ करें। आरम्भ में दक्षिण हस्त में जल लेके:—

आचमन मन्त्र—

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रीयतां स्वाहा ॥ ३ ॥ आश्वलायन गृ० सू० अ० १। कं० २४। सू० १२। २१। २२॥

इस तीन मन्त्रों में से एक से एक २ आचमन कर, दोनों हाथ धो, कान, आंख, नासिका आदि का शुद्ध जल से स्पर्श करके, शुद्ध देश, पवित्रासन पर, जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके, नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके, हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के, यथाशक्ति रोके, पश्चात् धीरे २ भीतर लेके भीतर थोड़ा सा रोके, यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करें। नासिका को हाथ से न पकड़े। इस समय परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना हृदय में करके—

आचमन मन्त्र—

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोराभि स्रवन्तु नः ॥

यजु० अ० ३६। मं० १२॥

इस मन्त्र को एक बार पढ़ के तीन आचमन करे। पश्चात् पात्र में से मध्यमा अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वामपार्श्व निम्नलिखित मन्त्रों से स्पर्श करे—

इन्द्रिय स्पर्श मंत्र—

ओं वाक् वाक् ॥ इस मन्त्र से मुख का दक्षिण और वामपार्श्व॥

ओं चक्षुश्चक्षुः ॥ इससे दक्षिण और वाम नेत्र ॥

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ॥ इससे दक्षिण और वाम श्रोत्र ॥

ओं नाभिः ॥ इससे नाभि ॥

ओं हृदयम् ॥ इससे हृदय ॥

ओं कण्ठः ॥ इससे कण्ठ ॥

ओं शिरः ॥ इससे मस्तक ॥

ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ॥ इससे दोनों भुजाओं के मूल स्कन्ध और—

ओं करतलकरपृष्ठे ॥ इससे दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करके मार्जन करे ॥

मार्जन मन्त्र—

ओं भूः पुनातु शिरसि ॥ इस मन्त्र से शिर पर ॥

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ॥ इस मन्त्र से दोनों नेत्रों पर ॥

ओं स्वः पुनातु कण्ठे ॥ इस मन्त्र से कण्ठ पर ॥

ओं महः पुनातु हृदये ॥ इस मन्त्र से हृदय पर ॥

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् ॥ इस से नाभि पर ॥

ओं तपः पुनातु पादयोः ॥ इस से दोनों पगों पर ॥

ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ॥ इस से पुनः मस्तक पर ॥

ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

इस मन्त्र से सब अङ्गों पर छींटा देवे । पुनः पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करता जावे । और नीचे लिखे मन्त्र का जप भी करता जाय—

ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम् ॥

तैत्तिरीयारण्य० प्र० १० । अनु० २७ ॥

इसी रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ (इक्कीस) प्राणायाम करे । तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमात्मा और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखित मन्त्रों से करे, और जगदीश्वर को सर्वव्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्त्तमान रक्खे ॥

अघमर्षण मंत्र—

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत । ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥ ऋ० मं० १० । सू० १९० ॥

इन मन्त्रों को पढ़ के पुनः (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन कर के निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे ।

मनसा परिक्रमा मन्त्र—

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्य एभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

दक्षिणादिग्इन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो० ॥ २ ॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो० ॥ ३ ॥ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षितात्मनिषवः । तेभ्यो० ॥ ४ ॥ ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो० ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषव । तेभ्यो० ॥ ६ ॥

अथर्व० कां० ३ । सू० २७ । मं० १-६ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जान कर निर्भय निश्शङ्क उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना । तत्पश्चात् परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अतिनिकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि कर के करे—

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ । सू० ९९ । मं० १ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥ यजु० अ० ७ । मं० ४६ ॥ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजु० अ० ३३ । मं० ३१ ॥ उद्वयन्तमस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ३ ॥ यजु० अ० ३५ । मं० १४ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ यजु० अ० ३६ । मं० २४ ॥

इन मन्त्रों से परमात्मा का उपस्थान कर के पुनः (शन्नो देवी०) इस से तीन आचमन कर के वेदारम्भ में लिखे० अथवा पञ्चमहायज्ञविधि में लिखे० गायत्री मन्त्र का अर्थ विचारपूर्वक परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना करे, पुनः हे परमेश्वर दयानिधे ! आप की कृपा से जपोपासनादि कर्मों को कर के हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को शीघ्र प्राप्त होवें, पुनः—

ओंनमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥५॥

यजु० अ० १६ । मं० ४१ ॥

इस से परमात्मा को नमस्कार कर के (शन्नो देवी०) इस मन्त्र से तीन आचमन कर के अग्निहोत्र का आरम्भ करे ।

इति संक्षेपतः सन्ध्योपासन विधिः समाप्तः ॥

अथाग्निहोत्रम्

जैसे सायं प्रातः दोनों सन्धिवेलाओं में सन्ध्योपासन करें इसी प्रकार दोनों स्त्री पुरुष * अग्निहोत्र भी दोनों समय में नित्य किया करें। सामान्य प्रकरण में लिखे प्रमाणे अग्न्याधान, समिदाधान और

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ।

इत्यादि ४ मन्त्रों से यथाविधि कुंड के चारों ओर जल प्रोक्षण कर के, शुद्ध किये हुए सुगन्ध्यादि-युक्त घी को तपा के, पात्र में लेके, कुंड से पश्चिम भाग में, पूर्वाभिमुख बैठ के, आघाराज्यभागाहुति चार देके, नीचे लिखे हुए मन्त्रों से प्रातःकाल अग्निहोत्र करे—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र सायङ्काल में अग्निहोत्र के जानो।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥

इस मन्त्र को मन से उच्चारण कर के तीसरी आहुति देनी।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

य० अ० ३ । मं० ६ । १० ॥

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं आहुति देनी चाहिये:—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये, प्राणायइदन्न मम । १ ॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम ॥ २ ॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृत ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ६ ॥ यजु० अ० ३२ । मं० १४ ॥ ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥ ७ ॥ य० अ० ३० । मं० ३ ॥ ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम स्वाहा ॥ ८ ॥

य० अ० ४० । मं० १६ ॥

* किसी विशेष कारण से जो दो पुरुष अग्निहोत्र के समय दोनों साथ उपस्थित न हो सकें तो एक ही स्त्री वा पुरुष दोनों की आहुति करे तो एक एक मन्त्र को दो दो बार पढ़ के दो दो आहुति करें।

इन आठ मन्त्रों से एक २ मन्त्र करके एक २ आहुति देवे। सब आहुति देके

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक २ बार पढ़के एक २ करके तीन आहुति देवे।

इत्यग्निहोत्रविधिः संक्षेपतः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्रविधि पूर्ण करके तीसरा पितृयज्ञ करे अर्थात् जीते हुए माता पिता आदि की यथावत सेवा करनी पितृयज्ञ कहाता है ॥ ३ ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिः

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ओं कुहै स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥ मनु० अ० ३ । श्लो० ८५, ८६ ॥

अर्थ—यह सब प्रभु के नाम हैं उसकी आज्ञा पालने के लिये यह आहुतियां दी जाती हैं।

इन दशमन्त्रों से घृतमिश्रित भात को, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाक में बना हो उसकी दश आहुति करे। तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करे—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ इससे पूर्व ॥

ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ इससे दक्षिण ॥

ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ इससे पश्चिम ॥

ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ इससे उत्तर ॥

ओं मरुद्भ्यो नमः ॥ इस से द्वार ॥

ओं अद्भ्यो नमः ॥ इससे जल ॥

ओं वनस्पतिभ्यो नमः ॥ इससे मूसल और ऊखल ॥

ओं श्रियै नमः ॥ इस से ईशान * ॥

ओं भद्रकाल्यै नमः ॥ इससे नैर्ऋत्य † ॥

---

* घर की छत में ऐसा मनु में मिलता है। अ० ३ । श्लो० ८६ ॥

† घर के बाद में मनु० ॥ ८८ ॥

ओं ब्रह्मणे नमः । ओं अद्भ्यो नमः ॥ इससे मार्ज ॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं नक्तंचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ इससे ऊपर ॥

ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥ इससे पृष्ठ ॥

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ इससे दक्षिण ॥ मनु० अ० ३ । श्लो० ८७—९१ ॥

अर्थ—प्रभु के सब गुणों और उसके नामों के लिए नमस्कार ।

इन मन्त्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना । यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को दे देना; नहीं तो अग्नि में धर देना । तत्पश्चात् घृत सहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ १ ॥ मनु० अ० ३ । श्लो० ९२ ॥

अर्थ—कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग थाली में धर और वे छः भाग जिस जिस के नाम हैं उस उस को देना चाहिए ॥ ४ ॥

अथातिथियज्ञः

पांचवां—जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात रहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त होना अतिथियज्ञ कहाता है । उसको नित्य किया करें । इस प्रकार पञ्च महायज्ञों को स्त्री पुरुष प्रति दिन करते रहें ॥ ५ ॥

मासिक विधि—

इसके पश्चात् पक्षयज्ञ अर्थात् पौर्णमासी और अमावस्या के दिन नैत्यिक अग्निहोत्र की आहुति दिये पश्चात् पूर्वोक्त स० प्रकरण में लिखे प्रमाणेस्थालीपाक बनाके निम्नलिखित मन्त्रों से विशेष आहुति करें ॥

अमावस्या वा पूर्णमासी की आहुति—

ओं अग्नये स्वाहा ॥ ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विष्णवे स्वाहा ॥

इन तीन मन्त्रों से स्थालीपाक की तीन आहुति देनी । तत्पश्चात् लिखे प्रमाणे व्याहृति आज्याहुति ४ देनी, परन्तु इसमें इतना भेद है कि अमावस्या के दिन :—

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ इस मन्त्र के बदले—

ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥

इस मन्त्र को बोल के स्थालीपाक की आहुति देवे । इस प्रकार पक्षयज्ञ अर्थात् जिस के घर में अभाव से अग्निहोत्र न होता हो तो सर्वत्र पक्षयागादि में सा० प्रकरण में लिखे प्रमाणे अग्निकुण्ड, यज्ञ

सामग्री, यज्ञमण्डप, आज्याधान, समिदाधान, सामान्य प्रकरणोक्त आघारावाज्यभागाहुति, और वेदी लिखे प्रमाणे वेदी के चारों ओर जल सेचन करके, पृष्ठ ३—१६ में लिखे प्रमाणे ब्रह्मयज्ञान्त स्वस्तिवाचन शान्तिकरण भी यथायोग्य करें, और जब जब नवान्न आवे तब तब नवसस्येष्टि और संवत्सर के आरम्भ में निम्नलिखित विधि करें। अर्थात् जब जब नवीन अन्न आवे तब तब सस्येष्टि करके नवीन अन्न का भोजन का आरम्भ करें—

नवशस्येष्टि और संवत्सरेष्टि करना हो तो जिस दिन प्रसन्नता हो वही शुभ दिन जाने। ग्राम और शहर के बाहर किसी शुद्ध खेत में यज्ञमण्डप करके, पृष्ठ ३—२५ तक लिखे प्रमाणे सब विधि करके, प्रथम आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) तथा अष्टाज्याहुति ८ (आठ) वे सोलह आज्याहुति करके कार्यकर्त्ता—

नव शस्येष्टि या संवत्सरेष्टियज्ञ—

ओं द्यौर्वी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः । तमिहेन्द्रमुपह्वये शिवा नः सक्तु हेतयः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं यन्मे किंचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन् । तन्मे सर्वꣳसमृध्यतां जीवतः शरदः शतꣳ स्वाहा ॥ २ ॥ ओं सम्पत्तिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥ ३ ॥ ओं यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम् । इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीताꣳ सा मे त्वन्नपायिनी भूयात्कर्मणि स्वाहा । इदमिन्द्रपत्न्यै—इदन्न मम ॥ ४ ॥ ओं अधारयती लोपती सृष्टावती बिभर्ति या । प्राणभृतो अतन्द्रिता । सत्यमालिनीमुपह्वये सा मे त्वन्नपायिनी भूयात्कर्मणि स्वाहा । इदं सीतायै—इदन्न मम ॥ ५ ॥

(पार० कां० २ । कं० १७ ॥)

इन मन्त्रों से प्रधान होम की ५ (पांच) आज्याहुति करके—

ओं सीतायै स्वाहा । ओं प्रजायै स्वाहा । ओं रय्यै स्वाहा । ओं भूत्यै स्वाहा ।

(पार० कां० २ । कं० १८ ॥)

इन ४ (चार) मन्त्रों से ४ (चार), और सा० प्र० में लिखे (यदस्य०) मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति एक, ऐसे ५ (पांच) स्थालीपाक की आहुति देके, पश्चात् सा० प्रकरण में लिखे प्रमाणे अष्टाज्याहुति, व्याहृति, आहुति ४ (चार) ऐसे १२ (बारह) आज्याहुति देके, वामदेव्यगान, ईश्वरोपासना, स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके यज्ञ की समाप्ति करें।

अथ शालाकर्मविधिं वक्ष्यामः

शाला उसको कहते हैं जो मनुष्य और पश्वादि के रहने अथवा पदार्थ रखने के अर्थ गृह वा

[illegible] है। इसके दो विषय हैं एक प्रमाण और दूसरा विधि। उसमें से प्रथम प्रमाण और पश्चात् विधि लिखेंगे॥

अत्र प्रमाणानि—उपमितां प्रतिमितामाथो परिमितामुत शालाया विश्ववाराया नद्धानि वृतामसि ॥ १ ॥ हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः । सदो देवानामसि देवि शाले ॥ २ ॥

अथर्व० कां० ९ । सू० ३ । मं० १, २ ॥

अर्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो कोई किसी प्रकार का घर बनावें तो वह (उपमितम्) सब प्रकार की उत्तम उपमायुक्त कि जिसको देख के विद्वान् लोग सराहना करें, (प्रतिमिताम्) प्रतिमान अर्थात् एक द्वार के सामने दूसरा द्वार कोणें और कक्षा भी सम्मुख हों, (अथो) इसके अनन्तर (परिमिताम्) वह शाला चारों ओर के परिमाण से समचौरस हो, (उत) और (शालायाः) शाला (विश्ववारायाः) अर्थात् उस घर के द्वार चारों ओर वायु को स्वीकार करने वाले हों, (नद्धानि) उसके बन्धन और चिनाई दृढ़ हों। हे मनुष्यो ! ऐसी शाला को जैसे हम शिल्पी लोग (विवृतामसि) अच्छे प्रकार ग्रथित अर्थात् बन्धनयुक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १ ॥ उस घर में एक (हविर्धानम्) होम करने के पात्र रखने का स्थान, (अग्निशालम्) अग्निहोत्र का स्थान, (पत्नीनाम्) स्त्रियों के (सदनम्) रहने का (सदः) स्थान, और (देवानाम्) पुरुषों और विद्वानों के रहने, बैठने, मेल मिलाप करने और सभा का (सदः) स्थान तथा स्नान भोजन ध्यान आदि का भी पृथक् पृथक् एक २ घर बनावे इस प्रकार की (देवि) दिव्य कामनाओं से (शाले) बनाई हुई शाला (असि) सुखदायक होती है ॥ २ ॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद्व्यचस्तेन शालां प्रतिगृह्णामि ते इमाम् । मदन्तरिक्षं वसवो वि तारयन्तद्रुद्रा वि मृजन्तु पृष्ठात् । तत्पूषैवेदमुदरं शेवधिभ्यः । तेन शालां प्रतिगृह्णामि तस्मै ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वस्तभ्नात्पुरुषो विश्वकर्मा पृथक्पाजांसि सिसृता पृथूनि । विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ ४ ॥

अथर्व० कां० ९ । सू० ३ । मं० १५, १६ ॥

अर्थ—उस शाला में (अन्तरा) भिन्न भिन्न (पृथिवीम्) शुद्ध भूमि अर्थात् शालों के स्थान स्थान शुद्ध हों, (च) और (द्याम्) जिस में सूर्य का प्रतिभास आवे वैसी प्रकाशस्वरूप भूमि के समान दृढ़ शाला बनावें, (च) और (यत्) जो (व्यचः) उसी की व्याप्ति अर्थात् विस्तार है सो ! (ते) तेरे लिये है (तेन) उसी से युक्त (इमाम्) इस (शालाम्) घर को बनाता हूं, तू इसमें निवास कर और मैं भी निवास के लिये इसको (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं, (यत्) जो उसके बीच में (अन्तरिक्षम्) पुष्कल [illegible] (रजसः) उस घर का (विमानम्) विशेष मान परिमाण युक्त लम्बी ऊंची छत और (उदरम्) भीतर का प्रमाण विस्तारयुक्त होवे (तत्) उस को (शेवधिभ्यः) सुख के आधाररूप अनेक कक्षाओं से सुशोभित (अहम्) मैं (कृण्वे) करता हूं, (तेन) इस पूर्वोक्त लक्षणमात्र से युक्त (शालाम्)

स्वामी को (वयम्) इस गृहाश्रम के सब व्यवहारों के लिये (प्रतिगृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ जो (शाले) शाला (ऊर्ज्जस्वती) बहुत बलारोग्यपराक्रम को बढ़ाने वाली और धन धान्य से पूरित सम्बन्ध वाली, (पयस्वती) जल दूध रसादि से परिपूर्ण, (पृथिव्याम्) पृथिवी में (मिता) परिमाणयुक्त, (निर्मिता) निर्मित की हुई, (विश्वान्नम्) संपूर्ण अन्नादि ऐश्वर्य को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (प्रतिगृह्णतः) ग्रहण करनेहारों की रोगादि से (मा हिंसीः) पीड़ित न करे वैसी घर बनाना चाहिये ॥ ४ ॥

ब्रह्मणा शाला निर्मिता कविभिर्निर्मिता मिताम् । इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्य सदः ॥ ५ ॥

अथर्व० कां० ९ । सू० ३ । मं० १९ ॥

अर्थः—(अमृतौ) स्वरूप से नाशरहित (इन्द्राग्नी) वायु और पावक (कविभिः) उत्तम विद्वान् शिल्पियों ने (मिताम्) प्रमाणयुक्त अर्थात् माप में ठीक जैसी चाहिये वैसी (निर्मिताम्) बनाई हुई (शालाम्) शाला को और (ब्राह्मणा) चारों वेदों के जाननेहारे विद्वान् ने सब ऋतुओं में सुख देनेहारी (निर्मिताम्) बनाई (शालाम्) शाला को प्राप्त होकर रहने वालों की (रक्षताम्) रक्षा करें। अर्थात् चारों ओर का शुद्ध वायु आवे अशुद्ध वायु को निकालता रहे और जिसमें सुगन्ध्यादि घृत का होम किया जाय वह अग्नि दुर्गन्ध को निकाल सुगन्ध को स्थापन करे। वह (सोम्यम्) ऐश्वर्य आरोग्य सर्वदा सुखदायक (सदः) रहने के लिये उत्तम घर है। उसी को निवास के लिये ग्रहण करे ॥ ५ ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते । अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ३ । मं० २१ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! (या) जो (द्विपक्षा) दो पक्ष अर्थात् मध्य में एक और पूर्व पश्चिम में एक २ शालायुक्त घर अथवा (चतुष्पक्षा) जिसके पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर में एक २ शाला और इनके मध्य में पांचवीं बड़ी शाला वा (षट्पक्षा) एक २ बीच में बड़ी शाला और दो २ पूर्व पश्चिम तथा एक २ उत्तर दक्षिण में शाला हों, (या) जो ऐसी शाला (निर्मीयते) बनाई जाती है वह उत्तम होती है, और इससे भी जो (अष्टापक्षाम्) चारों ओर दो २ शाला और उनके बीच में एक नवमी शाला हो अथवा (दशपक्षाम्) जिसके मध्य में दो शाला और उनके चारों दिशाओं में दो २ शाला हों, उस (मानस्य) परिमाण के योग से बनाई हुई (शालाम्) शाला जैसे (पत्नीम्) पत्नी को प्राप्त होके (अग्निः) अग्निमय आर्त्तव और वीर्य (गर्भ इव) गर्भरूप होके (आशये) गर्भाशय में ठहरता है वैसे सब शालाओं के द्वार दो २ हाथ पर सब बराबर हों, और जिसकी चारों ओर की शालाओं का परिमाण तीन २ गज, और मध्य की शालाओं का छः २ गज से परिमाण न्यून न हो और चार २ गज चारों दिशाओं की ओर आठ २ गज मध्य की शालाओं का परिमाण हो, अथवा मध्य की शालाओं का दश २ गज अर्थात् बीस २ हाथ से विस्तार अधिक न हो, बनाकर गृहस्थों को रहना चाहिये। यदि वह सभा का स्थान हो तो बाहर की ओर द्वार में चारों ओर [illegible] मध्य में गोल २ स्तम्भ बनाकर चारों ओर खुला बनाना चाहिये कि जिसके कपाट खोलने से [illegible] वायु उसमें आवे और सब घरों के चारों ओर वायु आने के लिये [illegible] कूप भी होने चाहियें वैसे घरों में सब लोग रहें ॥ ६ ॥

प्रतीचीनं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रपद्येहसं मृ । अभिहाऽन्तरुषसस्ते प्रथमा द्वाः ॥ ७ ॥

अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० २२ ॥

अर्थ—जो (शाले) शालागृह (प्रतीचीनः) पूर्वाभिमुख तथा जो गृह (प्रतीचीम्) पश्चिम द्वार युक्त (अहिंसतीम्) हिंसादि दोष रहित अर्थात् पश्चिम द्वार के सम्मुख पूर्व द्वार जिस में (हि) निश्चय कर (अन्तः) बीच में (अग्निः) अग्नि का घर (च) और (आपः) जल का स्थान (अतत्र) और सत्य के ध्यान के लिये एक स्थान (प्रथमा) प्रथम (द्वाः) द्वार हैं, मैं (त्वा) उस शाला को (प्रैमि) प्रकर्षता से प्राप्त होता हूं ॥ ७ ॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव । वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ ८ ॥

(प्रति)

अथर्व० कां० ६ । सू० ३ । मं० २४ ॥

अर्थ—हे शिल्पि लोगो ! जैसे (नः) हमारी (शाले) शाला अर्थात् गृह (पाशम्) बन्धन को (मा प्रतिमुचः) कभी न छोड़ें जिस में (गुरुर्भारः) बड़ा भार (लघुर्भव) छोटा होवे वैसी बनाओ (त्वा) उस शाला को (यत्र, कामम्) जहां जैसी कामना हो वहां वैसी हम लोग (वधूमिव) स्त्री के समान (भरामसि) स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो । ८ ॥

इस प्रकार प्रमाणों के अनुसार जब घर बन चुके तब प्रवेश करते समय क्या क्या विधि करना सो नीचे लिखे प्रमाणे जानो ।

अथ विधि—जब घर बन चुके तब उस की शुद्धि अच्छे प्रकार करा, चारों दिशाओं के बाहरले द्वारों में आग वेदी और एक वेदी घर के मध्य बनावें अथवा तांबे का वेदी के समान कुण्ड बनवा लेवे कि जिस से अग्न ठिकाने एक कुंड ही में काम हो जावे । सब प्रकार की सामग्री अर्थात् सा० प्रकरण में लिखे समग्री समिधा, घृत, चावल, मिष्ट, सुगंध पुष्टिकारक द्रव्यों को ले के शोधन कर प्रथम दिन रख लेवे, जिस दिन गृहपति का चित्त प्रसन्न होवे उसी शुभ दिन गृहप्रतिष्ठा करे । वहां ऋत्विज, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मा का वरण करे जो कि धर्मात्मा विद्वान् हों, उन में से होता का आसन पश्चिम और उस पर वह पूर्वाभिमुख अध्वर्यु का आसन उत्तर में उस पर वह दक्षिणाभिमुख, उद्गाता का पूर्व दिशा में आसन उस पर वह पश्चिमाभिमुख, और ब्रह्मा का दक्षिण दिशा में उत्तमासन बिछा कर उत्तराभिमुख, इस प्रकार चारों आसनों पर चार पुरुषों को बैठावे और गृहपति सदन पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठा करे, ऐसे ही घर के मध्य वेदी के चारों ओर दूसरे आसन बिछा रक्खे, पश्चात् निष्क्रम्य द्वार जिस द्वार से मुख्य कर के घर से निकलना और प्रवेश करना हो उस जो मुख्य द्वार हो उसी द्वार के समीप ब्रह्मा सहित बाहर ठहर कर—

ओं अच्युताय भौमाय स्वाहा ।

अर्थ—स्थिर भगवान् की आज्ञा पालने के लिये ।

इस से एक आहुति दे कर, शाला का स्तम्भ जिस में यज्ञ लगाई गई खड़ा करे, तीन पर के ऊपर चारों कोणों पर चार ध्वजा खड़ी करे, तथा कार्यकर्त्ता गृहपति स्तम्भ खड़ा कर के उस के मूल में जल से सेचन करे जिस से वह दृढ़ रहे। पुनः द्वार के सामने बाहर जा कर नीचे लिखे चार मन्त्रों से जल सेचन करे।

ओं इमामुच्छ्रयामि भुवनस्य नाभिं वसोर्धारां प्रतरणीं वसूनाम्।
इहैव ध्रुवां निमिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठतु घृतमुच्छ्रयमाणा॥ १॥

इस मन्त्र से पूर्व द्वार के सामने जल छिटकावे।

अश्वावती गोमती सूनृतावत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय।
आ त्वा शिशुरक्रिन्दन्दत्वा गावो धेनवो वाश्यमानाः॥ २॥

इस मन्त्र से दक्षिण द्वार।

आ त्वा कुमारस्तरुण आ वत्सो जगदैः सह। आ त्वा परिस्रुत कुम्भमादधन्नः
कलशैरुप। क्षेमस्य पत्नी बृहती सुवासाः रयिं नो धेहि सुभगे सुवीर्यम्॥ ३॥

इस मन्त्र से पश्चिम द्वार॥

अश्वावद्गोमद्वृजवत्तृणं वनस्पतेरिव। अस्मिन्नः पूर्यतां रयिरिदमद्भ्रेयो वसानः॥४॥

इस मन्त्र से उत्तर द्वार के सामने जल छिटकावे। तत्पश्चात् सब द्वारों पर पुष्प और पल्लव तथा कदलीस्तम्भ वा कदली के पत्ते भी द्वारों की शोभा के लिये लगाकर, पश्चात् गृहपति—

हे ब्रह्मन्! प्रविशामीति॥ ऐसा वाक्य बोले और ब्रह्मा—

वरं भवान् प्रविशतु

ऐसा प्रत्युत्तर देवे और ब्रह्मा की अनुमति से—

ओं ऋचं प्रपद्ये शिवं प्रपद्ये

इस वाक्य को बोल के भीतर प्रवेश करे। और जो घृत गरम कर, छान कर, सुगन्ध मिलाकर रक्खा हो उस को पात्र में ले के जिस द्वार से प्रथम प्रवेश करे उसी द्वार से प्रवेश करके सा० प्रकरण में लिखे प्रमाणे आज्यभावन समिदाधान, जलप्रोक्षण, आचमन करके पश्चात् लिखे प्रमाणे घृत की आघाराज्यभागाहुति ४ (चार) और व्याहृति आहुति ४ (चार) नवमी स्विष्टकृत् आज्याहुति एक अर्थात् नियत की हुई वेदियों में आज्याधान से ले के स्विष्टकृत् आहुतिपर्यन्त विधि करके पश्चात् पूर्वदिशाद्वारस्थ वेदी में—

ओं प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा॥

इन मन्त्रों से पूर्वद्वारस्थ वेदी में दो घृताहुति देवे। वैसे ही—

ओं दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा। ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा॥

[illegible] इन मन्त्रों से दक्षिणद्वारस्थ वेदी में एक २ मन्त्र करके दो आज्याहुति और—

पश्चिमद्वारस्थ वेदी में दो आहुति—

ओं प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इन दो मन्त्रों से दो आज्याहुति पश्चिमदिशाद्वारस्थ कुण्ड में देवे ।

उत्तरद्वारस्थ वेदी में दो आहुति—

ओं उदीच्या दिश शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्य स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इन से उत्तरदिशास्थ वेदी में दो आज्याहुति देवे, पुनः मध्यशालास्थ वेदी के समीप जाके स्व २ दिशा में बैठ के—

मध्य वेदी में—

ओं ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इन से मध्य वेदी में दो आज्याहुति ॥

ओं ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इनसे भी दो आहुति मध्यवेदी में और—

ओं दिशो दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा । ओं देवेभ्यः स्वाहेभ्यः स्वाहा ॥

इन से भी दो आज्याहुति मध्यस्थ वेदी में देके । पूनः पूर्ण दिशास्थ द्वारस्थवेदी में अग्नि को प्रज्वलित करके, वेदी से दक्षिण भाग में ब्रह्मासन तथा होता आदि के पूर्वोक्त प्रकार आसन बिछवा, उसी वेदी के उत्तर भाग में एक कलश स्थापन कर, पृष्ठ १६ में लिखे प्रमाणे स्थालीपाक बना के पृथक् निष्क्रम्य-द्वार के समीप जा ठहर कर ब्रह्मादि सहित गृहपति मध्यशाला में प्रवेश करके ब्रह्मादि को दक्षिणादि आसन-पर बैठा स्वयं पूर्वाभिमुख बैठ के संस्कृत घी अर्थात् जो गरम कर छान जिस में कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो, पात्र में ले के सब के सामने एक २ पात्र भर के रक्खे और चमसा में ले के—

चार घृताज्याहुति—

ओं वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा ॥१॥ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधिगयस्फानो गोभिर-श्वेभिरिन्दो । अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व स्वाहा ॥२॥ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातमत्या । पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा ॥३॥ ऋ० मं० ७ । सू० ५४ । मं० १–३ ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः स्वाहा ॥४॥

ऋ० मं० ७ । सू० ५५ । मं० १ ॥

इन छः मन्त्रों से छः आहुति देके जो स्थाली पाक बचा रहे उसको दूसरे पात्र में लेवे। उस पर पश्चात् घृत लेपन करके अपने दाहिने हाथ की ओर पृथक् २ थोड़ा २ लेकर—

ओ अग्निमिन्द्रं बृहस्पतिं विश्वाँश्च देवानुपह्वये। सरस्वतीञ्च वाजीञ्च वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥१॥ सर्पदेवजनान्त्सर्वान्हिमवन्तं सुदर्शनम्। वसूँश्च रुद्रानादित्यानीशानं जगदः सह। एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥२॥ पूर्वाह्णमपराह्णं चोभौ माध्यन्दिनं सह। प्रदोषमर्धरात्रं च व्युष्टां देवीं महापथाम्। एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥३॥ ओं कर्त्तारञ्च विकर्तारं विश्वकर्माणमोषधीश्च वनस्पतीन्। एतान्त्सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥४॥ धातारं च विधातारं निधीनां च पतिं सह। एतान् सर्वान् प्रपद्येहं वास्तु मे दत्त वाजिनः स्वाहा ॥५॥ स्योनꣳ शिवमिदं वास्तु दत्तं ब्रह्मप्रजापती। सर्वाश्च देवताश्च स्वाहा ॥

स्थालीपाक अर्थात् घृतयुक्त भात की इन छः मन्त्रों से छः आहुति देकर, कांस्यपात्र में उदुम्बर, गूलर, पलाश के पत्ते, शाद्वल तृणविशेष, गोमय, दही, मधु, घृत, कुशा और यव को ले के उन सब वस्तुओं को मिला कर—

ओं श्रीश्च त्वा यशश्च पूर्वे सन्धौ गोपायेताम् ॥

इस मन्त्र से पूर्वद्वार।

यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च दक्षिणे सन्धौ गोपायेताम् ॥

इससे दक्षिण द्वार।

अन्नञ्च त्वा ब्राह्मणश्च पश्चिमे सन्धौ गोपायेताम् ॥

इस से पश्चिम द्वार।

ऊर्क् च त्वा सूनृता चोत्तरे सन्धौ गोपायेताम् ॥

इससे उत्तर द्वार के समीप उनको बखेरे और जल प्रोक्षण भी करे॥

केता च मा सुकेता च पुरस्ताद् गोपायेतामित्यग्निर्वैकेताऽऽदित्यः सुकेता तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा पुरस्ताद् गोपायेताम् ॥ १ ॥

इससे पूर्व दिशा में परमात्मा का उपस्थान करके, दक्षिण द्वार के सामने दक्षिणाभिमुख होके—

दक्षिणतो गोपायमानं च मा रक्षमाणा च दक्षिणतो गोपायेतामित्यग्निर्वै गोपायमानः सूर्यो रक्षमाणा ते प्रपद्ये ताभ्यां नमोऽस्तु ते मा दक्षिणतो गोपायेताम् ॥ २ ॥

इस प्रकार जगदीश का उपस्थान करके, पश्चिम द्वार के सामने पश्चिमाभिमुख हो के—

दीदिविंश मा जागृविंश पथाद् गोपायेतामित्यहं वै दीदविः प्राणो जागृविस्तौ गोपायेतां ताभ्यां नमोऽस्तु तौ मा पश्चाद् गोपायेताम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार पश्चिम दिशा में सर्वरक्षक परमात्मा का उपस्थान करके, उत्तर दिशा में उत्तर द्वार के सामने उत्तराभिमुख खड़े रह के—

अन्नप्रश्च मानवद्रणश्चोत्तरतो गोपायेतामिति चन्द्रमा वा अन्नमो वायुरनवद्राणस्तौ प्रपद्ये ताभ्यां नमोस्तु तौ मोत्तरतो गोपायेतामिति ॥ धर्मस्थूणराज॰ श्रीर्वा एषाहोरात्रे द्वारफलके इन्द्रस्य गृहा वसवो वरूथिनस्तानहं प्रपद्ये सह प्रजया पशुभिस्सह यन्मे किञ्चिदस्त्युपहूतः सर्वमयाः । सप्तायः साधुसंभवस्त्वं त्वा शाले अभिष्टवीरा गृहा नः सन्तु सर्वतः ॥

इस प्रकार उत्तर दिशा में सर्वाधिष्ठाता परमात्मा का उपस्थान करके, सुपात्र वेदवित् धार्मिक होता आदि सपत्नीक ब्राह्मण तथा इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को उत्तम भोजन कराके यथायोग्य सत्कार करके दक्षिणा दे, पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्री प्रसन्नतापूर्वक विदा करें और वे जाते समय गृहपति और गृहपत्नी आदि को—

सर्वे भवन्तोऽत्रानन्दिताः सदा भूयासुः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद दे के अपने २ घर को जावें। इसी प्रकार आराम आदि की भी प्रतिष्ठा करें। इसमें इतना ही विशेष है कि जिस ओर का वायु बगीचे को जावे उसी ओर होम करें कि जिसका सुगन्ध वृक्ष आदि को सुगन्धित करे। यदि उसमें घर बना हो तो शाला के समान उसकी भी प्रतिष्ठा करे ॥

इति शालादिसंस्कारविधिः

इस प्रकार गृहादि की रचना करके गृहाश्रम में जो २ अपने २ वर्ण के अनुकूल कर्त्तव्य कर्म हैं उन को यथावत् करें ॥

अथ ब्राह्मणस्वरूपलक्षणम्

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥ मनु० ॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥ गीता० ॥

अर्थ—१ (एक)—निष्कपट होके प्रीति से पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावें। २ (दो)—पूर्ण विद्या पढ़ के। ३ (तीन)—अग्निहोत्रादि यज्ञ करे। ४ (चौथा)—यज्ञ करावें। ५ (पांचवें)—विद्या अथवा सुवर्ण आदि का सुपात्रों को दान देवें। ६ (छठा) न्याय से धनोपार्जन करनेवाले गृहस्थों से दान लेना।

भी। इनमें से दो (तीन) कर्म यजना, यज्ञ करना, दान देना धर्म में और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना जीविका है। मनु—

प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ॥ मनु० ॥

जो दान लेना है वह नीच कर्म है किन्तु पढ़ा के और यज्ञ करा के जीविका करनी उत्तम है॥ (शमः) मन को अधर्म में न जाने दे किन्तु अधर्म करने की इच्छा भी न उठने देवे (दमः) श्रोत्रादि इन्द्रियों को अधर्माचरण से सदा दूर रक्खे दूर रख के धर्म ही के बीच में प्रवृत्त रक्खे (तपः) ब्रह्मचर्य, विद्या, योगाभ्यास की सिद्धि के लिये शीत, उष्ण, निन्दा, स्तुति, क्षुधा, तृषा, मानापमान आदि द्वन्द्व का सहना (शौचम्) राग, द्वेष, मोहादि से मन और आत्मा को तथा जलादि से शरीर को सदा पवित्र रखना (क्षान्तिः) क्षमा अर्थात कोई निन्दा स्तुति आदि से सतावें तो भी उन पर कृपालु रहकर क्रोधादि न करना (आर्जवम्) निरभिमान रहना दम्भ स्वात्मश्लाघा अर्थात अपने मुख से अपनी प्रशंसा न करके नम्र सरल शुद्ध पवित्र भाव रखना (ज्ञानम) सब शास्त्रों को पढ़ के विचार कर उनके शब्दार्थ सम्बन्धों को यथावत जानकर पढ़ाने का पूर्ण सामर्थ्य करना (विज्ञानम्) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को जान और क्रियाकुशलता तथा योगाभ्यास से साक्षात करके यथावत उपकार ग्रहण करना कराना (आस्तिक्यम्) परमेश्वर, वेद, धर्म, परलोक परजन्म, पूर्वजन्म, कर्मफल और मुक्ति से विमुख कभी न होना। ये नव कर्म और गुण धर्म में सम्मिलित। सब से उत्तम गुण कर्म स्वभाव को धारण करना ये गुण कर्म जिन व्यक्तियों में हों वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी होवें। विवाह भी इन्हीं वर्ण के गुणकर्म स्वभावों को मिला ही के करें। मनुष्यमात्र में से इन्हीं को ब्राह्मणवर्ण का अधिकार होवे। ॥२॥

अथ क्षत्रियस्वरूपलक्षणम्

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥१॥ मनु० ॥

शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम् ॥२॥ गीता०

अर्थः—दीर्घ ब्रह्मचर्य से (अध्ययनम्) साङ्गोपाङ्ग वेदादि शास्त्रों को यथावत पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि और प्रजा को अभयदान देना (प्रजानां रक्षणम्) प्रजाओं का सब प्रकार से सर्वदा यथावत पालन करना यह धर्म क्षत्रियों के धर्म के लक्षणों में, और शास्त्रविद्या का पढ़ाना न्यायाघर और देना में जीविका करना क्षत्रियों की जीविका है (विषयेष्वप्रसक्तिः)

---

* धर्म नाम न्यायाचरण। न्याय नाम पक्षपात छोड़ के वर्त्तना। पक्षपात छोड़ना नाम सर्वदा अहिंसादि निर्वैरता सत्यभाषणादि में स्थिर रहकर, हिंसा द्वेषादि और मिथ्याभाषणादि से सदा पृथक रहना। सब मनुष्यों का यही एक धर्म है। किन्तु जो २ धर्म के लक्षण वर्ण कर्मों में पृथक २ आते हैं इसी से चार वर्ण पृथक २ गिने जाते हैं॥

विषयों में अनासक्त हो के सदा जितेन्द्रिय रहना लोभ व्यभिचार मद्यपानादि नशा आदि दुर्व्यसनों से पृथक् रहकर विनय सुशीलतादि शुभ कर्मों में सदा प्रवृत्त रहना (शौर्यम्) शस्त्र संग्राम मृत्यु और शस्त्रप्रहारादि से न डरना (तेजः) प्रगल्भ उत्तम प्रतापी होकर किसी के सामने दीन व भीरु न होना (धृतिः) चाहे कितनी आपत्, विपत्, क्लेश, दुःख प्राप्त हो तथापि धैर्य रखके कभी न घबराना (दक्ष्यम्) संग्राम, वाग्युद्ध, दूतत्व, विचार आदि सब में अतिचतुर बुद्धिमान् होना (युद्धे, चाप्यपलायनम्) युद्ध में सदा उद्यत रहना युद्ध से कभी फिर कर शत्रु के वश में कभी न होना (दानम्) इस का अर्थ प्रथम श्लोक में आगया (ईश्वरभावः) जैसे परमेश्वर सब के ऊपर दया करके, पितृवत् वर्त्तमान, पक्षपात छोड़ कर, धर्माऽधर्म करने वालों का यथायोग्य सुख दुःखरूप फल देता और अपने सर्वज्ञता आदि साधनों से सब का अन्तर्यामी होकर, सब के अच्छे बुरे कर्मों को यथावत् देखता है, वैसे प्रजा के साथ वर्त्त कर गुप्त दूत आदि से अपने को सब प्रजा का राजपुरुषों के अच्छे बुरे कर्मों से सदा ज्ञात रखना रात दिन न्याय करने और प्रजा को यथावत् सुख देने श्रेष्ठों का मान और दुष्टों को दण्ड करने में सदा प्रवृत्त रहना और सब प्रकार से अपने शरीर को रोगरहित, बलिष्ठ, दृढ़, तेजस्वी, दीर्घायु रख के आत्मा को न्याय धर्म में चलाकर कृतकृत्य करना आदि गुण कर्मों का योग जिस व्यक्ति में हो वह क्षत्रिय और क्षत्रिया होवे। इनका भी इन्हीं गुण कर्मों के मेल से विवाह करना और जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावे वैसे ही राजा पुरुषों और राणी स्त्रियों की न्याय तथा उन्नति आदि किया करे। जो क्षत्रिय राजा न हों वे भी राज में ही यथाधिकार से नौकरी किया करें॥

अथ वैश्यस्वरूप लक्षणम्

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ १॥ मनु०॥

अर्थ—(अध्ययनम्) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (दानम्) अन्नादि का दान देना ये तीन धर्म के लक्षण और (पशूनां रक्षणम्) गाय आदि पशुओं का पालन करना उनसे दुग्धादि का बेचना (वणिक्पथम्) नाना देशों की भाषा, हिसाब, भूगर्भविद्या, भूमि, बीज आदि के गुण जानना और सब पदार्थों के भावाभाव समझना (कुसीदम्) व्याज का लेना* (कृषिमेव च) खेती की विद्या का जानना, अन्न आदि की रक्षा, खात और भूमि की परीक्षा, जोतना आदि व्यवहार का जानना ये चार कर्म वैश्य की जीविका। ये गुण कर्म जिस व्यक्ति में हों वह वैश्य वैश्या। और इन्हीं की परस्पर परीक्षा और योग से विवाह होना चाहिये॥

अथ शूद्रस्वरूप लक्षणम्

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ १॥ मनु०॥

*सवा रुपये सैकड़े से अधिक, चार आने से न्यून ब्याज न लेवे न देवे। जब दूना धन आजाय उससे आगे ब्याज न लेवे न देवे। जितना न्यून ब्याज लेवेगा उतना ही उसका धन बढ़ेगा और कभी धन का नाश और सत्यानाश उसके कुल में न होगा॥

अर्थः—(प्रभुः) परमेश्वर ने (शूद्रस्य) जो विद्याहीन, जिसको पढ़ने से भी विद्या न आती हो, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो उस शूद्र के लिये (एतेषामेव वर्णानाम्) इन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों की (अनसूया) निन्दा से रहित प्रीति से सेवा करना (एवमेव कर्म) यही एक कर्म (समादिशत्) करने की आज्ञा दी है। ये मूर्खत्वादि गुण और सेवा आदि कर्म जिस व्यक्ति में हों वह शूद्र और शूद्रा है। इन्हीं की परीक्षा से इनका विवाह और इनको अधिकार भी ऐसा ही होना चाहिये। इन गुण कर्मों के योग ही से चारों वर्ण होवें तो उस कुल देश और मनुष्यसमुदाय की बड़ी उन्नति होवे और जिनका जन्म जिस वर्ण में हो उसी के सदृश गुण कर्म स्वभाव हों तो अतिविशेष है ॥१॥

अब सब ब्राह्मणादि वर्णवाले मनुष्य लोग अपने २ कर्मों में निम्नलिखित रीति से वर्तें॥

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१॥
नेहेताऽर्थान् प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा। न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥२॥मनु०॥

अर्थः—ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त अपने कर्म को आलस्य छोड़ के नित्य किया करें उसको अपने सामर्थ्य के अनुसार करते हुए, मुक्ति पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥१॥ गृहस्थ कभी किसी दुष्ट के प्रसंग से द्रव्यसंचय न करे, न विरुद्ध कर्म से, न विद्यमान पदार्थ होते हुए उन को गुप्त रख के दूसरे से छल करके और चाहे कितना ही दुःख पड़े तथापि अधर्म से द्रव्यसञ्चय कभी न करे ॥२॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः। अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत् ॥३॥
सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः। यथा तथाऽध्यापयंस्तु साध्वस्य कृतकृत्यता ॥४॥मनु०

अर्थः—इन्द्रियों के विषयों में काम से कभी न फँसे, और विषयों की अत्यन्त आसक्ति अर्थात् प्रसंग को मन से अच्छे प्रकार दूर करता रहे ॥३॥ जो स्वाध्याय और धर्मविरोधी व्यवहार वा पदार्थ हैं उन सबको छोड़ देवे जिस किसी प्रकार से विद्या को पढ़ाते रहना ही गृहस्थ को कृतकृत्य होना है ॥४॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च। नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥५॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति। तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥६॥
न संरम्भेच्च पतितैर्न चाऽऽलापैर्न पूरुषैः। न मूर्खैर्नाविलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७॥
आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥८॥
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥९॥मनु९॥

अर्थः—हे स्त्री पुरुषो! तुम जो धर्म, धन और बुद्ध्यादि की अत्यन्त शीघ्र बढ़ानेहारे हितकारी शास्त्र हैं उनको और वेद के भागों को विद्याओं को नित्य देखा करो ॥५॥ मनुष्य जैसे २ शास्त्रों को विचार कर उसके यथार्थ भाव को प्राप्त होता है वैसे २ अधिक २ जानता जाता है और इस को आनन्द प्राप्त होता जाता है ॥६॥ सज्जन गृहस्थ लोगों को योग्य है कि जो पतित दुष्ट कर्म करने हारे हों उनके सङ्ग

चांडाल, न कंजर, न मूर्ख, न मिथ्याभिमानी और न नीच निश्चय वाले मनुष्यों के साथ कभी निवास करें ॥ ७ ॥ गृहस्थ लोग कभी प्रथम पुष्कल धनी हो के पश्चात् दरिद्र हो जायं उस से अपने आत्मा का अपमान न करें कि हाय हम निर्धनी हो गये इत्यादि विलाप भी न करें किन्तु मृत्युपर्यन्त लक्ष्मी की उन्नति में पुरुषार्थ किया करें और लक्ष्मी को दुर्लभ न समझें ॥ ८ ॥ मनुष्य सदैव सत्य बोलें और दूसरे को कल्याणकारक उपदेश करें। काणे को काणा और मूर्ख को मूर्ख आदि अप्रिय वचन उन के सन्मुख कभी न बोलें और जिस मिथ्याभाषण से दूसरा प्रसन्न होता हो उस को भी न बोलें यह सनातन धर्म है ॥ ९ ॥

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् । कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वयात् ॥१०॥
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ् निबद्धं स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥११॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१२॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥१३॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१४॥ मनु० ॥

अर्थः—सदा विद्यावृद्धों और वयोवृद्धों को नमस्ते अर्थात् उन का मान किया करें। जब वे आपने समीप आवें तब उठ कर मानपूर्वक ले अपने आसन पर बैठावे और हाथ जोड़ के आप समीप बैठे, पूछे (हुं) वे उत्तर देवें और जब जाने लगें तब थोड़ी दूर पीछे २ जा कर नमस्ते कर विदा किया करे और वृद्ध लोग हर वार निकम्मे जहां तहां न जाया करें ॥१०॥ गृहस्थ सदा आलस्य को छोड़ कर वेद और मनुस्मृति में वेदानुकूल कहे हुए अपने कर्मों में निबद्ध और धर्म का मूल सदाचार अर्थात् जो सत्य और सत्पुरुष आप्त धर्मात्माओं का आचरण है उस का सेवन सदा किया करें ॥ ११ ॥ धर्माचरण ही से दीर्घायु उत्तम प्रजा और अक्षय धन को मनुष्य प्राप्त होता है और धर्माचार बुरे अधर्मयुक्त लक्षणों का नाश कर देता है ॥१२॥ और जो दुराचारी पुरुष होता है वह सर्वत्र निन्दित दुःखभागी और व्याधि अल्पायु सदा हो जाता है ॥१३॥ जो सब अच्छे लक्षणों से हीन भी हो कर सदाचारयुक्त सत्य में श्रद्धा और निन्दा आदि दोष रहित होता है वह सुख से सौ वर्ष पर्यन्त जीता है ॥१४॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् । यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥१५॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१६॥
अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् । हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७॥ मनु०

अर्थ—मनुष्य जो जो पराधीन कर्म हो उस उस को प्रयत्न से सदा छोड़े और जो जो स्वाधीन कर्म हो उस उस का सेवन प्रयत्न से किया करे ॥ १५ ॥ क्योंकि जितना परवश होना है वह सब दुःख और जितना स्वाधीन रहना है वह सब सुख कहाता है यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानो ॥ १६ ॥ जो अधार्मिक मनुष्य हो और जिस का अधर्म से सञ्चित किया हुआ धन है और जो सदा हिंसा में अर्थात् वैर में प्रवृत्त रहता है वह इस लोक और परलोक अर्थात् परजन्म में सुख को कभी नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १७ ॥

नोपधार्यते लोके सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ १८ ॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु । न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ १९ ॥
सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा । शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ २० ॥ मनु० ॥

अर्थ—मनुष्य निश्चय कर के जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता वैसे ही किये हुए अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता किन्तु धीरे धीरे अधर्मकर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है ॥ १८ ॥ यदि अधर्म का फल कर्त्ता की विद्यमानता में न हो तो पुत्रों और पुत्रों के समय में न हो तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे ॥ १९ ॥ इस लिये मनुष्यों को योग्य है कि सत्य धर्म और आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के आचरणों और भीतर बाहर की पवित्रता में सदा रमण करें । अपनी वाणी बाहू उदर को नियम और सत्यधर्म के साथ वर्त्तमान रख के शिष्यों को सदा शिक्षा करें ॥ २० ॥

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥ २१ ॥
धर्मं शनैस्सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोक सहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ २२ ॥
उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह । निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥ २३ ॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिसृताः । तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २४ ॥
स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ २५ ॥ मनु० ॥

अर्थ—जो धर्म से वर्जित धनादि पदार्थ और काम हों उन को सर्वथा शीघ्र छोड़ देवे और जो धर्माभास अर्थात् उत्तरकाल में दुःखदायक कर्म हैं और जो लोगों को निन्दित कर्म में प्रवृत्त करने वाले कर्म हैं उन से भी दूर रहे ॥ २१ ॥ जैसे दीमक धीरे धीरे बड़े भारी घर को बना लेती हैं वैसे मनुष्य परजन्म के सहाय के लिये सब प्राणियों को पीड़ा न दे कर धर्म का सञ्चय धीरे धीरे किया करे ॥ २२ ॥ जो मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहें वह नीच नीच पुरुषों का सम्बन्ध छोड़ कर नित्य अच्छे अच्छे पुरुषों से सम्बन्ध बढ़ाता जावे ॥ २३ ॥ जिस वाणी में सब व्यवहार निश्चित वाणी ही जिन का मूल और जिस वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं जो मनुष्य उस वाणी को चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह जानो सब चोरी आदि पाप ही को करता है इस लिए मिथ्याभाषण को छोड़ के सदा सत्यभाषण ही किया करे ॥ २४ ॥ मनुष्यों को चाहिये कि धर्म से वेदादि शास्त्रों का पठन पाठन, गायत्री प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, अग्निहोत्रादि होम, कर्मोपासना ज्ञान विद्या पौर्णमास्यादि इष्टि, पञ्चमहायज्ञ, अग्निष्टोम आदि, न्याय से राज्यपालना, सत्योपदेश और योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से इस शरीर को (ब्राह्मी) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्धी करे ॥ २५ ॥

अर्थ [illegible]—जो २ विशेष बड़े २ काम हों जैसा कि राज्य के सब सभा में निश्चय करके किये जावें।

इसमें प्रमाण—तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । सू० ६ । मं० २ ॥ सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ५५ । मं० ५ ॥ त्रीणि राजाना विदथे परूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ।

अर्थः—(तम्) जो कि संसार में धर्म के साथ राज्यपालनादि किया जाता है उस व्यवहार को सभा और संग्राम तथा सेना सब प्रकार संचित करे ॥ १ ॥ हे सभ्य सभा के योग्य सभापते राजन् ! तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की (पाहि) रक्षा और उन्नति किया कर (ये, च) और जो (सभ्यः) सभा के योग्य धार्मिक आप्त (सभासद) सभासद् विद्वान् लोग हैं वे भी सभा की योजना रक्षा और उससे सबकी उन्नति किया करें ॥ २ ॥ जो (राजाना) राजा और प्रजा के भद्र पुरुषों के दोनों समुदाय हैं वे (विदथे) उत्तम ज्ञान और लाभदायक इस जगत् अथवा संग्रामादि कार्यों में (त्रीणि) राजसभा धर्मसभा और विद्यासभा अर्थात् विद्यादि व्यवहारों की वृद्धि के लिये ये तीन प्रकार की (सदांसि) सभा नियत कर इन्हीं से संसार की सब प्रकार की उन्नति करें ॥ ३ ॥

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुस्स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ १ ॥ धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्ष हेतवः ॥ मनु ॥ मनु० ॥

अर्थः—हे गृहस्थ लोगो ! जो धर्मयुक्त व्यवहार मनुस्मृति आदि में प्रत्यक्ष न कहे हों यदि उनमें शङ्का होवे तो तुम जिसको शिष्ट आप्त विद्वान् कहें उसी को शंकारहित कर्त्तव्य धर्म मानो ॥ १ ॥ शिष्ट सब मनुष्य मात्र नहीं होते किन्तु जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़े हों जो श्रुति प्रमाण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से विधि वा निषेध करने में समर्थ धार्मिक परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् । त्रयवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ ३ ॥ त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ४ ॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च । त्रयवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ५ ॥ एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः । स विज्ञेय परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ६ ॥ मनु० ॥

अर्थः—जैसे शिष्ट न्यून से न्यून १० (दश) पुरुषों की सभा होवे अथवा बड़े विद्वान् तीनों की भी सभा हो सकती है जो सभा से धर्म कर्म निश्चित हों उनका भी आचरण सब लोग करें ॥ ३ ॥

उन देशों में इस प्रकार के विद्वान्, चौथा हैतुक अर्थात् कारण अकारण का ज्ञाता, पांचवां तार्की न्यायशास्त्रवित्, छठा निरुक्त का जाननेहारा, सातवां धर्मशास्त्रवित्, आठवां ब्रह्मचारी, नववां गृहस्थ और दशवां वानप्रस्थ इन महात्माओं की सभा होवे ॥४॥ तथा ऋग्वेदवित् यजुर्वेदवित् और सामवेदवित् इन तीनों विद्वानों की भी सभा धर्मसंशय अर्थात् सब व्यवहारों के निर्णय के लिये होती होनी चाहिये और जितनी सभा में अधिक पुरुष हों उतनी ही उत्तमता है ॥५॥ द्विजों में उत्तम अर्थात् चतुर्थाश्रमी संन्यासी कहता है कि धर्म व्यवहार के करने का निश्चय करे वही परमधर्म समझना किन्तु अज्ञानियों के सहस्रों लाखों और करोड़ों पुरुषों का कहा हुआ, धर्मव्यवहार कभी न मानना चाहिये, किन्तु धर्मात्मा विद्वानों और विशेष परमविद्वानों संन्यासी का वेदादि प्रमाण से कहा हुआ धर्म सब को मानने योग्य है ॥६॥

यदि सभा में मतभेद हो तो बहुपक्षानुसार मानना और समपक्ष में उत्तमों की बात स्वीकार करनी और दोनों पक्षवाले बराबर उत्तम हों तो वहां सन्यासियों की सम्मति लेनी, जिधर पक्षपातरहित सर्वहितैषी सन्यासियों की सम्मति होवे वही उत्तम समझनी चाहिवे।

चतुर्भिरपि चैवैतित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः । दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥७॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥८॥
॥मनु०॥

अथ—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी आदि सब मनुष्यों को योग्य है कि निम्नलिखित धर्म का सेवन और उससे विरुद्ध अधर्म का त्याग प्रयत्न से किया करें ॥७॥ धर्म, न्याय नाम पक्षपात छोड़ सत्य ही का आचरण और असत्य का सर्वदा परित्याग रखना इस धर्म के ग्यारह लक्षण हैं, (अहिंसा) किसी से वैरबुद्धि करके उसके अनिष्ट करने में कभी न वर्त्तना, (धृतिः) सुख दुःख हानि लाभ में भी व्याकुल होकर धर्म को न छोड़ना किन्तु धैर्य से धर्म ही में स्थिर रहना (क्षमा) निन्दा स्तुति मानापमान का सहन करके धर्म ही करना (दमः) मन को अधर्म से सदा हटाकर धर्म ही में प्रवृत्त रखना (अस्तेयम्) मन, कर्म, वचन से अन्याय और अधर्म से पराये द्रव्य का स्वीकार न करना (शौचम्) रागद्वेषादि त्याग से आत्मा और मन को पवित्र और जलादि से शरीर को शुद्ध रखना, (इन्द्रियनिग्रहः) श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों को अधर्म से हटा के धर्म ही में चलाना, (धीः) वेदादि सत्य विद्या ब्रह्मचर्य सत्संग करने और कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि त्याग से बुद्धि को सदा बढ़ाते रहना (विद्या) जिससे भूमि से ले के परमेश्वर पर्यन्त का यथार्थ बोध होता है उस विद्या को प्राप्त होना (सत्यम्) सत्य मानना सत्य बोलना सत्य करना, (अक्रोधः) क्रोधादि दोषों को छोड़कर शान्त्यादि गुणों का ग्रहण धर्म कहाता है इससे विपरीत, अधर्म, और अन्याय पक्षपातसहित आचरण अधर्म जो कि हिंसा वैरबुद्धि, अधैर्य असहन, मन को अधर्म में चलाना, चोरी करना, अपवित्र रहना, इन्द्रियों को न जीतकर अधर्म में चलाना, कुसंग दुर्व्यसन मद्यपानादि से बुद्धि को नाश करना, अविद्या जो कि अधर्माचरण अज्ञान है उसमें फँसना, असत्य मानना असत्य बोलना, क्रोधादि दोषों को ग्रहण करना दुष्ट होना, ये दश प्रकार अधर्म के लक्षण हैं इनसे सदा पृथक् रहना चाहिये।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥ महाभारते० ॥ ९ ॥
सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् । अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ १० ॥
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते । शल्यं चास्य न कृन्तानि विद्धास्तत्र सभासदः ॥ ११ ॥
विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १२ ॥ मनु० ॥

वह सभा नहीं जिस में वृद्ध पुरुष न होवें वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्म ही की बात नहीं बोलते, वह धर्म नहीं है जिस में सत्य नहीं और न वह सत्य है जो जो कि छल से युक्त हो ॥ ९ ॥ मनुष्य को योग्य है कि सभा में प्रवेश न करे, यदि सभा में प्रवेश करे तो सत्य ही बोले, यदि सभा में बैठा हुआ भी असत्य बात को सुन के मौन रहे अथवा सत्य के विरुद्ध बोले वह मनुष्य अतिपापी है ॥ १० ॥ अधर्म से धर्म घायल होकर जिस सभा में प्राप्त होवे उस के घाव को यदि सभासद न पूर देवें तो निश्चय जानो कि उस सभा में सब सभासद ही घायल पड़े हैं ॥ ११ ॥ जिस को सत्पुरुष रागद्वेषरहित विद्वान् अपने हृदय से अनुकूल जानकर सेवन करते हैं उसी पूर्वोक्त को तुम लोग धर्म जानो ॥ १२ ॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १३ ॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १४ ॥ मनु० ॥

जो पुरुष धर्म का नाश करता है उसी का नाश धर्म कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है उस की धर्म भी रक्षा करता है इस लिये मारा हुआ धर्म कभी हम को न मार डाले इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिये ॥ १३ ॥ जो सुख की वृष्टि करने हारा सब ऐश्वर्य का दाता धर्म है उस का जो लोप करता है उस को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् नीच समझते हैं ॥ १४ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्योहेतुरस्य त्वनित्यः ॥ १५ ॥ महाभारते ॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च । हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ १६ ॥ मनु० ॥
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीस्समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १७ ॥ भर्तृहरिः ॥

अर्थः—मनुष्यों को योग्य है कि काम से अर्थात् झूठ से कामना सिद्धि होने के कारण से, वा निन्दा स्तुति आदि के भय से भी, धर्म का त्याग कभी न करें और न लोभ से, चाहे झूठ अधर्म से चक्रवर्त्ती राज्य भी मिलता हो तथापि धर्म को छोड़कर चक्रवर्त्ती राज्य को भी ग्रहण न करें। चाहे भोजन आदि का लाभ न होवे वा प्राण जाते हों परन्तु जीविका के लिये भी धर्म को कभी न छोड़ें।

क्योंकि जीव और धर्म नित्य हैं तथा सुख दुःख दोनों अनित्य हैं। अनित्य के लिये नित्य का छोड़ना अतीव दुष्ट कर्म है। इस धर्म का हेतु कि जिस शरीर आदि से धर्म होता है यह भी अनित्य है। इस से मनुष्य हैं जो अनित्य शरीर और सुख दुःखादि के व्यवहार में वर्त्तमान होकर नित्य धर्म का त्याग कभी करते ॥ १५ ॥ जिस सभा में बैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है उस सभा में सब सभासद मरे से ही हैं ॥ १६ ॥ सब मनुष्यों को यह निश्चय जानना चाहिये कि चाहे सांसारिक अपने प्रयोजन की नीति में वर्त्तनेहारे चतुर पुरुष निन्दा करें वा स्तुति करें, लक्ष्मी प्राप्त होवे अथवा नष्ट हो जावे, आज ही मरण होवे अथवा वर्षान्तर में मृत्यु प्राप्त होवे, तथापि जो मनुष्य धर्मयुक्त मार्ग से एक पग भी विरुद्ध नहीं चलते वे ही वीर पुरुष धन्य हैं ॥ १७ ॥

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् । देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥

ऋ० मं० १० । सू० १९१ । मं० २ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा सत्ये प्रजापतिः ॥ २ ॥

यजु० अ० १९ । मं० ७७ ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ॥ तैत्तिरीयार० अष्टमप्रपाठकः । प्रथमानुवाकः ॥

अर्थः—हे गृहस्थादि मनुष्यो ! तुम को मैं ईश्वर आज्ञा देता हूं कि (यथा) जैसे (पूर्वे) प्रथम अधीत विद्यायोगाभ्यासी (संजानानाः) सम्यक् जानने वाले (देवाः) विद्वान् लोग मिल के (भागम्) सत्य असत्य का निर्णय करके असत्य को छोड़ सत्य की (उपासते) उपासना करते हैं वैसे (सम्, जानताम्) आप लोग धर्माऽधर्म प्रीताऽप्रिय को सम्यक् जाननेहारे (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन एक दूसरे से अविरोधी होकर एक पूर्वोक्त धर्म में सम्मत होवें और तुम उसी धर्म को (संगच्छध्वम्) सम्यक् मिल के प्राप्त होओ जिसमें तुम्हारी एक सम्मति होती है और विरुद्धवाद अधर्म को छोड़ के (संवदध्वम्) सम्यक् संवाद प्रत्युत्तर प्रीति से एक करके एक दूसरे की उन्नति किया करो ॥ १ ॥ (प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक सर्वज्ञ न्यायकारी अद्वितीय स्वामी परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न २ स्वरूप वाले धर्म अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देख के (व्याकरोत्) भिन्न २ निश्चित करता है (अनृते) मिथ्याभाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः) वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषणादि लक्षणयुक्त न्याय पक्षपातरहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धाम्) प्रीति को (अदधात्) धारण कराता है वैसा ही तुम करो ॥ २ ॥ हम स्त्री पुरुष, सेवक स्वामी, मित्र मित्र, पिता पुत्रादि (सह) मिलके (नौ) हम दोनों प्रीति से (अवतु) एक दूसरे की रक्षा किया करें और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्यम्) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें (नौ) हमारा (अधीतम्) पढ़ा पढ़ाया (तेजस्वि) अतिप्रकाशमान (अस्तु) होवे और हम एक दूसरे से (मा, विद्विषावहै)

कभी विद्वेष विरोध न करें किन्तु सदा मित्रभाव और एक दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्त्त कर सब गृहस्थ के सदृश व्यवहारों को बढ़ते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जावें। जिस परमात्मा का यह ओम् नाम है उस की कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर मन और आत्मा का त्रिविध दुःख जो कि अपने दूसरे से होता है नष्ट हो जावे और हम लोग प्रीति से एक दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खें ॥

इति गृहाश्रमसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ वानप्रस्थ संस्कार विधि वक्ष्यामः

वानप्रस्थ संस्कार उस को कहते हैं जो विवाह से सन्तानोत्पत्ति करके पूर्ण ब्रह्मचर्य से पुत्र भी विवाह करे और पुत्र का भी एक सन्तान हो जाए अर्थात् जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब पुरुष वानप्रस्थाश्रम अर्थात् वन में जाकर निम्नलिखित सब बातें करे।

अत्र प्रमाणानि—ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥१॥ शतपथ ब्राह्मणे ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ २ ॥
यजु० अ० १९ । मं० ३० ॥

अर्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति करके गृहस्थ होवें गृहस्थ होके वनी अर्थात् वानप्रस्थ होवें और वानप्रस्थ होके संन्यास ग्रहण करें ॥१॥ जब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्य भाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस (व्रतेन) व्रत से उत्तम प्रतिष्ठारूप (दीक्षाम्) दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियम पालन से (दक्षिणाम्) सत्कार पूर्वक धनादि को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस सत्कार से (श्रद्धाम्) सत्य धारण में प्रीति को (आप्नोति) प्राप्त होता है और (श्रद्धया) सत्य धर्मिक जनों में प्रीति से (सत्यम्) सत्यविज्ञान वा सत्य प्रकाश मनुष्य को (आप्यते) प्राप्त होता है इसलिये श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिये ॥२॥

अग्नेऽधर्मि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमि तेजो मेधां ददातु मे स्वाहा दीक्षितोऽहम् ॥३॥
यजु० अ० २० । मं० २४ ॥

आ नयतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् । तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमाक्रमतां तृतीयम् ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ९ । सू० ५ । मं० १ ॥

अर्थ—हे (व्रतपते) नियमपालक ईश्वर ! (दीक्षितः) दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझ में स्थिर होके (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उसकी सामग्री (श्रद्धाम्)

सत्य की धारणा को (च) और उस के उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूं हे परमेश्वर आप में जैसे (समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रकाशित करता हूं और वैसे ही (त्वा) तुझ को अपने आत्मा में धारण करता और सदा (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥३॥ हे गृहस्थ! (प्रजानन्) प्रकर्षता से जानता हुआ तू (एतम्) इस वानप्रस्थाश्रम का (आरभस्व) आरंभ कर (आनय) अपने मन को गृहाश्रम से इधर की ओर ला (सुकृताम्) पुण्यात्माओं के (लोकम्) देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी (गच्छतु) प्राप्त हो (बहुधा) बहुत प्रकार के (महान्ति) बड़े बड़े (तमांसि) अज्ञानदुःख आदि संसार के मोहों को (तीर्त्वा) तर के अर्थात् पृथक् होकर (अजः) अपने आत्मा को अजर अमर जान (तृतीयम्) तीसरे (नाकम्) दुःखरहित वानप्रस्थाश्रम को (आक्रमताम्) आक्रमण अर्थात् रीतिपूर्वक आरूढ़ हो ॥४॥

भद्रमिच्छन्त ऋषयस्स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु ॥५॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

मी नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत्तपः । शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥६॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४० । मं० ३ ॥

अर्थः—हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त होनेवाले (ऋषयः) विद्वान् लोग (अग्रे) प्रथम (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों की दीक्षा उपदेश लेके (तपः) प्राणायाम और विद्याध्ययन जितेन्द्रियत्वादि शुभ लक्षणों को (उप, निषेदुः) प्राप्त होकर अनुष्ठान करते हैं वैसे इस (भद्रम्) कल्याणकारक वानप्रस्थाश्रम की (इच्छन्तः) इच्छा करो। जैसे राजकुमार ब्रह्मचर्य्याश्रम को करके (ततः) पढ़ने के पीछे (ओजः) पराक्रम (च) और (बलम्) बल को प्राप्त हो के (जातम्) प्रसिद्ध प्राप्त हुए (राष्ट्रम्) राज्य की इच्छा और रक्षा करते हैं और (अस्मै) न्यायकारी धार्मिक विद्वान् राजा को (देवाः) विद्वान् लोग नमन करते हैं (तत्) वैसे सब लोग वानप्रस्थाश्रम को किये हुए आप को (उप, सं, नमन्तु) समीप प्राप्त होके नम्र होवें ॥५॥ सम्बन्धी जन (नः) हम वानप्रस्थाश्रमस्थों की (मेधाम्) प्रज्ञा को (मा) मत (हिंसिष्ट) नष्ट मत करें (नः) हमारी (दीक्षाम्) दीक्षा को (मा) मत और (नः) हमारा (यत्) जो (तपः) प्राणायामादि उत्तम तप है उसको भी (मा) मत नाश करे (नः) हमारी दीक्षा और (आयुषे) जीने के लिये सब (शिवा) कल्याण करनेहारी (सन्तु) होवें जैसे हमारी (मातरः) माता पितामही प्रपितामही आदि (शिवाः) कल्याण करनेहारी होती हैं वैसे सब लोग प्रसन्न होकर मुझ को वानप्रस्थाश्रम की अनुमति देनेहारे (भवन्तु) होवें ॥६॥

ऋचः साम यजुषा हविरन्नं ब्रह्मक्षत्रमभ्यक्तं घृतेन । इमं स्वर्गं याजमानाय लोकमक्षितमक्षय्यं यजमानेऽदधुः ॥ यत्र सोमः परिषिक्तो यत्राग्निरनुसंतनुः । यत्रेन्द्रो यत्र प्रजापतिस्तत्र मामृतं कृधि ॥ यत्र ब्रह्मा वदति तपसा दीक्षितः परः । यस्मिन्नन्नं सुपक्वं तत्र मामृतं कृधि ॥ यत्र धाता परिधातॄनमिमीत सुकृतः कृतान् । यत्रर्षयो जज्ञिरे पूर्वजा महस्तत्र मामृतं कृधि ॥ यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । स्वधा यत्र तृप्तिस्तत्र मामृतं कृधि ॥ यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन्मां धेह्यवृधे मा मा हिंसीत्त्रिषन्धिः सुप्रजा अहमसानि सुवीरो विदथमा वदेयम् ॥ मुण्डकोपनि० मु० १ । खं० २ । मं० १२ ॥

* "शान्ता" इति मुण्डक पाठः (आनन्दाश्रमग्रन्थावलिः)।

अर्थः—हे मनुष्यो! (ये) जो (विद्वांसः) विद्वान् लोग (अरण्ये) जंगल में (शान्त्या) शमादि के साथ (तपःश्रद्धे) योगाभ्यास और परमात्मा में प्रीति करके (उपवसन्त) वनवासियों के समीप बसते हैं और (भैक्षचर्याम्) भिक्षाचरण को (चरन्तः) करते हुए जंगल में निवास करते हैं। (ते) वे (हि) ही (विरजाः) निर्दोष निष्पाप निर्मल होके (सूर्यद्वारेण) प्राण के द्वारा (यत्र) जहां (सः) सो (अमृतः) मरण जन्म से पृथक् (अव्ययात्मा) नाशरहित (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा विराजमान है (हि) वही (प्रयान्ति) जाते हैं इस लिये वानप्रस्थाश्रम करना अति उत्तम है ॥७॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः। वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्य समाश्रयेत् ॥२॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम्। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३॥
मनु० ॥

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या पढ़ के समावर्त्तन के समय स्नानविधि करने द्वारा द्विज ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जितेन्द्रिय जितात्मा होके यथावत् गृहाश्रम करके वन में बसे ॥१॥ गृहस्थ लोग जब अपने देह का चमड़ा ढीला और श्वेत केश होते हुए देखें और पुत्र का भी पुत्र हो जाय तब वन का आश्रय लेवें ॥२॥ जब वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा लेवें तब ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों का आहार और घर के सब पदार्थों को छोड़ के पुत्रों में अपनी पत्नी को छोड़ अथवा सङ्ग में लेके वन को जावें ॥३॥

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्। ग्रामादरण्य निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४॥
मनु० ॥

अर्थ—जब गृहस्थ वानप्रस्थ होने की इच्छा करे तब अग्निहोत्र की सामग्री सहित ले के ग्राम से निकल जङ्गल में जितेन्द्रिय होकर निवास करे ॥४॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादान्तो मैत्रः समाहितः। दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥५॥
तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत्। गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥६॥
एतानेवान्यांश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्। विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥७॥
मनु० अ० ६ ॥

अर्थ—वहां जङ्गल में वेदादि शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने में नित्य युक्त, मन और इन्द्रियों को जीतकर यदि स्त्री भी समीप हो तथापि उस से सेवा के सिवाय विषय सेवन अर्थात् प्रसङ्ग कभी न करे, मन से शिवसंकल्प, सावधान, नित्य देने हारा, और किसी से कुछ भी न लेवे, सब प्राणीमात्र पर अनुकम्पा—कृपा रखने हारा होवे ॥५॥ जो जङ्गल में पढ़ाने और योगाभ्यास करनेहारे तपस्वी परमात्मा विद्वान् योग युक्त हों जो कि गृहस्थ वा वानप्रस्थ बनवासी हों उन के घरों में से भिक्षा ग्रहण करे ॥६॥ और इस प्रकार वन में

बीतता हुआ इन और अन्य दीक्षाओं का सेवन करे, और आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार की उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों का विचार किया करे, इसी प्रकार जब तक संन्यास करने की इच्छा न हो तब तक वानप्रस्थ ही रहे ॥ ७ ॥

अथ विधि—वानप्रस्थाश्रम करने का समय ५० वर्ष के उपरांत है। जब पुत्र का भी पुत्र हो जावे तब अपनी स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, पुत्रवधूआदि का सब गृहाश्रम की शिक्षा करके वन की ओर यात्रा की तैयारी करे। यदि स्त्री चले तो साथ ले जावे, नहीं तो ज्येष्ठ पुत्र को सौंप जावे कि इसकी सेवा यथावत् किया करना और अपनी पत्नी को शिक्षा कर जावे कि तू सदा पुत्र आदि को धर्म मार्ग में चलने के लिये और अधर्म से हटाने के लिये शिक्षा करती रहना। तत्पश्चात् सा० प्रकरण में लिखे प्रमाणे यज्ञशाला वेदी आदि सब बनावे। और घृत आदि सब सामग्री जोड़ के (ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौ०) इस मन्त्र से अग्न्याधान और (अयन्त इध्म०) इत्यादि मन्त्रों से समिदाधान करके

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

इत्यादि चार मन्त्रों से कुण्ड के चारों ओर जल प्रोक्षण करके, आघाराबाज्यभागाहुति ४, और व्याहृति आज्याहुति ४ (चार) करके, पृष्ठ ३—७ में लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण करके, स्थालीपाक बनाकर, उस पर घृत सेचन कर, निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवे ॥

ओं काय स्वाहा। कस्मै स्वाहा। कतमस्मै स्वाहा। आधमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहा। अदित्यै मह्यै स्वाहा। अदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा। सरस्वत्यै स्वाहा। सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा। सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा। पूष्णे स्वाहा। पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा। पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा। त्वष्ट्रे स्वाहा। त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा। त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा *। भुवस्य पतये स्वाहा। अधिपतये स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा †। ओं आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। अपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। आत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। ज्योतिर्यज्ञे कल्पताꣳ स्वाहा। स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा। यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा‡। एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा। शताय स्वाहा। एकशताय स्वाहा। व्युष्टयै स्वाहा। स्वर्गाय स्वाहा †

‡ यजु० अ० २२। मं० ३३ ॥ † यजु० अ० २२। मं० ३४ ॥

[illegible] सबको मासों से एक २ करके ४१ [illegible] को आज्ञा देके, पुनः घर में लिखे [illegible] आज्ञा) देकर, २।३—२४ में लिखे प्रमाणे सामान करके, [illegible] पुत्रादिकों पर सब घर का भार धर के, अग्निहोत्र की सामग्री सहित जङ्गल में जाकर, एकान्त में, विचार [illegible] योगशास्त्रों का विचार महात्माओं का सङ्ग करके स्वात्मा और परमात्मा को साक्षात करने में प्रयत्न किया करे ॥

इति वानप्रस्थसंस्कारविधिः समाप्तः ॥

अथ संन्याससंस्कारविधिं वक्ष्यामः

संन्याससंस्कार उसको कहते हैं कि जो मोहादि आवरण पक्षपात छोड़ के विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरे अर्थात्:—

सम्यङ् न्यस्यन्त्यघर्माचरणानि येन, वा सम्यङ् नित्यं सत्यसंन्यासत्व उपस्थिति स्थिरी-भवतिर्वेन वा संन्यासः संन्यासो विद्यते यस्य स संन्यासी ॥

काल:—प्रथम जो वानप्रस्थ के आदि में कह आये हैं कि ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ और गृहस्थ होके वनस्थ, वनस्थ होके संन्यासी होवे, यह क्रमसंन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करना वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रमसंन्यास कहते हैं ।

द्वितीय प्रकार

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा ॥

यह ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य है—

अर्थ:—जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे उसी दिन चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान नरके गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करे । क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है ।

तृतीय प्रकार

ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥

यह भी ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है । यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य सच्चा वैराग्य और सच्चा ज्ञान [illegible] को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् उठ जावे, पक्षपात रहित होकर सब के उपकार करने की इच्छा होवे और जिसको दृढ़ निश्चय होजावे कि मैं मरणपर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूंगा, तो वह न गृहाश्रम करे न वानप्रस्थाश्रम, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर ही के संन्यासाश्रम को ग्रहण कर लेवे ।

[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]

शृङ्गाणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा । वज्रं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्राय येन्दो परि स्रव ॥ १ ॥ आ पवस्व दिशां पत आजीकात् सोम मीढ्वः । ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्राय येन्दो परि स्रव ॥ २ ॥ ऋ० मं० १ । सू० ११३ । मं० १, २ ॥

अर्थः—मैं ईश्वर, संन्यास लेनेहारे तुझ मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने हारा (इन्द्रः) सूर्य्य (शर्य्यणावति) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित (सोमम्) रस को पीता है, वैसे संन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलों के रस को (पिबतु) पीवे और (आत्मनि) अपने आत्मा में (महत्) बड़े (वीर्यम्) सामर्थ्य को (किरिष्यन्) करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ (वज्रं दधानः) दिव्य बल को धारण करता हुआ (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान सब को आनन्द करनेहारे पूर्ण विद्वान् ! तू संन्यास लेके सब पर (परि, स्रव) सदुपदेश की वृष्टि कर ॥ १ ॥ हे (सोम) सोम्यगुणसम्पन्न (मीढ्वः) सत्य से सब के अन्तःकरण को सींचनेहारे (दिशांपते) सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान देके पालन करने हारे (इन्दो) शमादि गुणयुक्त संन्यासिन् ! तू (ऋतवाकेन) यथार्थ बोलने (सत्येन) सत्य भाषण करने से (श्रद्धया) सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और (तपसा) प्राणायाम योगाभ्यास से (आजीकात्) सरलता से (सुतः) निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि को (आ, पवस्व) पवित्र कर (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा के लिये (परि, स्रव) सब ओर से गमन कर ॥ २ ॥

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् । श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ४ ॥

अर्थ—हे (ऋतद्युम्न) सत्य धन और सत्य कीर्तिवाले यतिवर ! (ऋतं वदन्) पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ, (सत्यं कर्मन्) सत्य वेदोक्त कर्मवाले संन्यासिन् ! (सत्यं वदन्) सत्य बोलता हुआ (श्रद्धाम्) सत्यधारण में प्रीति करने को (वदन्) उपदेश करता हुआ (सोम) सोम्यगुणसंपन्न (राजन्) सब ओर से प्रकाशयुक्त आत्मा वाले (सोम) योगैश्वर्ययुक्त (इन्दो) सब को आनन्ददायक संन्यासिन् ! तू (धात्रा) सकल विश्व के धारण करनेहारे परमात्मा से योगाभ्यास करके (परिष्कृत) शुद्ध होता हुआ (इन्द्राय) योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य की सिद्धि के लिये (परि, स्रव) यथार्थ पुरुषार्थ कर ॥ ३ ॥

यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् । ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेन्द्राय पातवे । इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ ऋग्वेद मं० ९ । सू० ११३ । मं० ६ ॥

अर्थ—हे (छन्दस्याम्) स्वतन्त्रतायुक्त (वाचम्) वाणी को (वदन्) कहते हुए (सोमेन) विद्या योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से (ब्रह्मा) सब के लिये आनन्द को (पवमान) प्राप्त करते हुए

(इन्दो) आनन्दप्रद (पवमान) पवित्रात्मन् [illegible] (यत्र) जिस (सोमे) परमैश्वर्यवान् परमात्मा में (ऋक्) ऋग्वेदों का ज्ञानदेनेहारा विद्वान् (साधीयते) साहाय्य को प्राप्त होकर तिष्ठता है जैसे (प्रावृषा) मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सब को (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिये सब साधनों को (परि, स्रव) सब प्रकार से प्राप्त कर ॥ ४ ॥

यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् । तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ७ ॥

अर्थ—हे (पवमान) अविद्यादि क्लेशों के नाश करनेहारे पवित्रस्वरूप (इन्दो) सर्वानन्ददायक परमात्मन् ! (यत्र) जिस तेरे स्वरूप में (अजस्रम्) निरन्तर व्यापक तेरा (ज्योतिः) तेज है (यस्मिन्) जिस (लोके) ज्ञान से देखने योग्य तुझ में (स्वः) नित्य सुख (हितम्) स्थित है (तस्मिन्) उस (अमृते) जन्म मरण और (अक्षिते) नाश से रहित (लोके) द्रष्टव्य अपने स्वरूप में आप (माम्) मुझ को (इन्द्राय) परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये (धेहि) कृपा से धारण कीजिये और मुझ पर स्नेह के समान वृष्टिभाव से (परि, स्रव) आनन्द की वर्षा कीजिये ॥ ६ ॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः । यत्रामूर्यहतीरापस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ६ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ८ ॥

अर्थ :—हे (इन्दो) आनन्दप्रद परमात्मन् ! (यत्र) जिस मुझ में (वैवस्वतः) सूर्य का प्रकाशक (राजा) प्रकाशमान हो रहा है (यत्र) जिस आप में (दिवः) बिजुली अथवा बुरी कामना की (अवरोधनम्) रुकावट है (यत्र) जिस आप में (अमूः) वे कारणरूप (यहतीः) बड़े व्यापक आकाशस्थ (आपः) प्राणप्रद वायु हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये, (परि, स्रव) आर्द्रभाव से आप मुझ को प्राप्त हूजिये ॥ ६ ॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः । लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ९ ॥

अर्थ :—हे (इन्दो) परमात्मन् ! (यत्र) जिस आप में (अनुकामम्) इच्छा के अनुकूल स्वतन्त्र (चरणम्) विचरना है (यत्र) जिस (त्रिनाके) त्रिविध अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख से रहित (त्रिदिवे) तीन सूर्य विद्युत् और भौम्य अग्नि से प्रकाशित सुखस्वरूप में (दिवः) कामना करने योग्य शुद्ध कामना वाले (लोकाः) यथार्थ ज्ञानयुक्त (ज्योतिष्मन्तः) शुद्ध विज्ञानयुक्त मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष विचरते हैं (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) मोक्ष प्राप्त (कृधि) कीजिये और (इन्द्राय) उस परम आनन्दैश्वर्य के लिये (परि, स्रव) कृपा से प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् । स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (इन्दो) निष्कामानन्दयुक्त [illegible] परमात्मन् ! (यत्र) जिस आप में (कामाः) सब कामना (निकामाः) और अभिलाषा पूरी होती है (च) और [illegible] (अस्तम्) सबसे बड़े प्रकाशमान सूर्य का (विष्टपम्) विशिष्ट सुख (च) और (यत्र) जिस आप में (स्वधा) अपना ही धारण (च) और जिस आप में (तृप्तिः) पूर्ण तृप्ति है । (तत्र) उस अपने स्वरूप में (माम्) मुझ को (अमृतम्) प्राप्त मुक्ति वाला (कृधि) कीजिये तथा (इन्द्राय) सब दुःख विदारण के लिये आप मुझ पर (परि, स्रव) करुणावृष्टि कीजिये ॥ ८ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्रा आप्तास्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥ ऋ० मं० ९ । सू० ११३ । मं० ११ ॥

अर्थः—हे (इन्दो) सर्वानन्दयुक्त जगदीश्वर ! (यत्र) जिस आप में (आनन्दाः) सम्पूर्ण समृद्धि (च) और (मोदाः) सम्पूर्ण हर्ष (मुदः) सम्पूर्ण प्रसन्नता (च) और (प्रमुदः) प्रकृष्ट प्रसन्नता (आसते) स्थित है (यत्र) जिस आप में (कामस्य) अभिलाषी पुरुष की (कामाः) सब कामना (आप्ताः) प्राप्त होती है (तत्र) उसी अपने स्वरूप में (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (माम्) मुझ को (अमृतम्) जन्म मृत्यु के दुःख से रहित मोक्ष प्राप्त मुक्त कि जिसके मुक्ति के समय के मध्य में संसार में नहीं आना पड़ता उस मुक्ति की प्राप्ति वाला (कृधि) कीजिये और इसी प्रकार सब जीवों को (परि, स्रव) सब ओर से प्राप्त कीजिये ॥ ९ ॥

यदेवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्त्तन ॥ १० ॥ ऋ० मं० १० । सू० ७२ । मं० ७ ॥

अर्थः—हे (देवाः) पूर्ण विद्वान् (यतयः) संन्यासी लोगो ! तुम (यथा) जैसे (अत्र) इस (समुद्रे) आकाश में (गूढम्) गुप्त (आसूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सूर्यादि का प्रकाशक परमात्मा है उस को (आ, अजभर्त्तन) चारों ओर से अपने आत्माओं में धारण करो और आमन्त्रित होओ वैसे (यत्) जो (भुवनानि) सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्य हैं उन को सदा (अपिन्वत) विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो यही तुम्हारा परम धर्म है ॥ १० ॥

ऋषिं विच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुषे । ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप संनमन्तु ॥ ११ ॥ अथर्व० कां० १९ । सू० ४१ । मं० १ ॥

अर्थ—हे विद्वानो ! जो (ऋषयः) वेदार्थ विद्या को और (स्वर्विदः) सुख को प्राप्त (अग्रे) प्रथम (तपः) ब्रह्मचर्यरूप आश्रम को पूर्णता से सेवन तथा यथावत् स्थरता से प्राप्त होके (भद्रम्) कल्याण की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (दीक्षाम्) संन्यास की दीक्षा को (उपनिषेदुः) ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त होवें (देवाः) विद्वान् लोग (उप, संनमन्तु) यथावत् सत्कार किया करें (ततः) तदनन्तर (राष्ट्रम्) राज्य (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (जातम्) उत्पन्न होवे (तत्) उससे (अस्मै) इस संन्यासाश्रम के पालन के लिये यत्न किया करें ॥ ११ ॥

तृतीयमायुषो भागमुषित्वाद्यं गृहाश्रमे । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥१॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥३॥
यो ददाति सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥४॥
आगाराद् अभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः । समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥५॥
अग्निरनिकेतः स्याद् ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षकोऽसङ्कुसुको मुनिर्भाव समाहितः ॥६॥
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥७॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥८॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥९॥
कृतकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् । विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥१०॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥११॥
वृक्षमूलनिकेतस्य परभोजगृहस्य च । तुल्यलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥१२॥
कुचेलमलवत्तस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् । न नाम ग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥१३॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥१४॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥१५॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥१६॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः । ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥१७॥
सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥१८॥
अहिंस्रैरिन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः । तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥१९॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः । तदा सुखमाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥२०॥
एवेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः । सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥२१॥
इदं ज्ञानं तु तस्यैव विजानताम् । इदमन्विच्छतां स्वर्ग्य*मिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥२२॥
अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः । स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२३॥

*स्वर्गमिति मनौ पाठः ॥ अ० ६ । श्लो० ८४ ॥

अथवा [illegible] जङ्गलों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक ७५ (पचहत्तर) वर्ष
अथवा न्यून से न्यून ५२ (बावन) वर्ष तक विहार कर के आयु के चौथे भाग अर्थात् ७६ (छहत्तर) वर्ष के
प्रथम सब मोहादि सङ्गों को छोड़ कर संन्यासी हो जावे ॥ १ ॥ विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम से सब वेदों को पढ़
गृहाश्रमी हो कर धर्म से पुत्रोत्पत्ति कर वानप्रस्थ में सामर्थ्य के अनुसार यज्ञ कर के मोक्ष में अर्थात् संन्यास
श्रम में मन को लगावे ॥ २ ॥ प्रजापति परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त प्राजापत्येष्टि (कि जिस में ब्रह्मा
और शिखा का त्याग किया जाता है) कर आहवनीय गार्हपत्य और दाक्षिणात्य संज्ञक अग्नियों को आत्मा में
समारोपित कर के ब्राह्मण विद्वान् गृहाश्रम से ही संन्यास लेवे ॥ ३ ॥ जो पुरुष सब प्राणियों को अभयदान
सत्योपदेश दे कर गृहाश्रम से ही संन्यास ग्रहण कर लेता है उस ब्रह्मवादी वेदोक्त सत्योपदेशक संन्यासी को
मोक्षलोक और सब लोक लोकान्तर तेजोमय (ज्ञान से प्रकाशमय) हो जाते हैं ॥ ४ ॥ जब
सब कामों को जीत लेवे और उन की अपेक्षा न रहे, पवित्रात्मा और पवित्रान्तःकरण मननशील
हो जावे तभी गृहाश्रम से निकल कर संन्यासाश्रम का ग्रहण करे अथवा ब्रह्मचर्य ही से संन्यास का
ग्रहण कर लेवे ॥ ५ ॥ वह संन्यासी (अनग्निः *) आहवनीयादि अग्नियों से रहित, और कभी अपना
स्वाभिमत घर भी न बांधे और अन्न वस्त्रादि के लिये ग्राम का आश्रय लेवे, बुरे मनुष्यों की उपेक्षा करता
और स्थिरबुद्धि मननशील होकर परमेश्वर में अपनी भावना का समाधान करता हुआ विचरे ॥ ६ ॥ न तो
अपने जीवन में आनन्द और न अपने मृत्यु में दुःख माने, किन्तु जैसे क्षुद्र भृत्य अपने स्वामी की आज्ञा की
बाट देखता रहता है वैसे ही काल और मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ७ ॥ चलते समय आगे २ देख के पग
धरे, सदा वस्त्र से छान कर जल पीवे, सब से सत्य वाणी बोले अर्थात् सत्योपदेश ही किया करे, जो कुछ
व्यवहार करे वह सब मन की पवित्रता से आचरण करे ॥ ८ ॥ इस संसार में आत्मनिष्ठा में स्थित, प्रसन्न,
अपेक्षारहित, मांस मद्यादि का त्यागी, आत्मा के सहाय से ही सुखार्थी होकर विचरा करे और कुछ भी
सत्योपदेश करता रहे ॥ ९ ॥ सब शिर के बाल डाढ़ी मूंछ और नखों को समय २ छेदन कराता रहे, सदा
दाढ़ी मौर कुसुंभ के रंगे हुए † वस्त्रों का धारण किया करे, सब भूत प्राणीमात्र को पीड़ा न देता हुआ
दृढ़ात्मा होकर नित्य विचरा करे ॥ १० ॥ जो संन्यासी बुरे कामों से इन्द्रियों के निरोध, राग द्वेषादि के
क्षय, और निर्वैरता से सब प्राणियों का कल्याण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ यदि
संन्यासी को मूर्ख अनारी लोग निन्दा आदि से दूषित वा अपमान भी करें तथापि धर्म ही का
ऐसे ही अन्य ब्रह्मचर्याश्रमादि के मनुष्यों को करना उचित है, सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर समदृष्टि
रक्खे इत्यादि उत्तम काम करने ही के लिये संन्यासाश्रम की विधि है, किन्तु केवल दण्डादि चिह्न धारण करना
ही धर्म का कारण नहीं है ॥ १२ ॥ यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है तथापि उस के

---

* इसी पद से भ्रान्ति में पड़ के संन्यासियों का दाह नहीं करते संन्यासी लोग अग्नि को नहीं छूते । यह पाप संन्यासियों के पीछे लग गया । यहां आहवनीयादि संज्ञक अग्नियों को छोड़ना है, स्पर्श वा दाहकर्म छोड़ना नहीं है ॥

† अपने गेरू से रंगे हुए वस्त्रों को पहिने ॥

नामग्रहणमात्र से जल शुद्ध नहीं होता किन्तु उसको ले पीस जल में डालने ही से उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है, वैसे नाममात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने २ आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने ही से आश्रमधारण सफल होता है अन्यथा नहीं ॥ १३ ॥ इस पवित्र आश्रम को सफल करने के लिये संन्यासी पुरुष विधिवत् योगशास्त्र की रीति से सात व्याहृतियों के पूर्व सात प्रणव लगा के जैसा कि पृ० प्रकरण में प्राणायाम का मन्त्र लिखा है उसको मन से जपता हुआ तीन भी प्राणायाम करे तो जानो अत्युत्कृष्ट तप करता है ॥ १४ ॥ क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं के मल छूट जाते हैं वैसे ही प्राण के निग्रह से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ इसलिये संन्यासी लोग प्राणायामों से दोषों को, धारणाओं से अन्तःकरण के मैल को, प्रत्याहार से संग से हुए दोषों और ध्यान से अविद्या पक्षपात आदि अनीश्वरता के दोषों को छुड़ा के पक्षपातरहित आदि ईश्वर के गुणों को धारण कर सब दोषों को भस्म कर देवें ॥ १६ ॥ बड़े छोटे प्राणी और अप्राणियों में जो अशुद्धात्माओं से देखने के योग्य नहीं है उस अन्तर्यामी परमात्मा की गति अर्थात् प्राप्ति को ध्यान योग से ही संन्यासी देखा करे ॥ १७ ॥ जो संन्यासी यथार्थ ज्ञान वा षड्दर्शनों से युक्त है वह दुष्ट कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ज्ञान, विद्या, योगाभ्यास, सत्संग, धर्मानुष्ठान वा षड्दर्शनों से रहित विज्ञानहीन होकर संन्यास लेता है वह संन्यासपदवी और मोक्ष को प्राप्त न होकर जन्ममरण रूप संसार को प्राप्त होता है और ऐसे मूर्ख अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है ॥१८॥ और जो निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों के बन्धन से पृथक्, वैदिक कर्माचरणों और प्राणायाम सत्यभाषणादि उत्तम उग्र कर्मों से सहित संन्यासी लोग होते हैं वे इसी जन्म इसी वर्त्तमान समय में परमेश्वर की प्राप्तिरूप पद को प्राप्त होते हैं, उनका संन्यास लेना सफल और धन्यवाद के योग्य है ॥१९॥ जब संन्यासी सब पदार्थों में अपने भाव से निःस्पृह होता है तभी इस लोक इस जन्म और मरण पाकर परलोक और मुक्ति में परमात्मा को प्राप्त होके निरन्तर* सुख को प्राप्त होता है ॥२०॥ इस विधि से धीरे २ सब संग से हुये दोषों को छोड़ के सब हर्षशोकादि द्वन्द्वों से विशेषकर निर्मुक्त हो के विद्वान् संन्यासी ब्रह्म ही में स्थिर होता है ॥२१॥ और जो विविदिषा अर्थात् जानने की इच्छा करके गौण संन्यास लेवे वह भी विद्या का अभ्यास, सत्पुरुषों का सङ्ग, योगाभ्यास और ओंकार का जप और उस के अर्थ परमेश्वर का विचार भी किया करे। यही अज्ञानियों का शरण अर्थात् गौणसंन्यासियों और यही विद्वान् संन्यासियों का और यही सुख का खोज करनेहारे और यही अनन्त† सुख की इच्छा करनेहारे मनुष्यों का आश्रय है ॥२२॥ इस क्रमानुसार संन्यासयोग से जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, संन्यास ग्रहण करता है वह इस संसार और शरीर से सब पापों को छोड़ छुड़ा के परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥२३॥

विधिः—जो पुरुष संन्यास लेना चाहे वह जिस दिन सर्वथा प्रसन्नता हो उसी दिन नियम और व्रत अर्थात् तीन दिन तक दुग्धपान करके उपवास और भूमि में शयन और प्राणायाम, ध्यान तथा एकान्तदेश

---

* निरन्तर शब्द का इतना ही अर्थ है कि मुक्ति के नियत समय के मध्य में दुःख आकर विघ्न नहीं करसकता।

† अनन्त इतना ही है कि मुक्तिसुख के समय में अन्त अर्थात् जिसका नाश नहीं।

में ओंकार [redacted] पृष्ठ १५ मन्त्र० समाप्त कर, वेदी, समिधा, चरुपात्र आदि साकल्य सामग्री एक दिन पूर्व ही [redacted] जिस चौथे दिन संन्यास लेना हो प्रातः रात्रि से उठकर, शौच स्नानादि आवश्यक कर्म करके, प्राणायाम ध्यान और प्रणव का जप करता रहे। सुयोग्य का आश्रय उत्तम गृहस्थ धार्मिक विद्वानों का सामान्य प्रकरण में लिखे अनुसार वरण कर यही लि० अग्न्याधान समिदाधान, पूतरतपन और स्थालीपाक करके, पृष्ठ ५—१६ लि० स्वस्तिवाचन शान्तिकरण का पाठ कर, वेदी के चारों ओर जलप्रोक्षण, आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार), और व्याहृति आहुति ४ (चार), तथा—

ओं भुवनपतये स्वाहा। ओं भूतानां पतये स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा॥

इनमें से एक २ मन्त्र से पृष्ठ ५ करके ग्यारह आज्याहुति देके, जो विधिपूर्वक घृत बनाया हो उसमें घृत सेचन करके, यज्ञमात्र जो कि संन्यास का लेने वाला है और दो ऋत्विज् निम्नलिखित स्वाहान्त मन्त्रों से भात का होम, और शेष दो ऋत्विज् भी साथ २ घृताहुति करके जावें॥

ओं ब्रह्मा होता ब्रह्मा यज्ञो ब्राह्मणः स्वरुर्मित्रः [redacted] अध्वर्युर्ब्रह्मणो ज्ञानो ब्रह्मणोऽन्तः हितं हविः, स्वाहा ॥ १ ॥ ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्राह्मणा वेदिरुद्धिता। ब्रह्म यज्ञस्य [redacted] सत्रं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः समिताय स्वाहा ॥ २ ॥ अंहोमुचे [redacted] सुवाम्रो सुमतिमावृणानः। इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः, मनसाहा ॥ ३ ॥ अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथमध्वराणाम्। अपां नपातमश्विनाहुवे धिये न्द्रेण म इन्द्रियं दत्तमोजः, स्वाहा ॥ ४ ॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे। अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ ५ ॥ यत्र० वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे। वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥ ६ ॥ यत्र० सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे। सूर्याय स्वाहा ॥ इदं सूर्याय—इदन्न मम ॥ ७ ॥ यत्र० चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय—इदन्न मम ॥ ८ ॥ यत्र० । सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय इदन्न मम ॥ ९ ॥ यत्र० । इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥ १० ॥ यत्र० । आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोपतिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥ इदमद्भ्यः—इदन्न मम ॥ ११ ॥ यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥ इदं ब्रह्मणे—इदन्न मम ॥ १२ ॥ अथर्व० का० १९ ॥ सू० ४२ । ४३ ॥

ओं प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम्। ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳस्वाहा ॥ १ ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिꣳसङ्कल्पा मे शुध्यन्ताम्।

* आकूतिरिति विसर्गान्तः पाठः तैत्तिरीयारण्यके।

[illegible] स्वाहा ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] स्वाहा ॥ ८ ॥ [illegible] ॥ १० ॥ ओं मनोवाक्कायकर्मभि: [illegible] ॥ ११ ॥ अव्यक्तभावैरहङ्कारैर्ज्योति० ॥ १२ ॥ आत्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥ १३ ॥ अन्तरात्मा मे शुध्यताम् । ज्योति० ॥ १४ ॥ परमात्मा मे शुध्यताम । ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा ॥ ॥ १५ ॥

इन १५ मन्त्रों में से एक एक कर के मात की आहुति देनी। पश्चात निम्नलिखित मन्त्रों से २५ घृताहुति देवें‡

ओमग्नये स्वाहा ॥ १६ ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्य: स्वाहा ॥ १७ ॥ ओं ध्रुवाय भूमाय स्वाहा ॥ १८ ॥ ओं ध्रुवक्षितये स्वाहा ॥ १९ ॥ ओमच्युतक्षितये स्वाहा ॥ २० ॥ ओमग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ २१ ॥ ओं धर्माय स्वाहा ॥ २२ ॥ ओमधर्माय स्वाहा ॥ २३ ॥ ओमद्भ्य: स्वाहा ॥ २४ ॥ ओमोषधिवनस्पतिभ्य: स्वाहा ॥ २५ ॥ ओं [illegible] स्वाहा ॥ २६ ॥ ओं गृह्याभ्य: स्वाहा ॥ २७ ॥ ओमवज्ञानेभ्य: स्वाहा ॥ २८ ॥ ओमवसानपतिभ्य: स्वाहा ॥ २९ ॥ ओं सर्वभूतेभ्य: स्वाहा ॥ ३० ॥ ओं कामाय स्वाहा ॥ ३१ ॥ ओमन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ३२ ॥ ओं पृथिव्यै स्वाहा ॥ ३३ ॥ ओं दिवे स्वाहा ॥ ३४ ॥ ओं सूर्याय स्वाहा ॥ ३५ ॥ ओं चन्द्रमसे

---

† पादपृष्ठोभयमध्ये पार्श्वपदमधिकं तैत्तिरीयारण्यके ।

‡ तैत्तिरीयार० प्र० १० । अनु० ५१–६०॥

१ तैत्तिरीयार० १० । अनु० ६६, एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल में मुद्रित ।

* (प्राणापान) इत्यादि से ले के (परमात्मा मे शुध्यताम्) इत्यन्त मन्त्रों से संन्यासी के लिये उपदेश हैं । अर्थात् जो संन्यासाश्रम ग्रहण करे वह धर्माचरण, सत्योपदेश, योगाभ्यास; शम, दम, शांति, सुशीलतादि, विद्याविज्ञानादि शुभ गुण कर्म स्वभावों से सहित होकर, परमात्मा को अपना सहायक मान कर, अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर प्राण मन इन्द्रियादि को अशुद्ध व्यवहार में चला के, पक्षपात कपट अधर्म व्यवहारों को छोड़, अन्य के दोष, पढ़ाने और उपदेश से छुड़ाकर, स्वयं आनन्दित होके, सब मनुष्यों को आनन्द पहुंचाता रहे ।

[illegible] ॥ ३७ ॥ ओं वसुभ्यः स्वाहा । ॥ ३८ ॥ ओमिन्द्राय स्वाहा ॥ ३९ ॥ ओं बृहस्पतये स्वाहा ॥ ३९ ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ४० ॥ ओं यमाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ ओं देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥ ओं परमेष्ठिने स्वाहा[१] ॥ ४३ ॥ ओं तदब्रह्म ॥ ४४ ॥ ओं तद्वायुः ॥ ४५ ॥ ओं तदात्मा ॥ ४६ ॥ ओं तत्सत्यम् ॥ ४७ ॥ ओं तत्सर्वम् ॥ ४८ ॥ ओं तत्पुरोर्नमः ॥ ४९ ॥ अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमिन्द्रस्त्वꣳ रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं ब्रह्म त्वं प्रजापतिः । त्वं तदाप आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा २ ॥ ५० ॥

इन ५० मन्त्रों से आज्याहुति दे के, तदनन्तर जो संन्यास लेने वाला है वह पांच वा छः केशों को छोड़ कर, अर्थात लिखे दाढ़ी मूञ्छ केश लोमों का छेदन अर्थात क्षौर करा के यथावत स्नान करे । तदनन्तर संन्यास लेने वाला पुरुष अपने शिर पर पुरुषसूक्त के मन्त्रों से १०८ (एक सौ आठ) बार अभिषेक करे । पुनः सा प्र० में लिखे आचमन और प्राणायाम करके, हाथ जोड़, वेदी के सामने नेत्रोन्मीलन करके मन से—

ओं ब्रह्मणे नमः । ओमिन्द्राय नमः । ओं सूर्याय नमः । ओं सोमाय नमः । ओमात्मने नमः । ओमन्तरात्मने नमः ॥

इन छः मन्त्रों को जप के—

ओमात्मन्ते स्वाहा । ओमन्तरात्मने स्वाहा । ओं परमात्मने स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

इन ४ (चार) मन्त्रों से ४ (चार) आज्याहुति देकर, कार्यकर्त्ता संन्यास ग्रहणकरनेवाला पुरुष वि० प्रकरण में लि० मधुपर्क की क्रिया करे, तदनन्तर प्राणायाम करके—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि । ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात् । ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इन मन्त्रों को मन से जपे ।

ओमग्नये स्वाहा । ओं भूः प्रजापतये स्वाहा । ओमिन्द्राय स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं ब्रह्मणे स्वाहा । ओं प्राणाय स्वाहा ।

---

१ तैत्तिरीयारण्यक प्र० १० । अनु० ६७ ॥

२ तैत्तिरीयार० प्र० १० । अनु० ६८ ॥

※ ये सब प्राणापानव्यान० आदि मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक दशम प्रपाठक [illegible] अनुवाक ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६६ । ६७ । ६८ के हैं ।

ओमपानाय स्वाहा। ओं व्यानाय स्वाहा। ओं उदानाय स्वाहा। ओं समानाय स्वाहा।

इन मन्त्रों से घी में आज्याहुति देके—

ओं भूः स्वाहा॥

इस मन्त्र से पूर्णाहुति करके—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्चोत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति

शा० कां० १४॥

पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया परित्यक्ता मत्तः सर्वभूतेभ्योऽभयमस्तु स्वाहा * इस वाक्य को बोल के सब के सामने जल को भूमि में छोड़ देवे। पीछे नाभिमात्र जल में पूर्वाभिमुख खड़ा रहकर—

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्। ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमहि। ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्। ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि परो रजसे सावदोम्॥

इसका मन से जप करके, प्रणवार्थ परमात्मा का ध्यान करके, पूर्वोक्त (पुत्रैषणायाश्च०) इस समय कण्डिका को बोल के, प्रेष्य मन्त्रोच्चारण कर—

ओं भूः संन्यस्तं मया। ओं भुवः संन्यस्तं मया। ओं स्वः संन्यस्तं मया॥

इस मन्त्र का मन से उच्चारण करे। तत्पश्चात् जल से अञ्जलि भर, पूर्वाभिमुख होकर, संन्यास लेने वाला:—

ओं अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा॥

इज मन्त्र से दोनों हाथ की अञ्जलि को पूर्वदिशा में छोड़ देवे।

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्वं वेदसम्। तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे †॥

---

* पुत्रादि के मोह, वित्तादि पदार्थों के मोह और लोकस्थ प्रतिष्ठा की इच्छा से मन को हटाकर परमात्मा में आत्मा को दृढ़ करके जो भिक्षाचरण करते हैं वे ही सब को सत्योपदेश से अभयदान देते हैं अर्थात् दहिने हाथ में जल ले के मैंने आज से पुत्रादि का तथा वित्त का मोह और लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करने का त्याग कर दिया और मुझ से सब भूत प्राणी मात्र को अभय प्राप्त होवे यह मेरी सत्य वाणी है।

† हे (अग्ने)! (येन) जिससे (सहस्रम्) सब संसार को अग्नि धारण करता है और (येन) जिससे तू। सर्ववेदसम्) गृहाश्रमस्थ पदार्थ मोह, यज्ञोपवीत और शिखा आदि को (वहसि) धारण करता उनको छोड़ (तेन) उस त्याग से (नः) हमको (इनम्) यह संन्यास रूप (स्वाहा) सुख देने हारे (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (गन्तवे) जाने को (वह) प्राप्त हो॥

[illegible] कां० ६ । सू० ५ । मं० १४ ॥

और इसी पर स्मृति है—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ १ ॥ मनु० ॥

इस श्लोक का अर्थ पहिले लिख दिया है ॥

इसके पश्चात् मौन करके शिखा के लिए जो पांच वा सात केश रक्खे थे उनको एक एक उखाड़ और यज्ञोपवीत उतार कर हाथ में ले जल की अञ्जलि भरः—

ओमापो वै सर्वा देवताः स्वाहा ॥ ओं भूः स्वाहा ॥

इन मन्त्रों से शिखा के बाल और यज्ञोपवीत सहित जलांजलि को जल में होम कर देवे । इसके पश्चात् आचार्य शिष्य को जल से निकाल के कषाय वस्त्र की कौपीन, कटिवस्त्र, उपवस्त्र, अङ्गोछा प्रीतिपूर्वक देवे । और वेदारम्भ में लि० (योमे दण्डः०) इस मन्त्र से दण्ड धारण करके आत्मा में आहवनीयादि अग्नियों का आरोपण करे ।

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य सम्भारा ऋचो यस्यानूक्यम् (१) ॥ १ ॥ सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः (२) ॥ २ ॥ ब्रह्म अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यति देवयजनं प्रेक्षते (३) ३ ॥ यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति (४) ॥ ४ ॥ या एव यज्ञ आपः

(१)—(यः) जो पुरुष (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कारता से (ब्रह्म) परमात्मा को (विद्यात्) जाने (यस्य) जिसके (परूंषि) कठोर स्वभाव आदि (सम्भाराः) होम करने के साकल्य और (यस्य) जिससे (ऋचः) यथार्थ सत्यभाषण सत्योपदेश और ऋग्वेद ही (अनूक्यम्) अनुकूलता से कहने के योग्य वचन हैं वही संन्यास ग्रहण करे ॥ १ ॥

(२)—(यस्य) जिसके (सामानि) सामवेद (लोमानि) लोम के समान (यजुः) यजुर्वेद जिसके (हृदयम्) हृदय के समान (उच्यते) कहा जाता है (परिस्तरणम्) जो सब ओर से शास्त्र आसन आदि सामग्री (हविरत्) होम करने योग्य के समान है वह संन्यास ग्रहण करने में योग्य होता है ॥ २ ॥

(३)—(वा) वा (यत्) जो (अतिथिपतिः) अतिथियों का पालन करनेहारा (अतिथीन्) अतिथियों के प्रति (प्रतिपश्यति) देखता है वही विद्वान् संन्यासियों में (देवयजनम्) विद्वानों के यजन करने के समान (प्रेक्षते) ज्ञानदृष्टि से देखता और संन्यास लेने का अधिकारी होता है ॥ ३ ॥

(४) और (यत्) जो संन्यासी (अभिवदति) दूसरे के साथ संवाद वा दूसरे को अभिवादन करता है वह जानो (दीक्षाम्) दीक्षा को (उपैति) प्राप्त होता है (यत्) जो (उदकम्) जल की (याचति)

(१) और (२) मन्त्रों के हिन्दी अर्थ सम्वत् ११४१ की छपी संस्कारविधि में नहीं हैं (ऋ०)

प्रणीयन्ते ता एव ताः (५) ॥ ५ ॥ यज्ञे यावत् कल्पयन्ति सदो हविर्धानान्येव तत्कल्पयन्ति (६) ॥ ६ ॥ यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् (७) ॥ ७ ॥ तेषामा-सन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति (८) ॥ ८ ॥ स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुवारेण वषट्कारेण (९) ॥ ९ ॥ एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः (१०) ॥ १० ॥ प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति (११) ॥ ११ ॥ प्रजामतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति (१२) ॥ १२ ॥

याचना करता है वह जानो (अपः) प्रणीता आदि में जल को (प्रणयति) डालता है ॥ ४ ॥

(५)—(यज्ञे) यज्ञ में (याः, एव) जिन्हीं (आपः) जलों का (प्रणीयन्ते) प्रयोग किया जाता है (ताः, एव) वे ही (ताः) पात्र में रक्खे जल संन्यासी की यज्ञस्थ जलक्रिया है ॥ ५ ॥

(६)—संन्यासी (यत्) जो (आवसथान्) निवास का स्थान (कल्पयन्ति) कल्पना करते हैं वे (सदः) यज्ञशाला (हविर्धानान्येव) हविष् के स्थान करने के ही पात्र (तत्) वे (कल्पयन्ति) समर्थित करते हैं ॥ ६ ॥

(७)—और (यत्) जो संन्यासी लोग (उपस्तृणन्ति) बिछौने आदि करते हैं (बर्हिरेव, तत्) वह कुशपिंजूली के समान है ॥ ७ ॥

(८)—और जो (तेषाम्) उन (आसन्नानाम्) समीप बैठनेहारों के निकट बैठा हुआ (अतिथिः) जिसकी कोई नियत तिथि न हो रह भोजनादि करता है वह (आत्मने) जानो वेदीस्थ अग्नि में होम करने के समान आत्मा में (जुहोति) आहुतियां देता है ॥ ८ ॥

(९)—और जो संन्यासी (हस्तेन) हाथ से खाता है वह जानो (स्रुचा) चमसा आदि से वेदी में आहुति देता है जैसे (यूपे) स्तम्भ में अनेक प्रकार के पशु आदि को बांधते हैं वैसे वह संन्यासी (स्रुवारेण) जुवा के समान (वषट्कारेण) होमक्रिया के तुल्य (प्राणे) प्राण में मन और इन्द्रियों को बांधता है ॥ ९ ॥

(१०)—(एते, वै) ये ही (ऋत्विजः) समय समय में प्राप्त होने वाले (प्रियाः च, अप्रियाः च) प्रिय और अप्रिय भी संन्यासी जन (यत्) जिस कारण (अतिथयः) अतिथिरूप हैं इससे गृहस्थ को (स्वर्गं लोकम्) दर्शनीय अत्यन्त सुख को (गमयन्ति) प्राप्त कराते हैं ॥ १० ॥

(११)—(एतस्य) इस संन्यासी का (प्राजापत्यः) प्रजापति परमात्मा को जानने का आश्रम धर्मानुष्ठानरूप (यज्ञः) अच्छे प्रकार करने योग्य यतिधर्म (विततः) व्यापक है अर्थात् (यः) जो इसको सर्वोपरि (उपहरति) स्वीकार करता है (वै) वही संन्यासी होता है ॥ ११ ॥

(१२)—(यः) जो (एषः) यह संन्यासी (प्रजापतेः) परमेश्वर के जानने रूप संन्यासाश्रम के (विक्रमान्) सत्याचारों को (अनुविक्रमते) अनुकूलता से किया करता है (वै) वही सब गुणों के (उपहरति) स्वीकार करता है ॥ १२ ॥

तिथीनां स आहवनीयो यो वेशमनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः (१३) ॥ १३ ॥ इष्टं च वा एव पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति (१४) ॥ १४ ॥ अथर्व० कां० ९ ॥ अनु० ३ । सू० १, २, ३ ॥

तस्यैव विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः, श्रद्धा पत्नी, शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिः, केशाः शिखा, हृदयं यूपः, काम आज्यं, मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता, दक्षिणा वाग्घोता क्ष प्राणः, उद्गाता चक्षुः, रध्वर्युर्मनो, ब्रह्मा श्रोत्रममीत् । यावद् ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्,यत्पिबति तदस्य सोमपानं, यद्रमते तदुपसदो, यत्सञ्चरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो, यन्मुखं तदाहवनीयो, या व्याहृतिराहुतिर्यस्य विज्ञानं तज्जुहोति, यत्सायं प्रातरत्ति तत्समिधं, यत्प्रातर्मध्यन्दिनꣳ सायं च तानि सवनानि । ये अहोरात्रे ते दर्शपौर्णमासौ, ये,ऽर्द्धमासाश्च मासाश्च ते चातु-

(१३)—(यः) जो (अतिथीनाम्) अतिथि अर्थात् उत्तम संन्यासियों का सङ्ग है (सः) वह संन्यासी के लिये (आहवनीयः) आहवनीय अग्नि अर्थात् जिसमें ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी होम करता है और (यः) जो संन्यासी का (वेशमनि) घर में अर्थात् स्थान में निवास है (सः) वह उसके लिये (गार्हपत्यः) गृहस्थ सम्बन्धी अग्नि है और संन्यासी (यस्मिन्) जिस जाठराग्नि में अन्नादि को (पचन्ति) पकाते हैं (सः) वह (दक्षिणाग्निः) वानप्रस्थ सम्बन्धी अग्नि है इस प्रकार आत्मा में सब अग्नियों का आधान करे ॥ १३ ॥

(१४)—(यः) जो गृहस्थ (अतिथेः) संन्यासी से (पूर्वः) प्रथम (अश्नाति) भोजन करता है (सः) वह जानो (गृहाणाम्) गृहस्थों के (इष्टम्) इष्ट सुख (च) और उसकी सामग्री (पूर्त्तम्) तथा जो पदार्थादि की पूर्णता (च) और उसके साधनों का (वै) निश्चय करके (अश्नाति) भक्षण अर्थात् उपभोग करता है। इसलिये जिस गृहस्थ के समीप अतिथि उपस्थित होवे उसको पूर्व जिमा कर पश्चात् भोजन करना अत्युचित है ॥ १४ ॥

इसके आगे तैत्तिरीय आरण्यक का अर्थ करते हैं—(एवम्) इस प्रकार संन्यास ग्रहण किये हुए (तस्य) उस (विदुषः) विद्वान् संन्यासी के संन्यासाश्रमरूप (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ का (यजमानः) पति (आत्मा) स्वरूप है, और जो ईश्वर, वेद और सत्यधर्माचरण आदि कर्म में (श्रद्धा) सत्य का धारणरूप दृढ़ प्रीति है वह उसकी (पत्नी) स्त्री है, और जो संन्यासी का (शरीरम्) शरीर है वह (इध्मम्) यज्ञ के लिये इन्धन है, और उसके शरीर पर (लोमानि) बड़े स्थूल केश वह (बर्हिः) कुण्ड, और जो (वेदः) वेद और उनका शब्दार्थसम्बन्ध जानकर आचरण करना है वह संन्यासी की (शिखा) चोटी है, और जो संन्यासी का (हृदयम्) हृदय है वह (यूपः) यज्ञ का स्तम्भ है, और जो इसके शरीर में (कामः) काम है वह (आज्यम्) ज्ञान अग्नि में होम करने का पदार्थ है, जो (मन्युः) संन्यासी में क्रोध वह (पशुः) निवृत्त करने अर्थात् शरीर के मलवत् छोड़ने के योग्य है, और जो संन्यासी का (तपः) [illegible]

र्मास्यानि, य ऋतवस्ते पशुबन्धाः, ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः, सर्ववेदस वा एतत्सत्रं, यन्मरणं तदवभृथः एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रं, य एवं विद्वानुदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वाऽऽदित्यस्य सायुज्यं गच्छतीत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितॄणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति, तौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वानभिजयति, तस्माद् ब्राह्मणो महिमानमाप्नोति, तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत् ॥ तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० ६४ ॥

धर्मानुष्ठान प्राणायामादि योगाभ्यास करता है वह (अग्निः) जानो वेदी का अग्नि है, जो संन्यासी (दमः) अधर्माचरण से इन्द्रियों को रोक के धर्माचरण में स्थिर रख के चलाता है वह (शमयिता) जानो दुष्टों को दण्ड देने वाला सभ्य है और जो संन्यासी की (वाक्) सत्योपदेश करने के लिये वाणी है वह जानो सब मनुष्यों को (दक्षिणा) अभयदान देना है, जो संन्यासी के शरीर में (प्राणः) प्राण है वह (होता) होता के समान, जो (चक्षुः) चक्षु है वह (उद्गाता) उद्गाता के तुल्य, जो (मनः) मन है वह (अध्वर्युः) अध्वर्यु के समान, जो (श्रोत्रम्) श्रोत्र है वह (ब्रह्मा) ब्रह्मा और (अग्नीत्) अग्नि लाने वाले के तुल्य (सञ्जानभियते) जितना कुछ संन्यासी धारण करता है (सा) वह (दीक्षा) दीक्षाग्रहण और (यत्) जो संन्यासी (अश्नाति) खाता है (तद्धविः) वह घृतादि साकल्य के समान, (यत् पिबति) और जो वह जल दुग्धादि पीता है (तदस्य, सोमपानम्) वह इसका सोमपान है, और (यद्रमते) वह जो इधर उधर भ्रमण करता (तदुपसदः) वह उपसद उपसामग्री, (यत्संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते) जो वह गमन करता, बैठता और उठता है (स प्रवर्ग्यः) वह इसका प्रवर्ग्य है, (यन्मुखम्) जो इसका मुख है (तदाहवनीयः) वह संन्यासी का आहवनीय अग्नि के समान, (या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानम्) जो संन्यासी का व्याहृति का उच्चारण करना वा जो इसका विज्ञान आहुतिरूप है (तज्जुहोति) वह जानो होम कर रहा है (यत्सायं, प्रातरत्ति) संन्यासी जो सायं और प्रातःकाल भोजन करता है (तत्समिधम्) वे समिधा हैं, (यत्प्रातर्मध्यन्दिनं चोभयतः च) जो संन्यासी प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में कर्म करता है (तानि सवनानि) वे तीन सवन (अहः, अहोरात्रे) जो दिन और रात्रि हैं (ते दर्शपौर्णमासौ) वे संन्यासी के पौर्णमासेष्टि और अमावास्येष्टि हैं, (येऽर्धमासाश्च, मासाश्च) जो कृष्ण शुक्लपक्ष और महीने हैं (ते चतुर्मास्यानि) वे संन्यासी के चातुर्मास्य याग हैं, (ये ऋतवः) जो वसन्तादि ऋतु हैं (ते पशुबन्धाः) वे जानो संन्यासी के पशुबन्ध अर्थात् ६ पशुओं का बांधना रखना है, (ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च) जो संवत्सर और परिवत्सर अर्थात् वर्ष वर्षान्तर हैं (तेऽहर्गणाः) वे संन्यासी के अहर्गण दो रात्रि वा तीन रात्रि आदि के व्रत हैं, जो (सर्ववेदस वै) सर्वस्व दक्षिणा अर्थात् शिखा सूत्र यज्ञोपवीत आदि पूर्वाश्रमचिह्नों का त्याग करना है (एतत्सत्रम्) यह सब से बड़ा यज्ञ है, (यन्मरणम्) जो संन्यासी की मृत्यु है (तदवभृथः) यह यज्ञान्तस्नान है, (एतद् जरामर्यमग्निहोत्रं सत्रम्) यही जरावस्था और मृत्युपर्यन्त अर्थात् यावत् जीवन है तावत् सत्योपदेश योग्याभ्यासादि संन्यास के धर्म का अनुष्ठान अग्निहोत्र बड़ा दीर्घ यज्ञ है, (य एवं विद्वानुदगयने०) जो इस प्रकार

अथ संन्यासे पुनः प्रमाणानि

न्यास ॐ इत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणम् । ब्रह्मा विश्वः कृतमः स्वयम्भूः प्रजापतिः सम्वत्सर इति । सम्वत्सरोऽसावादित्यो य एष आदित्ये पुरुषः स परमेष्ठी ब्रह्मात्मा । याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्षति पर्जन्यौषधिवनस्पतयः प्रजायंत ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्यन्नेन प्राणाः प्राणैर्बलं बलेन तपस्तपसा श्रद्धा श्रद्धया मेधा मेधया मनीषा मनीषया मनो मनसा शांतिः शान्त्या चित्तं चित्तेन स्मृतिꣳ स्मृत्या स्मारꣳस्थैर्येण विज्ञानं विज्ञानेनात्मानं वेदयति तस्मादन्नं ददन्सर्वाण्येतानि

विद्वान् संन्यास लेकर विज्ञान योगाभ्यास करके शरीर छोड़ता है वह विद्वानों ही के महिमा को प्राप्त होकर स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा के सङ्ग को प्राप्त होता है। और जो योग विज्ञान से रहित है सो सांसारिक दक्षिणा यत्नरूप व्यवहार में मृत्यु को प्राप्त होता है। वह पुनः २ माता पिताओं ही के महिमा को प्राप्त होकर चन्द्रलोक के समान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है। और जो इन दोनों के महिमाओं को विद्वान् ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी जीत लेता है वह उससे परे परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर मुक्ति के समय पर्यन्त मोक्ष सुख को भोगता है।

ॐ (न्यास इत्याहुर्मनीषिणः) इस अनुवाक का अर्थ सुगम है इस लिये भावार्थ कहते हैं। न्यास अर्थात् जो संन्यास शब्द का अर्थ पूर्व कह आये उस रीति से जो संन्यासी होता है वह परमात्मा का उपासक है। वह परमेश्वर सूर्यादि लोकों में व्याप्त और पूर्ण है, कि जिस के प्रताप से सूर्य तपता है। उस तपने से वर्षा, वर्षा से औषधी वनस्पति की उत्पत्ति, अन्न से अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से बल, बल से तप अर्थात् प्राणायाम योगाभ्यास, उस से श्रद्धा सत्यधारण में प्रीति, उस से बुद्धि, बुद्धि से विचारशक्ति, उस से ज्ञान, ज्ञान से शांति, शांति से चैतनता, चित्त से स्मृति, स्मृति से पूर्वापर का ज्ञान, उस से विज्ञान और विज्ञान से आत्मा को संन्यासी जानना और जनाता है। इस लिये अन्नदान श्रेष्ठ जिस से प्राण बल विज्ञानादि होते हैं। जो प्राणों का आत्मा, जिस से यह सब जगत ओत प्रोत व्याप्त हो रहा है वह सब जगत का कर्त्ता, वही पूर्वकल्प और उत्तरकल्प में भी जगत को बनाता है। उस के जानने की इच्छा से उस को जान कर हे संन्यासिन् ! तू पुनः पुनः मृत्यु को प्राप्त मत हो। किन्तु मुक्ति से पूर्ण सुख को प्राप्त हो। इस लिये सब तपों का तप, सब से पृथक, उत्तम संन्यास को कहते हैं। हे परमेश्वर ! जो तू सब में वास करता हुआ विभु है, तू प्राण का प्राण, सब का अन्नमय करने वाला, विश्व को स्रष्टा धर्त्ता, सूर्य्यादि को तेजदाता है। तू ही अग्नि से तेजस्वी तू ही विद्यादाता, तू ही सब का भर्त्ता, तू ही चन्द्रमा के प्रकाश का प्रकाशक है। वह सब से बड़ा पूजनीय देव है। (ओम्) इस मन्त्र से (मनसा) उपासना बल के परमात्मा में आत्मा को युक्त करे। जो इस विद्वानों की प्राप्त महिमा विद्या को प्राप्त होता है वह संन्यासी परमात्मा के महिमा को प्राप्त होकर आनन्द में रहता है।

ब्रह्मात्मानं प्राणं मन्वते भूतानां मयैवैतो मदात्मकं विज्ञानं विज्ञानादानन्दो ब्रह्म योनिः। स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवी चान्तरिक्षं च द्यौश्च दिशाश्चमान्तरदिशाश्च स वै सर्वमिदं जगात् स भूतञ्च स भव्यं जिज्ञासकलप ऋतजा ऋग्विष्ठाः श्रद्धा सत्यो महस्वांस्तमसो वरिष्ठात। ज्ञात्वा तमेवं मनसा हृदा च भूयो न मृत्युमुपयाहि विद्वान्। तस्मान् न्यासमेषां तपसामतिरिक्तमाहुः। वसुरग्नो त्रिभूरसि प्राणो त्वमसि सन्धाता ब्रह्मत्वमसि विश्वसृत्तेजोदास्त्वय्यन्ते रसि वर्चोदास्तवमसि सूर्यस्य द्युम्नोदास्तवमसि चन्द्रमस उपयामगृहीतोसि ब्रह्मणे त्वा महसे। ओमित्यात्मानं युञ्जीत। एतद्वै महोपनिषदं देवानां गुह्यम्। यः एवं वेद ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद् ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत्॥ तैत्ति० ब्रा० प्रपा० १०। अनु० ६३॥

संन्यासी का कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य

हते हृदंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१॥ यजु० अ० ३६। मं० १८॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥२॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ॥३॥ सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥३॥ यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥४॥ यजु० अ० ४०। मं० १६। ६। ७॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥५॥ यजु० अ० ३२। मं० ११॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥६॥ अ० सं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥१७॥ श्वेताश्वतर॥

अर्थ—(हते) सर्वदुःखविदारक परमात्मन्! तू (मा) मुझको संन्यासमार्ग में (हंह) प्राप्त कर। हे मित्र! तू (मित्रस्य) सब सुहृद् आप्त पुरुष की (चक्षुष) दृष्टि से (मा) मुझको सब (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणिमात्र मुझ को मित्र की दृष्टि से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि भूतानि) सब जीवों को (समीक्षे) प्रकार देखूं और सब मुझको इस लोक और दूसरे भी (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से

की दृष्टि से (समाशामहै) देखते रहें ॥१॥ हे (अग्ने) स्वप्रकाश स्वरूप सब दुःखों के दाहक (देव) सब सुखों के दाता परमेश्वर ! (विद्वान्) आप (राये) योग विज्ञानरूप धन की प्राप्ति के लिये (सुपथा) वेदोक्त धर्ममार्ग से (अस्मान्) हम को (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्मों को (नय) कृपा से प्राप्त कीजिये और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल पक्षपातसहित (एनः) अपराध पापकर्म को (युयोधि) दूर रखिये और इस अधर्माचरण से हम को सदा दूर रखिये इसलिये (ते) आप ही की (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार (नम उक्तिम्) नमस्कारपूर्वक प्रशंसा को नित्य (विधेम) किया करें ॥२॥ (यः) जो संन्यासी (तु) पुनः (आत्मन्येव) आत्मा अर्थात् परमेश्वर ही में तथा अपने आत्मा के तुल्य (सर्वाणि, भूतानि) सम्पूर्ण जीव और जगत्स्थ पदार्थों को (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणी अप्राणियों में (आत्मानम्) परमात्मा को देखता है (ततः) इस कारण वह किसी व्यवहार में (न, विचिकित्सति) संशय को प्राप्त नहीं होता अर्थात् परमेश्वर को सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वसाक्षी जान के अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणिमात्र को हानि लाभ सुख दुःखादि व्यवस्था में देखे वही उत्तम संन्यास धर्म को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ (विजानतः) विज्ञानयुक्त संन्यासी का (यस्मिन्) जिस पक्षपात रहित धर्मयुक्त संन्यास में (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणिमात्र (आत्मैव) आत्मा ही के तुल्य जानना अर्थात् जैसा अपना आत्मा अपने को प्रिय है उसी प्रकार का सब में (अभूत्) होता है (तत्र) उस संन्यासाश्रम में (एकत्व मनुपश्यतः) आत्मा के एक भाव को देखने वाले संन्यासी को (कः, मोहः) कौन सा मोह और (कः शोकः) कौन सा शोक होता है अर्थात् न उसको किसी से कभी मोह और न शोक होता है इस लिये संन्यासी मोहशोकादि दोषों से रहित होकर सदा सबसे उपकार करता रहे ॥ ४ ॥ इस प्रकार परमात्मा की स्तुति प्रार्थना और धर्म में दृढ़ निष्ठा करके जो (भूतानि) सम्पूर्ण पृथिव्यादि भूतों में (परीत्य) व्याप्त (लोकान् (सम्पूर्ण लोकों में (परीत्य) पूर्ण हो और (सर्वाः) सब (प्रदिशो, दिशश्च) दिशा और उपदिशाओं में (परीत्य) व्यापक होके स्थित है (ऋतस्य) सत्यकारण के योग से (प्रथमजाम्) सब महत्तत्वादि सृष्टि को धारण करके पालन कर रहा है उस (आत्मानम्) परमात्मा को संन्यासी (आत्मना) स्वात्मा से (उपरथाय) समीप स्थिर होकर उसमें (अभिसम्विवेश) प्रतिदिन समाधियोग से प्रवेश किया करे ॥ ५ ॥ हे संन्यासी लोगो ! (यस्मिन्) जिस (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक (अक्षरे) नाशरहित परमात्मा में (ऋचः) ऋग्वेदादि वेद और (विश्वे) सब (देवाः) पृथिव्यादि लोक और समस्त विद्वान् (अधिनिषेदुः) स्थित हुए और होते हैं (यः) जो जन (तत्) उस व्यापक परमात्मा को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) वेदादि शास्त्र पढ़ने से (किं, करिष्यति) क्या सुख व लाभ कर लेगा अर्थात् विद्या के बिना परमेश्वर का ज्ञान भी नहीं होता और विद्या पढ़ के भी जो परमेश्वर को नहीं जानता और न उसकी आज्ञा में चलता है वह मनुष्य शरीर धारण करके निष्फल चला जाता है और (ये) जो विद्वान् लोग (तत्) उस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (इमे, इत्) वे ही उस परमात्मा में (समासते) अच्छे प्रकार समाधियोग से स्थित होते

है ॥ ६ ॥ (समाधियोगबलस्य) समाधियोग से निर्मल (चेतसः) चित्त के सम्बन्ध से (परात्मनि) परमात्मा में (निवेशितस्य) निश्चल प्रवेश कराये हुए जीव को (यत्) जो (सुखम्) सुख (भवेत) होवे वह (गिरा) वाणी से (वर्णयितुम् , न, शक्यते) कहा नहीं जा सकता क्योंकि (तदा) तब वह समाधि में स्वयं स्थित जीवात्मा (तत्) उस ब्रह्म को (अन्तःकरणेन) शुद्ध अन्तःकरण से (गृह्यते) ग्रहण करता है, वह वर्णन करने में पूर्ण रीति से कभी नहीं आ सकता, इस लिये संन्यासी लोग परमात्मा में स्थित रहें और उसकी आज्ञा अर्थात् पक्षपात रहित न्याय धर्म में स्थित होकर सत्योपदेश सत्यविद्या के प्रचार से सब मनुष्यों को सुख पहुंचाता रहे।

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ १ ॥ यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः । यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥ २ ॥

अर्थः—संन्यासी जगत् के सन्मान से विष के तुल्य डरता रहे और तिरस्कार की सर्वदा अपमान की चाहना करता रहे, क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है, इसलिये चाहे निन्दा, चाहे प्रशंसा, चाहे मान, चाहे अपमान, चाहे जीना, चाहे मृत्यु, चाहे हानि, चाहे लाभ हो, चाहे कोई प्रीति करे, चाहे वैर करे, चाहे पास वह उत्तम स्थान न मिले वा मिले, चाहे शीत उष्ण कितना ही क्यों न हो इत्यादि सब का सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे, इससे परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने, परमेश्वर से भिन्न किसी की उपासना न करे; न वेदविरुद्ध कुछ माने, परमेश्वर के स्थान में सूक्ष्म वा स्थूल तथा जड़ और जीव को भी कभी न माने, आप सदा परमेश्वर को अपना स्वामी माने और आप सेवक बना रहे वैसा ही उपदेश अन्य को भी किया करे, जिस २ कर्म से गृहस्थों की उन्नति हो वा माता पिता, पुत्र, स्त्री, पति, बन्धु, बहिन, मित्र, पड़ोसी, नौकर, बड़े और छोटों में विरोध छूट कर प्रेम बढ़े उस २ सब उपदेश करे, जो वेद से विरुद्ध मतमतान्तर के ग्रंथ बायबिल, कुरान, पुराण, जैनग्रन्थ तथा काव्यालङ्कार कि जिनके पढ़ने सुनने से मनुष्य विषयी और पतित हो जाते हैं उन सब का निषेध करता रहे, विद्वानों और परमेश्वर से भिन्न न किसी को देव तथा विद्या योगाभ्यास सत्सङ्ग और सत्यभाषणादि से भिन्न न किसी को तीर्थ और विद्वानों की मूर्त्तियों से भिन्न पाषाणादि मूर्त्तियों को न माने न मनवावे वैसे ही गृहस्थों को माता, पिता, आचार्य, अतिथि, स्त्री के लिये विवाहित पुरुष और पुरुष के लिये विवाहित स्त्री की मूर्त्ति से भिन्न किसी की मूर्त्ति को पूज्य न समझावे किन्तु वैदिकमत की उन्नति और वेदविरुद्ध पाखण्डमतों के खण्डन करने में सदा तत्पर रहे। वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और तद्विरुद्ध ग्रन्थों वा मतों में अश्रद्धा किया कराया करे। आप सब गुणकर्मस्वभावानुकूल होकर सबको इसी प्रकार करने में प्रयत्न किया करे और जो पूर्वोक्त उपदेश किये हैं उनके अनुसार अपने संन्यासाश्रम के कर्त्तव्य कर्मों को किया करे। खण्डनीय कर्मों का खण्डन करना कभी न छोड़े। आप आर्यावर्त्त देश में रहकर अन्य मानने वालों का भी यथावत् खण्डन करता रहे। परमेश्वर के गुण

कर्म स्वभाव और न्याय आदि गुणों का प्रकाश करता रहे। इस प्रकार कर्म करता हुआ स्वयं आनन्द में रह कर सब को आनन्द में रक्खे। सर्वदा (अहिंसा) निर्वैरता, (सत्यम्) सत्य बोलना सत्य मानना सत्य करना, (अस्तेयम्) मन कर्म वचन से अन्याय करके परपदार्थ का ग्रहण न करना चाहिये न किसी को करने का उपदेश करे, (ब्रह्मचर्यम्) सदा जितेन्द्रिय होकर अष्टविध मैथुन का त्याग रख के वीर्य की रक्षा और उन्नति करके चिरञ्जीवी होकर सब का उपकार करता रहे, (अपरिग्रहः) अभिमानादि दोष रहित किसी संसार के धनादि पदार्थों में मोहित होकर कभी न फंसे। इन ५ (पांच) यमों का सेवन सदा किया करे। और इन के साथ ५ (पांच) नियम अर्थात् (शौच) बाहर भीतर से पवित्र रहना, (सन्तोष) पुरुषार्थ करते जाना और [illegible] लाभ [illegible] और, अप्रसन्न न होना, (तपः) सदा पक्षपातरहित न्यायरूप धर्म का सेवक प्राणायामादि [illegible] (स्वाध्याय) सदा प्रणव का जप अर्थात मन में चिन्तन और उसके अर्थ ईश्वर का विचार [illegible] (ईश्वरप्रणिधान) अर्थात अपने आत्मा को वेदोक्त परमेश्वर की आज्ञा में समर्पित करके परम [illegible] [illegible] जीते हुए [illegible] शरीर छोड़ के सर्वानन्दयुक्त मोक्ष को प्राप्त होना संन्यासियों के [illegible] [illegible] सर्वशक्तिमन् सर्वान्तर्यामिन् दयालो न्यायकारिन् सच्चिदानन्दानन्त निराकार शुद्ध [illegible] आप अपनी कृपा से संन्यासियों को पूर्वोक्त कर्मों में प्रवृत्त [illegible]

[illegible] समाप्तः ॥

अन्त्येष्टिकर्मविधिं वक्ष्यामः

अन्त्येष्टि कर्म उसको कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है, जिसके आगे उस शरीर के [illegible] संस्कार नहीं है। इसी को अन्त्य पुरुषमेध नरमेध पुरुषयाग भी कहते हैं।

[illegible] ॥ यजु० अ० ४० । मं० १५ ॥

[illegible] विधिः ॥ मनु० ॥ २ । १६ ॥

इस शरीर का यह संस्कार (भस्मान्तम्) अर्थात् भस्म करने पर्यन्त है ॥ १ ॥ शरीर का आरम्भ ऋतदान और अन्त में श्मशान अर्थात् मृतक कर्म है ॥ २ ॥ (प्रश्न) जो गरुड़पुराण आदि में दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह, सपिण्डीकरण, मासिक वार्षिक गयाश्राद्ध आदि क्रिया लिखी हैं क्या ये सब असत्य हैं ? (उत्तर) हां, अवश्य मिथ्या हैं, क्योंकि वेदों में इन कर्मों का विधान नहीं है इसलिये अकर्त्तव्य हैं। और मृतक जीव का सम्बन्ध पूर्व सम्बन्धियों के साथ कुछ भी नहीं रहता और न इन जीते हुए सम्बन्धियों का। वह जीव अपने कर्म के अनुसार जन्म पाता है। (प्रश्न) मरण के पीछे जीव कहां जाता है ? (उत्तर) [illegible] यमालय को। (प्रश्न) यमालय किसको कहते हैं ? (उत्तर) वायुमण्डल को। (प्रश्न) वायुमण्डल किसको कहते हैं ? (उत्तर) अन्तरिक्ष को, जो कि यह पोल है। (प्रश्न) क्या गरुड़पुराण आदि में यमलोक का लिखना है वह झूठा है ? (उत्तर) अवश्य मिथ्या है। (प्रश्न) पुनः संसार क्यों मानता है ? (उत्तर) वेद के

[illegible] जीव उपदेश के न होने से। जो यम की कथा लिख रक्खी है वह सब मिथ्या है क्योंकि यम नाम पदार्थों का नाम है॥

मडियमा यमयो देवजा इति॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० १५॥

शकेम वाजिनो यमम्॥ ऋ० मं० २। सू० ५। मं० १॥

यममाग्ने जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ ऋ० मं० १०। सू० १४। मं० १३॥

यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः॥ यजु० अ० ८। मं०

वाजिनं यमम्॥ ऋ० मं० ८। सू० १६

यहां मनुष्यों का यम नाम है॥ १॥ यहां परमेश्वर का नाम॥ २॥

यह वायु, विद्युत्, सूर्य के यम नाम हैं॥ ४॥ यहां भी वेग वाला होने

यहां परमेश्वर का नाम यमा है। इत्यादि पदार्थों का नाम यम है

कूठी है॥ ६॥

विधिना संस्थिते भूमिभागे खानयेद्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि

दक्षिणाप्रवणं प्राग्दक्षिणाप्रवणं वा प्रत्यग्दक्षिणाप्रवणं

पुरुषस्तावदायामम्॥ ३॥ वितस्त्यवटं॥ ४॥ प्रादेशमात्रमात्रान्तोत्सृत

पुरस्तात्॥ ५॥ द्विगुल्फं बर्हिराच्छ्यं च॥ ६॥ दधन्मधु सर्पिषमन्वेतत्तिलाज्यं

पृषदाज्यम्॥ ७॥ अथैतां दिशमग्नेः [illegible]

आश्वलायन० अ० ४

जब कोई मर जावे तब यदि पुरुष हो तो पुरु[illegible] सुगन्धलेपन और नवीन वस्त्र धारण करावें, जितना [illegible] हो तो अधिक लेवें, और जो महादरिद्र भिक्षु हो कि [illegible] शरीर के बराबर तौल के चन्दन, सेर भर घी में एक रत्ती कस्तूरी [illegible] सेर २ भर अगर तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी [illegible] शरीर के भार से दूनी सामग्री श्मशान में पहुंचावे। तत्पश्चात् मृतक को वहां श्मशान में जाय। यदि प्राचीन वेदी बनी हुई न हो तो नवीन वेदी भूमि में खोदे, वह श्मशान का स्थान बस्ती से दक्षिण तथा आग्नेय अथवा नैर्ऋत्य कोण में हो। वहां भूमि को खोदे। मृतक के पग दक्षिण नैर्ऋत्य अथवा आग्नेय कोण में रहें, शिर उत्तर ईशान वा वायव्य कोण में रहे॥ १॥ मृतक के पग की ओर वेदी के तले में नीचा और शिर की ओर थोड़ा ऊंचा रहे॥ २॥ उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे उतनी लम्बी और दोनों हाथों को तान कर जितना दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ से ऊपर चौड़ी होवे और छाती के बराबर गहरी होवे॥ ३॥ और नीचे आधे हाथ अर्थात् एक

बीता भर ऊंचे [illegible] छोड़ देवे। तदि [illegible] जलाने को [illegible] कर दे। उसके नीचे से और बड़ी बड़ी लकड़ियां चिने, जैसे कि भित्ती में ईंटें चिनी जाती हैं, अर्थात् लम्बा जमाकर लकड़ियां धरे। लकड़ियों के बीच में थोड़ा थोड़ा कपूर थोड़ी थोड़ी दूर पर रक्खे। उसके ऊपर मध्य में मृतक को रक्खे अर्थात् चारों ओर वेदी बराबर खाली रहे, और पश्चात् चारों ओर और ऊपर चन्दन तथा पलाश आदि के काष्ठ बराबर चिने, वेदी से ऊपर एक बीता भर लकड़ियां चिने। जब तक यह क्रिया होवे तब तक अलग [illegible] घृत, अग्नि जला, घृत तपा और छान कर पात्रों में रक्खे। उसमें कस्तूरी आदि सब पदार्थ [illegible] लकड़ियों में चार चमसों को चाहे वे लकड़ी के हों वा चांदी सोने के अथवा लोहे के हों [illegible] भर से अधिक और आधी छटांक भर से न्यून घृत न आवे। खूब दृढ़ बन्धनों से [illegible] का दीपक करके, कपूर में लगाकर, शिर से आरम्भ कर पादपर्यन्त मध्य २ [illegible] के:—

[illegible] माय स्वाहा। ओं लोकाय स्वाहा। ओमनुमतये स्वाहा।

[illegible] ॥ आश्व० अ० ४। कं० ३। सू० २५–२६ ॥

[illegible] को प्रदीप्त होने देवे। तत्पश्चात् चार मनुष्य पृथक् २ खड़े [illegible] स्वाहा आवे वहां आहुति छोड़ देवे ॥

[illegible] वेदमन्त्राः

[illegible] पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ [illegible] शरीरैः स्वाहा ॥ १ ॥ अजो भागस्तपसा [illegible]। यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं [illegible] पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्व- [illegible] गच्छतां तन्वा जातवेदः स्वाहा ॥ ३ ॥ [illegible] पीवसा मेदसा च। नेत्वा घृतस्नुर्हरसा [illegible] स्वाहा ॥ ४ ॥ यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया [illegible] पुनः। कियन्तमत्र पितुं मोक्तवा व्यल्कशा स्वाहा ॥ ५ ॥ ऋ० म० १० । सू० १६ । मं० ३ । ४ । [illegible] । १३ ॥

[illegible] परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुवस्पशानम्। वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां [illegible] यमं राजानं हविषा दुवस्य स्वाहा ॥ ६ ॥ यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनुस्वाः स्वाहा ॥ ७ ॥ [illegible] मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिरृक्वभिर्वावृधानः। [illegible] देवा- देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति स्वाहा ॥ ८ ॥ [illegible]

[illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ अङ्गिरोभिरग्नमहि यविष्ठेभिरमम्म [illegible]
प्रियवत्तं हुवे यः पिता वेद्दस्मिन्नग्ने बर्हिष्यातिषद्य स्वाहा ॥ १० ॥ इदं पितृभ्यो
पृथिभिः पूर्व्येभिर्यत्र नः पूर्वे प्रितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं
पश्यासि वरुणं च देवं स्वाहा ॥ ११ ॥ सं गच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्त्तेन परमे
व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः स्वाहा ॥ १२ ॥ अपेत
वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् । अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं
ददात्यवसानमस्मै स्वाहा ॥ १३ ॥ यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हवि
यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः स्वाहा ॥ १४ ॥ यमाय घृ
तिल । स नो देवेष्वायमद्दीर्घमायुः प्रजीवसे स्वाहा ॥ १५
राज्ञे हव्यं जुहोतन । इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वे
॥ १६ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १४ ॥ कृष्णः श्वेतोऽरु
शोणो यशस्वान् । हिरण्यरूपं जनिता जजान
सू० २० । मं० ६ ॥

इन ऋग्वेद के मन्त्रों से चारों जने सत्रह सत्रह आज्याहुति दे

प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ [illegible]
अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ ४ ॥ वायवे स्वाहा ॥ ५ ॥ [illegible]
दिग्भ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥ चन्द्रायै स्वाहा ॥ [illegible]
॥ ११ ॥ वरुणाय स्वाहा ॥ १२ ॥ मा[illegible]
स्वाहा ॥ १५ ॥ प्राणाय स्वाहा ॥ १६ ॥ [illegible]
नयुषे स्वाहा ॥ १८ ॥ श्रोत्राय स्वाहा [illegible]
॥ २२ ॥ लोमभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥ त्वचे [illegible]
स्वाहा ॥ २६ ॥ लोहिताय स्वाहा ॥ २[illegible]
॥ २८ ॥ मांसेभ्यः स्वाहा ॥ ३० ॥ [illegible]
॥ ३२ ॥ स्नावभ्यः स्वाहा ॥ ३३ ॥ अस्थ[illegible] स्वाहा ॥ ३५ ॥
मज्जभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥ मेदोभ्यः स्वाहा ॥ [illegible] स्वाहा
॥ ३९ ॥ आयासाय स्वाहा ॥ ४० ॥ प्रायासाय स्वाहा ॥ ४१ ॥ संयासाय स्वाहा ॥ ४२ ॥
वियासाय स्वाहा ॥ ४३ ॥ उद्यासाय स्वाहा ॥ ४४ ॥ शु[illegible] स्वाहा ॥ ४५ ॥ शोचते स्वाहा
॥ ४६ ॥ शोचमानाय स्वाहा ॥ ४७ ॥ शोकाय स्वाहा ॥ ४८ ॥ तपसे स्वाहा ॥ ४९ ॥
तप्यते स्वाहा ॥ ५० ॥ तप्यमानाय स्वाहा ॥ ५१ ॥ तप्ताय स्वाहा ॥ ५२ ॥ घर्माय
स्वाहा ॥ ५३ ॥ निष्कृत्यै स्वाहा ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्यै स्वाहा ॥ ५५ ॥ भेषजाय स्वाहा
॥ ५३ ॥ यमाय स्वाहा ॥ ५७ ॥ अन्तकाय स्वाहा ॥ ५८ ॥ मृत्यवे स्वाहा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे
स्वाहा ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यायै स्वाहा ॥ ६१ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ६२ ॥ द्यावा-
पृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ६३ ॥ यजु० अ० ३९ ॥

इन मंत्रों से (तिरछा) गड्ढों में तिल स्रुवा आहुति पृथक् पृथक् देकर निम्नलिखित मंत्रों से आहुति देवें।

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः स्वाहा ॥१॥ सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते। येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥२॥ ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः। ऋषीस्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् स्वाहा ॥ ३ ॥ तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः। तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात स्वाहा ॥ ४ ॥ ये युद्धयन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः। ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ॥ ५ ॥ [illegible] पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी। यच्छान्नः शर्म सप्रथाः स्वाहा ॥ ६ ॥ [illegible] धन् गृहेभ्यस्त्रिवृहत परि ग्रामादितः। मथ्युर्यमस्यासीद्वृतः [illegible] गमयाञ्चकार स्वाहा ॥ ७ ॥ यमः परोवरो विवस्वांस्ततः [illegible]। यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान [illegible] मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामददुर्विवस्वते। उताश्विनावभरद्यत्सरण्यूः स्वाहा। ९॥ इमौ युनज्मि ते वहौ [illegible] सादमं समितीश्चावगच्छतात् ॥ १० ॥

अथर्व० कां० १८ । सू० २ ॥

[illegible] सूयावर्यपेदधानि मृज्महे। यथा नो अत्र [illegible] पुरः [illegible] स्वाहा ॥ ३ ॥ य एतस्य पथा गोप्तारस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥ य एतस्य पथोऽभिरक्षितारस्ते- [illegible] ६ ॥ अपाकृत्याय स्वाहा ॥ ७ ॥ [illegible] स्वाहा ॥ ८ ॥ अग्नये कर्मकृते स्वाहा ॥ [illegible] ॥ अग्नये वैश्वानरस्य सुवर्गाय लोकाय [illegible] तर्यमो ह वेह प्रयुताभिरक्षा। आसीदताꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥ योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्येक ईशे [illegible] गाय यो राजाऽनपरोध्यः स्वाहा ॥ १४ ॥ यमं गाय भङ्कृण्यश्वो यो राजाऽमपरोध्यः। येनाऽऽपो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा स्वाहा ॥ [illegible] ॥ हिरण्यकक्ष्यान्त्सुधुरान हिरण्याक्षानयः शफान्। अश्वानजशतो दानं यमो राजाभितिष्ठति स्वाहा ॥ १६ ॥ यमो दाधार पृथिवीं यमो विश्वमिदं जगत्। यमाय सर्वमित्तस्थे यत् प्राणदायुरक्षितं स्वाहा ॥ १७ ॥ [illegible] यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यमेकऋषिर्विजानती स्वाहा ॥ १८ ॥ त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत्। गायत्री त्रिष्टुप्छन्दाꣳसि सर्वा ता यम आहिता स्वाहा ॥ १९ ॥ अहरहर्नयमानो गामश्वं पुरुषं जगत्। वैवस्वतो न तृप्यति पञ्चभिर्मानवैर्यमः स्वाहा ॥ २० ॥ वैवस्वते विचिकित्सन्त यमे

[illegible] ये [illegible] ॥ २१ ॥ ये

राजानः । विष्यन्तऽथा वातः स्वाहा ॥ २२ ॥ [illegible] स्वाहा ॥ २३ ॥ अस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबत यदः । अत्रा वो [illegible] पिता पुत्राणा अनुवेनति स्वाहा ॥ २४ ॥ उत्ते नभ्नामि पृथिवी स्वस्त्युत्ते [illegible] दिवन्मो अहꣳ रिषम् । एताꣳस्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यम: साद [illegible] स्वाहा ॥ २५ ॥ यथाऽहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति [illegible] एवा नः पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूꣳषि कल्पयैषां स्वाहा ॥ २६ ॥ [illegible] मनुष्वꣳ सकार मर्त्य: । कपिर्बभस्ति तेजन पुनर्जरायुरोतवे [illegible] मनसुरुण्या रयिम् । अप नः शोशुचदघ मृत्येव स्वाहा ॥

तैत्ति०

इन [illegible] आहुतियों को करके, ये सब (ओं कात्यो [illegible] आहुति हुई । कथित् ४ जनों की मिल के [illegible] पु० २८२ (दो सौ बयासी) । यदि दूत [illegible] आहुति [illegible] शरीर भस्मसात् न हो जाय तावत् दे [illegible] प्रक्षालन स्नान करके, जिस के घर में मृत्यु हुआ हो उस [illegible] करके, पृ० २—१४ से लिखे प्रमाणे स्वस्तिवाचन शां [illegible] पाठनो करके, पुनः पुण्याहवाचन और शांतिकरणा [illegible] शब्द का उच्चारण करके, सुगन्ध्यादि मिले हुए घृत [illegible] निकल जाय और [illegible] अग्नि घर में प्रवेश करे और स [illegible] तो थोड़ी सी आहुति देकर, दूसरे दिन प्रातःकाल च [illegible] आहुति देवें । पश्चात् जब तीसरा दिन हो तब मृत [illegible] उठा के, उस रमशानभूमि में कहीं पृथक् रख देवें । बस [illegible] कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि एतं (मण्डान्तर्गतं मन्त्रम्) यजुर्वेद के मंत्र के प्रमा [illegible] दाहकर्म और अस्थिसचयन से पीछे सब [illegible] के लिये दूसरा कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं है । हां यदि [illegible] सम्पन्न हो तो अपने जीते जी वा मरे पीछे [illegible] के [illegible] विद्या, वेदोक्तधर्म का प्रचार, अनाथपु [illegible] वेदोक्त धर्मोपदेश इत्यादि के लिये चाहे जितना धन प्रदान करे सुन्दर अच्छी बात है ॥

[illegible] श्रीयुत [illegible] स्वतीस्वामिनां [illegible]

[illegible] श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां [illegible] श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां

[illegible] ओ३म् शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥